प्रकाशक—
श्रीस्वामी आत्मानन्द सरस्वती
आसाम वङ्गीय सारस्वत मठ
पो० कोकिलामुख, जोरहाट, आसाम

तृतीय संस्करण

अनुवादक—
योगीराज परिव्राजक
श्रीश्रीमत् ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्य देव 'पीयूषपाणि'

बंगला संस्करणका वर्ष

प्रथम संस्करण १३१२, वंगाब्द   द्वितीय संस्करण १३१७ वंगाब्द
तृतीय संस्करण १३२१, ,,   चतुर्थ संस्करण १३२५, ,,
पञ्चम संस्करण १३२८, ,,   षष्ठ संस्करण १३३१, ,,
सप्तम संस्करण १३३३, ,,   अष्टम संस्करण १३३६, ,,
नवम संस्करण १३४३ वंगाब्द

मुद्रक—
रमादत्त शर्म्मा
रत्नाकर प्रेस,
११-ए, सैयदसाली लेन
कलकत्ता

मूल्य दो रुपया]

अग्नितत्त्वका ध्यान—

रं बीजं शिखिनं ध्यायेत् त्रिकोणमरुणप्रभम्।
बह्वन्नपानभोक्तृत्वमातपाग्निसहिष्णुता ॥

'रं' बीज अग्नि-तत्त्वके ध्यानका मन्त्र है। इस बीजका उच्चारण-पूर्वक इस तरह ध्यान करना होगा—यह तत्त्व त्रिकोण विशिष्ट, अरुण-वर्ण, अनेक अन्न-पान-भोजन करनेवाले शक्तिसंयुक्त एवं धूप और अग्नितेज सहन करनेकी शक्तिसे युक्त है।

वायुतत्त्वका ध्यान—

यं बीजं पवनं ध्यायेद्वर्त्तुलं श्यामलप्रभम्।
आकाशगमनाद्यञ्च पक्षिवद्गमनं तथा ॥

'यं' बीज वायु-तत्त्वका बीज मन्त्र है। इस बीजका उच्चारण पूर्वक इस तरह ध्यान करना होगा—यह तत्त्व गोल, सांवला रङ्ग विशिष्ट, एवं पक्षियोंकी भाँति उड़नेकी शक्ति समन्वित है।

आकाशतत्त्वका ध्यान—

हं बीजं गगनं ध्यायेत् निराकारं बहुप्रभम्।
ज्ञानं त्रिकालविषयमैश्वर्य्यमणिमादिकम् ॥

'हं' बीज आकाश-तत्त्वके ध्यानका मन्त्र है। यह बीज उच्चारण करते हुये इस तरह ध्यान करना होगा ;—यह तत्त्व निराकार, नाना प्रकारके रङ्ग संयुक्त, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान—इन तीनों कालका जानने वाला एवं अणिमादिके ऐश्वर्य्यसे भरा है।

श्री हंसराज बच्छराज नाहटा
सरदारशहर निवासी
द्वारा
जैन विश्व भारती, लाडनूं
को सप्रेम भेंट –

प्राणके ध्रुवतारा
जीवनके एकमात्र आराध्यदेव

उदासीनाचार्य्य श्रीमत् सुमेर दासजी

गुरुदेव श्रीश्रीचरण-सरोरुहेषु

गुरो !

मेरा पहला गुरु संसार है अर्थात् पिता, भाई-भगिनी, स्त्री-पुत्र, मातामही-मातृष्वसा और आत्मीय-स्वजन आदि। क्योंकि, उन्हींके व्यवहारसे समझ पड़ा कि माया-ममता स्वार्थकी दासी है। स्वार्थ-हानि होनेसे पिता पुत्रस्नेह छोड़ सकता है, भाई-भगिनी शत्रु बन सकते हैं, स्त्री-पुत्र छातीमें चाकू मार सकते हैं, मातामही-मातृष्वसा विष उगल सकती हैं और आत्मीय-स्वजन पैरोंसे कुचल सकते हैं। यद्यपि संसारमें मुझे कोई अभाव मालूम नहीं हुआ, तथापि अलक्ष्य (गुप्तरूप) से मानों कोई बता रहा था, कि "संसारमें सभी स्वार्थके दास हैं।" उन स्वार्थान्धोंने यह कभी न सोचा कि उनके व्यवहारसे मेरे हृदयमें किन भावोंकी सृष्टि हो रही है। फिर दूसरी बात यह भी समझमें आई, कि रोग-शोकसे

मानवकी पञ्जरास्थियाँ टूटतीं, हृदयका रक्त सूखता और मर्म्म-ग्रन्थियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। धीरे-धीरे मैं यह भी जान गया कि महत् व्यक्ति दरिद्रको देख कर हँसते हैं, निरन्न या व्याधि-ग्रस्तकी कातर प्रार्थनाको पागलका प्रलाप बता कर उड़ा देते हैं और दुखीके दीर्घनिःश्वासको पापका फल कह कर घृणा करते हैं। किन्तु हाय! मनुष्यका हृदय दया, माया, सहानुभूति और परदुःख-कातरताके बदले केवल हिंसा, द्वेष, निष्ठुरता और परश्री-कातरतासे परिपूर्ण है! सुतरां पहली शिक्षामें संसारसे वितृष्णा (घृणा) पैदा हुई। तभी तो कह रहा हूँ कि "संसार मेरा पहला गुरु है।"

द्वितीय गुरु—सावित्री पहाड़के परमहंस श्रीमत् सच्चिदानन्द सरस्वती देव हैं। जब मैं संसारकी निष्ठुरता और कालकी कराल-दंष्ट्राघात-जनित कातरतासे छिन्न-कण्ठ कपोतकी भाँति लोटता, दावदग्ध हरिणीकी भाँति दौड़ता-फिरता था; तब इन्हीं महात्माकी कृपासे मैंने शान्तिलाभ किया था, भ्रम दूर हुआ था और भड़क मिटी थी। इन्होंने वेद, पुराण, संहिता, दर्शन, गीता, उपनिषद् प्रभृति शास्त्रोंकी सहायतासे समझा दिया कि "संसारका घात-प्रतिघात ही जीवकी आध्यात्मिक उन्नतिका कारण है। जीव सांसारिक सुखपर मुग्ध होकर ही जगन्माता और परमपिताके श्रीचरण-कमलोंको भूल जाता है। जीवको चेतानेके लिये ही मंगलमय जगदीश्वरने इस निष्ठुरता की सृष्टि की है।" मैंने इतने दिनों बाद जीवनको सार्थक बनानेवाला ज्ञान प्राप्त किया। स्वल्पायाससे निगमके इस निगूढ़-वाक्यको समझ सकनेके कारण

ही उन्होंने सानन्द मुझे शिष्य बना कर निगमानन्द नाम रख दिया।

तृतीय या अन्तिमगुरु आप हैं। विपथमें पहुँच कर जब मैं परमहंसदेवके उपदेशसे पथ-प्रदर्शक ढूढ़ रहा था, तब पूर्वजन्मके सुकृत-फलसे आपके श्रीचरण-कमलोंका दर्शन प्राप्त हुआ। आपकी कृपासे ही नव-जीवन लाभ कर, मैं पूर्ण सुखशान्तिका अधिकारी बना हूँ और अभूत-पूर्व विमल आलोकच्छटाके दर्शनसे निरन्तर मेरी नस-नसमें आनन्दका श्रोत प्रवाहित हो रहा है। रस्सीको साँप समझनेकी भाँति मनुष्य सुखकी आशासे ललचा कर संसारमें वृथा दौड़ता फिरता है। आज मैं गृहान्न-शून्य होकर भी प्रफुल्लित मनसे जीवनको धन्य और श्लाघ्य समझ रहा हूँ। यदि एक भी संसार-पीड़ित व्यक्ति पूर्ण सुख-शान्ति लाभके लिये यत्न कर सके तो मेरी विद्या सफल हो जायगी, इसी आशासे गुरूपदिष्ट साधन-भजन का सुगम-पथ ग्रन्थके आकारमें प्रकाश करता हुआ, इसे "गङ्गाजलसे गङ्गा-पूजाकी भाँति" अर्थात् "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पणम्" की भाँति आपके श्रीचरण-कमलोंमें समर्पण करता हूँ।

विदा लेते समय निवेदन है कि आपके श्रीचरण-सान्निध्यमें अवस्थानके समय यदि मैंने कोई अपराध किया हो तो "सन्तानके शत अपराध भी पिताके पास क्षन्तव्य होते हैं," इस दृष्टिसे मेरा अपराध क्षमा करके आशीर्वाद कीजिये—जिससे अजपाके शेष जपमें आपका जप समर्पण कर सकूँ। दूसरी प्रार्थना यह भी

है, कि जिन्होंने मुझे "अपना" समझ कर अपनाया है, उनको लेकर मैं अन्तमे आपके परम-पद्में लीन हो जाऊँ। श्रीचरण-कमले निवेदनमिति।

देवतायां दर्शनञ्च करुणावरुणालयम्।
सर्वसिद्धि प्रदातारं श्रीगुरुम्प्रणमाम्यहम्॥

सेवक—
श्रीगुरुचरण

ग्रन्थकारका निवेदन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

श्रीमद्गुरु - नारायण - चरणारविन्द - द्वन्द्व-स्यन्दमान-मकरन्द-पानसे आनन्दित होकर, उनकी ही कृपासे पूर्ण नये उद्यमके साथ इतने दिनों बाद भारतवासियोंके नयन-कमलोंके सामने परमानन्द पूर्वक "योगीगुरु" प्रकट कर रहा हूँ।

हमारे देशमें प्रकृत योगशास्त्र या योगोपदेष्टा गुरुका प्रायः अभाव है। पातञ्जल-दर्शनका योगसूत्र वा शिवसंहिता, गोरक्षसंहिता, याज्ञवल्क्य-संहिता प्रभृति जो कुछ योग-साहित्यके नामसे प्रचलित है, उसमें बताए हुए मार्गसे साधनमें प्रवृत्त करके प्रत्यक्ष फल दिखा सके, ऐसा गुरु आज कौन है? योग, तन्त्र और स्वरोदय-शास्त्र-सिद्ध साधकके उपदेश प्राप्त करनेके सिवा किसीके लिये भी समझने का उपाय नहीं है। कोई कितना ही बड़ा पंडित क्यों न हो, पाण्डित्य-बलसे ही वह सभी शास्त्रोंको समझानेकी शक्ति नहीं रखता। योगीगुरु भी मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। गृहस्थ लोगोंमें तो वह कहीं भी नहीं हैं, ऐसा कहना कोई अत्युक्ति नहीं होगा। मैंने बहुत दिनों तक तीर्थ और पार्वत्य वनभूमिमें अनेक साधु-संन्यासियोंके अनुसरण कर विशेष-रूपसे जान लिया है, कि आज-कल जो जटाजूट-धारी

संन्यासियोंकी विराट-मूर्त्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनमेंसे हजारोंमें एक भी सच्चा योगी या तन्त्रोक्त-साधक मिलना दुर्लभ है। बहुतसे तो ऐसे है, कि जिन्होंने भूखके मारे अन्य उपाय न देखकर संन्यास ले लिया है, साधनमें तो उनकी प्रवृत्ति बिलकुल ही नहीं है, परन्तु बहुतसे चमत्कार आदि बुरे काम सीख कर वे साधारण लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकते हुए चैनके साथ आसानीसे उदर-पूर्ण कर घूमते फिरते हैं। हमारे बंगालमें एक लोकोक्ति प्रचलित है, कि "गोत्र हाराइले काश्यप और जाति हाराइले वैष्णव" यानी यदि कोई गोत्र भूल जाय तो काश्यप और जात भूलनेसे वैष्णव बन जाता है। —सो अब मैं इस उक्तिकी सत्यता उपलब्ध कर चुका हूँ। वास्तवमें गृहस्थ और संन्यासी सम्प्रदायके भीतर योगीगुरु नितान्त विरल हैं; अगर हो भी तो उनकी पहुंच प्राणायाम तक ही होती है और वह भी उपयुक्त शिक्षासे अनुष्ठित हैं, ऐसा विश्वास नहीं होता। आजकल भारतवर्षके गौरव-स्वरूप किसी-किसी विद्वानने योगशास्त्रकी दो एक पुस्तकें अवश्य प्रकाशित की हैं यह बात सच है; परन्तु उन पुस्तकोंमें उनकी विद्याबुद्धि और कवित्व-कलाके सिवा साधन-पद्धतिका कोई भी सुगम मार्ग नहीं देख पड़ता। व्यवसायी लोगोंके विज्ञापनके चक्करमें पड़कर भी कोई-कोई साधन-प्रयासी व्यक्ति उन पुस्तकोंको खरीद लेते हैं, किन्तु पढ़नेके बाद जब वे समझते हैं, कि "चाबी तो गुरुके ही हाथमें है," तब अर्थनाशके कारण उनको मनस्ताप भोगना पड़ता है एवं अन्तमें जाकर शान्ति-सुखसे वञ्चित होना पड़ता है। कोई-कोई ऐसी पुस्तकोंमें प्रदर्शित विधिसे प्राणायामादि करनेकी

कोशिश करके दुःख उठाते तथा देह-नाश तक कर डालते हैं। जो ज्ञान अनेक महापुरुषोंकी परम्परा द्वारा प्रकाशित हुआ है, उसे केवल एक ही घूंटमें पीनेका प्रयत्न करनेसे परमार्थ लाभ तो दूर की बात है, अनर्थ अवश्य होता है—यह बात ध्रुव सत्य है।

समस्त साधनाका मूल और सर्वोत्कृष्ट साधन योग है। आनन्द की बात है कि इस योग-साधनके लिये आजकल कितने ही लोगोंके हृदयमें प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है। किन्तु प्रवृत्ति होनेसे ही क्या होने-वाला है? उपदेश और शिक्षा कौन देगा? गुरुके बिना इस निगूढ़-पथका पथ-प्रदर्शक कौन होगा? आजकल जितने व्यवसायी गुरु देख पड़ते हैं, वे केवल धनके लालचसे ही मन्त्रोपदेश कर देते हैं। परन्तु शिष्यका अज्ञानान्धकार दूर कर दिव्यज्ञान प्रदान करनेका सामर्थ्य नहीं रखते। सुतरां एक अन्धा दूसरे अन्धेको कैसे पथ बतला सकता है? सिर्फ यही नहीं, बल्कि कहीं कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि पुरुष परम्परागत गुरुदेवकी अपेक्षा शिष्य ही अधिक ज्ञानी होता है। फिर भी शास्त्रमें जिन सब योग-पद्धतियोंका वर्णन है, उनको यदि कोई योगीगुरु ठीक-ठीक ढंगसे न सिखा देवे तो उसमें फल-लाभ करना बहुत दूरकी बात है। एक बात यह भी है कि कलियुगके जीव स्वल्पायु और दुर्बल होते हैं। विशेषतः चौबीस घण्टे प्राणान्त परिश्रम करके भी—चोटीका पसीना एड़ी तक बहा कर भी—आजकल अनेक लोग अन्नवस्त्रका संग्रह करनेमें असमर्थ हो रहे हैं; ऐसी अवस्थामें सद्गुरुके मिल जाने पर भी वे अष्टांग-साधनके कठोर नियम-संयम और प्राणायामादि जैसे दैहिक तथा

मानसिक कठिन परिश्रम एवं अभ्यासके लिये सुदीर्घ समय व्यय करनेकी शक्ति नहीं रखते। इन सब असुविधाओंके कारण साधनमें किसीकी प्रवृत्ति होने पर भी, वह 'पक्के बिल्व फल पर कौएके चञ्चुपुटके आघात' की भाँति निष्फल हो जाता है। इन सब अभावों और बाधाओंको दूर करना ही इस ग्रन्थको छपानेका मेरा उद्देश्य है। मैंने संसाराश्रम परित्याग करके बहुत दिन तक वृथा भ्रमण और साधु-संन्यासियोंकी सेवा करनेके बाद, जगद्गुरु भूतभावन भवानी-पतिकी कृपासे सद्गुरु लाभ करके, उनकी दयासे लुप्त-प्राय गुप्त योग-साधनके सरल तथा सुख साध्य कौशल उपायादिकी शिक्षा प्राप्त की है और कई दिनों तक उन्हीं सब कौशलसे क्रियाओंका अनुष्ठान करके प्रत्यक्ष फल प्राप्त किया है। इसीलिये आज भारत-वासी साधक भ्रातृवृन्दके उपकारार्थ कृत-संकल्प होकर इस ग्रन्थका प्रकाशन कर रहा हूँ।

शास्त्र असीम हैं, ज्ञान असीम हैं और साधन-कौशल अनन्त प्रकारके हैं। मैंने जितने प्रकारके साधन-कौशल सीखे हैं, उन सबकी आलोचना और आन्दोलन करना व्यक्तिगत क्षमताके अधीन नहीं है, अधीन होने पर भी तो मुद्रित न हो सकनेसे कैसे जन-साधारणका उपकार किया जा सकता है? मेरी अवस्था तो "अद्य भक्ष्यो धनुर्गुण:" जैसी है, मुद्रित करनेके लिये धनकी आवश्यकता है। विशेषतः नेति, धौति, वस्ति, लौलिकी, कपाल-भाति, गजका-रिणी आदि हठयोगाङ्ग साधन गृहत्यागी साधु-संन्यासियोंके लिये ही हैं। किन्तु जिन लोगोंको हा-अन्न, हा-अन्न करके नौकरीके द्वारा

जीविका निर्वाह करनेमें भी समयका अभाव रहता है, वे भला, साधन तथा नियम-पालनके लिये समय कहाँ से पा सकते हैं ? अधिकन्तु हठ-योगादि करनेके योग्य शरीर भी आजकलके जमानेमें कम ही लोगोंका होता है। एक बात और भी है कि योग-साधनमें ऐसी बहुतसी क्रियायें विद्यमान हैं, जो केवल मुँह-जवानी कह कर या हाथ-पैरसे प्रत्यक्ष न दिखा कर योंही केवल लेखनीके द्वारा समझाई नहीं जा सकतीं। अतः अकारण उन सब गुह्य विषयोंको लिख कर इस पुस्तकका कलेवर चढ़ानेकी बहादुरी लेना, मेरा उद्देश्य नहीं है। फिर भी यदि किसीको ऐसे साधनमें प्रवृत्ति हो एवं यदि वे अनुग्रह करके इस क्षुद्र ग्रन्थकारके समीप आवें तो, परीक्षाके द्वारा उपयुक्त समझने पर यत्नके साथ सिखानेके लिये भी मैं तैयार हूँ।

कलिकालमें दुर्बल, स्वल्पायु और अन्न-संस्थानके लिये अनियमित परिश्रम करनेवाले मनुष्योंके लिये, योगेश्वर जगद्गुरु महादेवजीने सहज और सुख-साध्य लययोगका विधान किया है। प्राणायामादि प्रकृत योग नहीं हैं, योग-साधनके लिये विशेष अनुकूल और सहायता करनेवाले अवश्य हैं, लेकिन अनियम और वायुके व्यतिक्रमसे हिचकी, श्वास, खाँसी और चक्षु-कर्ण-मस्तककी पीड़ादि नाना प्रकारके रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। इन्हीं सब बातोंको सोचकर कईएक सहजसाध्य योग-साधन पद्धतियाँ इस पुस्तकमें प्रकाशित की हैं, जिनसे साधारण व्यक्ति इनमेंसे किसी भी क्रियाका अनुष्ठान करने पर प्रत्यक्ष फल लाभ करेगा; लेकिन लिखे हुए नियम और उपदेशके अनुसार ही कार्य्य होना चाहिये। इनमें अपनी

बुद्धि एवं Principle लगानेसे फल लाभ नहीं होगा। किसी भी एक क्रियाका नियमित-रूपसे अभ्यास करने पर धीरे-धीरे शरीर स्वस्थ तथा नीरोग हो जायगा ; मनमें अपार आनन्दका उदय होकर शान्ति प्राप्त होगी एवं देहस्थित कुलकुण्डलिनी शक्ति चैतन्य होकर आत्माकी मुक्ति होगी।

यदि योग साधन करना हो तो देहतत्त्व और देहस्थित चक्रादिको उत्तमरूपसे जान लेना चाहिये ; नहीं तो साधनसे कोई लाभ नहीं होगा। लेकिन उन सब बातोंका वर्णन भली-भाँति किया जाय तो एक प्रकाण्ड पुस्तक हो जाती है। साथ ही उसके लिये इतना अधिक समय और असंख्य गोलाकृति रजतखण्ड (रुपये) कहाँसे मिलेंगे ? फिर भी जितने प्रकारके साधन-कौशलोंका उल्लेख किया गया है, उन सब क्रियाओंका अनुष्ठान करनेवालोंके लिये जिन जिन बातोंका जानना ज़रूरी है, उनका वर्णन भली-भाँति यथास्थान कर दिया गया है। सर्वसाधारणके समझनेके लिये भाषाका ठीक-ठीक प्रयोग करनेकी चेष्टा भी की गई है ; तिस पर भी यदि किसीको कोई विषय समझमें न आवे, तो मेरे पास आने पर उसका संशय मिटाया जा सकता है।

स्वधर्म्म-निरत पाठकोंमेंसे कितने ही मन्त्रजपादि किया करते होंगे ; लेकिन मन्त्र-जप करके भी कोई सिद्धि नहीं पाता, इसका क्या कारण है ? यही कि मन्त्र-जप-रहस्य-साधन और जप-समर्पण-विधिके विना मन्त्र-सिद्धि नहीं होती ; सुतरां जप-फल प्राप्त होना असम्भव हो जाता है। विधि-पूर्वक जप-रहस्यादि न

करने पर और मन्त्रके प्राणरूप मणिपुर-चक्रमें उनकी क्रियादि न करनेसे कभी मन्त्रका चैतन्य नहीं होता ; सुतरां प्राणहीन देहकी भाँति प्राणहीन मन्त्रका जप करनेसे कोई फल नहीं हो सकता। यह मेरी अपनी मनकी सृष्टि की हुई बात नहीं है। शास्त्रमें भी कहा है, कि :—

चैतन्यरहिता मन्त्राः प्रोक्तवर्णास्तु केवलाः ।
फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्षकोटिजपैरपि ॥

तन्त्रसार ।

चैतन्य रहित मन्त्र केवल उच्चारित वर्ण मात्र है—निरर्थक शब्दाडम्बर है। चैतन्य रहित मन्त्रका लक्ष-कोटि जप करने पर भी फल प्राप्त नहीं होता। तभी तो देखिये, केवल मालाझोला और झंडा उठा कर बाह्याडम्बर दिखाने वा बाह्य अनुष्ठान करनेवाले मन्त्र-जपका कोई फल नहीं पा सकते हैं। लेकिन ऐसे गुरु कितने हैं, जो दीक्षाके समय शिष्यको मन्त्र चैतन्यके उपायादिकी शिक्षा देते हैं? सम्भवतः स्वयं गुरुदेव ही उस विषयसे अनभिज्ञ होते हैं ; अतः बेचारा शिष्य गुरुके बतलाए हुए उसी नीरस शुष्क-मन्त्रका यथासाध्य जप करके भी पहले जिस अन्धकारमें था, उसीमें ही भटकता रहता है। उसके हृदय-क्षेत्र की अवस्था एक ही प्रकार की रहती है। आजकल इस श्रेणीके गुरुदेव कहते हैं कि "कलिकालमें मानवगण साधु और गुरुको नहीं मानते।" लेकिन, वे लोग इस बातको स्वीकार नहीं करते कि उनके ऐसा

कहनेका कारण उनकी अपनी ही त्रुटि है। * केवल दीक्षा देने और नियमित रूपसे प्रति वर्ष दक्षिणा लेकर कृतकृतार्थ करनेसे भक्ति कैसे उत्पन्न होगी ? विद्या-बुद्धि, आचार-व्यवहार, आहार-विहार, सांसारिकता या क्रिया कर्म्ममें गुरुदेवका शिष्यसे किसी प्रकारका भेद नहीं होता। यदि शिष्यका अज्ञानान्धकार दूर करके संसारके त्रितापरूप विषयोंका नाश करनेकी शक्ति स्वयं गुरुदेवमें ही नहीं है, तो उनके प्रति प्रीति, भक्ति, सम्मान होगा कहाँसे ? इन्हीं सब बातोंको सोचकर जप करनेवालोंके उपकारार्थ मन्त्र-चैतन्यका सहज और सुगम पथ मन्त्रकल्पमें लिखा है। साधकगण जप रहस्य समझ कर बताई हुई प्रणालीसे क्रियानुष्ठान करने पर अवश्य ही मन्त्र-चैतन्य करके जपमें भी सिद्धि लाभ करेंगे।

इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय मेरी ग्रन्थगत विद्या नहीं है। श्रीश्रीगुरुदेवकी कृपासे जिन-जिन क्रियाओंका अनुष्ठान करके मैंने सुफल लाभ किया है, उनके आदेशानुसार उन्हीं क्रियाओंमेंसे कईएक सहज और सुख-साध्य पद्धतियाँ इस ग्रन्थमें लिखी गई हैं। अब पाठकोंसे विशेष अनुरोध है, कि वे स्वयं शास्त्र अध्ययन करके या किसीके बाहरी आडम्बरमें फँस कर ही साधनमें प्रवृत्त न हो जायँ। क्योंकि, अनभिज्ञ व्यवसाइयोंके उपदेशानुसार क्रियानुष्ठान करनेसे

---

* मन्त्र-प्रदान करके विधि-पूर्वक मन्त्र चैतन्य कराकर प्रत्यक्ष फल दिखा सकनेसे मैं डंके की चोट कह सकता हूँ, कि घोर पाखण्डीके हृदयमें भी भक्तिका सञ्चार हो सकेगा।

कोई भी फल-लाभकी आशा नहीं कर सकता, बल्कि अनर्थका भागी अवश्य होता है अथवा श्वास-खाँसी आदि कठिन व्याधिसे पीड़ित होकर उसे जीवन-भरके लिये साधन-भजनकी आशा छोड़ देनी पड़ती एवं अकालमें ही जीवनसे भी हाथ धो लेना पड़ता है या जीवन-भरके लिये अपनी उत्पन्न की हुई रोग-यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। इस ग्रन्थमें जो-जो योग-पद्धतियाँ लिखी गई हैं, वे सब सहज और सुखसाध्य हैं एवं सिद्ध-योगियोंसे अनुमोदित हैं। इनमेंसे किसी भी क्रियाका अनुष्ठान करने पर साधक नीरोग होकर तृप्ति लाभ कर सकेगा एवं दिन-दिन मुक्तिपथमें भी अग्रसर हो सकेगा। किन्तु जो लोग अज्ञान अन्धकाराच्छन्न पृथ्वी पर पूर्णज्ञान-प्रभाकी विमल आलोकरश्मिका लाभ करना चाहते हैं, उनके लिये अचश्चल, अनन्त आलोकाधार सूर्यमण्डल मध्यवर्ती महा आलोकमय महा-पुरुषके समीप पहुंचनेके सिवा इस क्षुद्र पुस्तकके द्वारा उनकी महा-कांक्षाकी निवृत्ति होना असम्भव है।

प्रारम्भमें वायु-धारणके अभ्यासके समय आँख, कान, पञ्ज-रास्थि और मस्तकके दर्दका अनुभव होता है, यहाँ तक कि श्वास-कास रोगके लक्षण भी दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि हठयोग प्रभृतिमें ऐसी रोगोत्पत्ति होनेकी सम्भावना रहती है सही, परन्तु इस ग्रन्थमें लिखे साधनोंमें ऐसी कोई आशंका नहीं है। तथापि स्वर-कल्पमें शरीर स्वस्थ, निरोग, दीर्घजीवी एवं बुढ़ापेसे रहित तथा सुन्दर कान्तियुक्त बनानेका भी कौशल लिखा गया है। पाठकगण परीक्षा करके उसकी सत्यता उपलब्ध कर सकते हैं।

मनुष्य भूल-भ्रान्तिका दास है, तिस पर मेरी विद्या-बुद्धि तो बहुत ही कम है—ऐसा कहना भी असंगत न होगा। सदा-सर्वदा मेरे पास शिक्षित तथा अशिक्षित भ्रातृगण आते-जाते हैं, उनके साथ बात-चीत करते करते एवं प्रयागधाममें कुम्भमेलाके दर्शनार्थ जानेकी शीघ्रतामें पुस्तककी पाण्डुलिपी लिखी गई है; सुतरां भूलें रहना अवश्यम्भावी है। अतः मराल धर्म्मानुसरणकारी जापक तथा साधकगण दोपांश छोड़ कर स्वकार्य्यमें प्रवृत्त होंगे, तो उनको अपने काममें अवश्य सफलता मिलेगी एवं क्षुद्र ग्रन्थकार भी सुखी होगा।

आसाम प्रदेशके गारोहिलकी हाजं बस्तीके रहनेवाले मेरे परम भक्त अपत्य-तुल्य श्रीमान् सीताराम सरकार तथा श्रीमान् मदनमोहन-दासने तन-मन-धनसे जैसी सेवा की और मेरे साधनके कार्य्यमें जैसी आर्थिक सहायता की, उसका उल्लेख करने योग्य वाक्-विभव (शब्द-संग्रह) मेरे पास नहीं है। उनके उपकारका प्रत्युपकार करना मेरे अधीन नहीं है। इस परपिंड-भोजी (परान्न भोजन करनेवाले) भिखारीके पास आजकल केवल मात्र आशीर्वाद ही सम्बल (आधार) है; इसीसे काय-मन-वाक्यसे आशीर्वाद करता हूँ, कि विरूपाक्ष-वक्षो-विहारिणी दाक्षायणीकी कृपासे उक्त दोनों श्रीमान् स्वस्थ और कार्य्यक्षम शरीरमें दीर्घजीवी होकर वैषयिक तथा आध्यात्मिक उन्नतिके उच्च सोपान पर अधिष्ठित हों।

पातिलदह परगनाके तहसीलदार मेरे प्रियभक्त श्रीउमाचरण सरकार और तदीय पत्नी श्रीमती हेमलता दासीने सर्व प्रकारसे

इस ग्रन्थके प्रकाशनमें जिस प्रकार यत्न और सहायता की है, उसका उल्लेख करने योग्य भाषा मेरे पास नहीं है। वास्तवमें उनकी सहायता के बिना इस ग्रन्थका प्रकाशन असम्भव था।

इस पुस्तकके प्रकाशनमें बहुतसे शिक्षित महात्माओंकी ओरसे भी उत्साह और आर्थिक सहायता मिली है। उनमेंसे हरिपुरके प्रसिद्ध जमींदार आश्रित-प्रतिपालक, स्वधर्म्म-निरत, अकपट-हृदय और मेरे परममित्र प्रख्यातनामा श्रीयुत बाबू राय शारदा प्रसाद सिंहने प्रारम्भसे लेकर अन्ततक जिस प्रकारकी सहायता की और सहानुभूति दिखलाई—वह अवर्णनीय है। हरिपुर निवासी वकील उदार-हृदय बाबू ललित मोहन घोष बी. ए., बी. एल., हाइस्कूलके प्रधानाध्यापक, योगसाधन-रत बाबू अन्नदा प्रसाद बन्द्योपाध्याय एम. ए., संस्कृत शिक्षक मिष्टभाषी श्रीयुत अघोर नाथ भट्टाचार्य्य काव्यतीर्थ, पोस्ट मास्टर विनयी बाबू, महेन्द्र सेन प्रभृति शिक्षित महोदयोंने स्वतः ही यथेष्ट सहायता की है। कृतज्ञ चित्तसे सर्वमङ्गलाके निकट उनकी सर्वाङ्गीन मङ्गल कामना करता हूं।

विदा लेते समय पाठकोंसे यही सानुनय निवेदन है, कि इस क्षुद्र ग्रन्थमें जो कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, उन्हें छोड़कर साधन कार्य्यमें प्रवृत्त होनेसे ही मेरी सब आशाएँ पूरी होंगी तथा परिश्रम सफल होगा। मैं नाम, यश कुछ भी नहीं चाहता, आजकल इस संसारमें बुराइयोंकी कुछ कमी नहीं है; लेकिन उनकी ओर ध्यान देनेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। इस धर्म्म-विप्लवके समय

यदि एक भी साधक मेरी वर्णन की हुई क्रियाओंका अभ्यास करके सफलता प्राप्त कर सकेगा, तो मैं लेखनी धारण करना सार्थक समझूंगा एवं गृहान्न शून्य होकर भी प्रसन्न चित्तसे जीवनको धन्य समझूंगा। निवेदनमिति—

गारोहिल-योगाश्रम
१० वीं पौष, बड़ादिन
१३१२ वङ्गाब्द।

भक्त-पदार-विन्द भिक्षु—
दीन—निगमानन्द।

तृतीय संस्करण

बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि इस पुस्तकके मूल बंगला संस्करणके जहाँ १० संस्करण हो गये हैं, वहाँ यह हिन्दीका भी तृतीय संस्करण हो रहा है। इस धर्म पुस्तकका इस प्रकारसे प्रचार होता देख, अत्यन्त हर्ष होता है।

इस पुस्तकके अनुवादक श्रीश्रीमत् ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेव 'पियूषपाणि' धन्यवादके पात्र हैं, जिन्होंने इस संस्करणका समुचित संशोधन कर दिया है।

इस पुस्तकका मुद्रण-व्यय भार—पहले दो संस्करणोंकी तरहसे ही दक्षिण बंगला सारस्वताश्रम (हाली शहर २४ परगना) ने ही वहन किया है।

झूलन पूर्णिमा

विनीत—
आत्मानन्द सरस्वती

वाणी आवाहन।
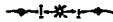
नरामरासुराराध्या वरदाऽसि हरिप्रिये।
मे गतिस्त्वत्पदाम्भोजं वाग्देवीं प्रणमाम्यहम् ॥

गीत

(भैरवी—एकताला)

कुरु करुणा जननी!
सरोजिनि श्वेत-सरोज-वासिनि !!
अमल-धवल-उज्ज्वल भाति,
श्रीमुख जड़ित-तड़ित-ज्योति,
सुकेश चूड़ शीष शोभित, फुल्लार-विन्द-लोचनी ॥
कर्ण शोभे कनक कुण्डल,
लाजत दामिनी द्युति झलमल,
राजत तामें मानिक मण्डल, गजमुक्ता मान-मोचनी;—
मृणाल लजावत चारु द्विभुज,
वीणा राजत युगल अम्बुज,
नखर निकर प्रभाकर कर, सकल दर्प-हारिणी ॥
चरण तरुण-अरुण किरण,
द्विजराज लाजि याचे शरण,
शुभ्र धवल हंस वाहन रूप त्रिभङ्ग धारिणी;—
कवि भये कालिदास,
वेदभागी वेदव्यास,
सोई कृपा करो प्रकाश, नलिन अन्तर-वासिनी ॥

प्रणमूं पद्माम्बुज अम्बुज-निवासिनी,
सुरासुर नराराध्या, विद्या-विधायिनी,
मैं हीन दीन-सत्त्व,
क्या जानूं तेरा तत्त्व,
गीर्वाण गणेश जिसकी पावें नहीं सीमा !
मैं मतिमन्द अति क्या वरणूं महिमा ॥

सुनो, माते प्राण की उन्मादना आकुलता,
तुम बिन कहूँ किससे मेरी मनोव्यथा ?
विधिकी विचित्र विधि,
मैं न सकूं जिसे रोधि,
मम गति जो श्रीपति, उनके विधान में !
सौध-राजि त्यागि आज भटकूं श्मशान में ।

चक्र-धुरी-सदृश है अदृष्ट नियत,
कर्म-सूत्र-फलसे है जो परिभ्रामित,
विधिका निर्बन्ध जोई,
निश्चय फलेगा सोई,
सुख दुःख तुल्य जानि नहिं मानूं खेद ।
अन्तमें है सम गति नहिं कुछ भेद ॥

शान्ति-सुख नहीं है माँ, विश्वके विभव में,
प्रकृत-सुख है पाया, इस क्षण-लव में,
देह चिता भस्मधारी
माते! माते!! पुकारि,
नीरव निशामें सुना, अनाहत नाद।
मनमें प्रकट होता अमल आह्लाद॥

अन्त मिलें जिस विधि श्रीहरि-चरण,
पार्थिव पदार्थ से न मुझे प्रयोजन,
ख्याति, प्रतिपत्ति, आशा
प्रीति, प्रेम की पिपासा,
माया, मोह, दया, धर्म, किये हैं विसर्जन।
हृदय स्मशान-सम भीति के कारण॥

मरु सम शुष्क यह है मेरा जो हृदय,
आशांकुर का हो कैसे इसमें समुदय,
उदासीन धर्म नहीं
दुराशा अभ्युदय ही,
धैर्य बाँध रोकनेको, आशा नदी।
वेगयुक्त हृत्क्षेत्रे, वहे निरवधि॥

लुप्त प्राय गुप्त शास्त्र, का हो सु-प्रकाश,
यह चिरदिन से है, मेरी अभिलाष,
श्रीगुरु के कृपाबल,
सिद्ध योगियों के स्थल,
जो हैं योग-साधनाके सहज कौशल।
बहु दिन साधि जिन्हें किया है सफल॥

वह सब सुख-साध्य, साधन-पद्धति,
करूँ मैं प्रचार साध, सुनो, माँ, भारति,
किन्तु कौन गुण लहि,
लेखनी स्वकर गहि,
शिवोक्त-शास्त्र के विधान का करूँ प्रचार!
विद्या-बुद्धि-विवर्जित शंख मैं गवाँर!

फिर क्यों उपजे मन असम्भव आशा?
हिमाचल लांघने की पंगु की प्रयासा!
जंबुक और सीपी कैसे,
सिंह और नक्र नाशैं?
तोभी होता हूँ क्यों मैं दुराशा का दास?
असम्भव मरुदेशे, पद्म का विकाश!

जिनके उपकार हेतु, आशा धारि मनमें,
साधन-पद्धति लिखूं, मोद भरि तनमें,
वे समस्त भ्रातृगण,
करेंगे पुस्तक पठन,
उपहास कर कोई पीटेगा तालियां भी !
कोई क्षुद्र व्यक्ति खूब देवेगा गालियां भी ॥

नहीं है पृथ्वीपे शेष, एक बिन्दु अश्रुजल,
खल पिशाचों से है परिपूर्ण भूमण्डल,
किसकी हो अधोगति
न किसीकी इसमें क्षति,
हिंसक पाखण्डी जो हैं पर-श्री-कातर।
पाप-परिपूर्ण सब भीतर-बाहर ॥

मदोन्मत्त स्फीत वक्ष फिरते हैं जगमें,
दुर्बल को देख निठुर रोंधते हैं पगमें,
देखूं यहाँ अविरत,
दुखी तप्त अवनत,
होंगे इस विश्व बीच, संख्या नहिं जिनकी !
मनोदुःखे मुह्यमान, आत्मवृत्ति उनकी ॥

निराशासे निपीड़ित होकर हे जननी !
पुकारूँ कातर भावे, माते, माधव-मोहिनी ॥
जिसके मुखकी ओर
करती हो कृपाकोर,
उसके लिये है फिर कौन-सी अगम्य बात !
साक्षी देते कालिदास कवि भारत-विख्यात ॥

तेरी ही कृपासे माता, महादस्यु रत्नाकर,
प्राप्त कर दिव्य-ज्ञान, बन गया कवीश्वर,
तभी तो करूँ पुकार
मानस में तू पधार
चरणमें सौंपि चित्त, लेखनी ले करमें ।
उपहास का न भय, मुझे जग भरमें ॥

दीन-हीन पै दया करो हे गुणमयि माते ।
कृपासिंधु नहिं घटै, बिन्दुमात्र जलपाते ।
भारत गौरव रवि,
बहुतेरे महाकवि,
मनोभाव व्यक्त करने में थे असमर्थ ।
तेरी ही कृपा से हुए कवि-श्रेष्ठ समर्थ ॥

इसी हेतु माँ भारति, लेता हूँ शरण तेरी,
अवशि होवेगी सभी कामना पूरण मेरी,
मनमें जो भाव धरे,
मुखसे प्रकट करे,
धैर्य्य-शिक्षा लूंगा माता, तेरे कृपाबल से।
उपेक्षा करूँगा सर्व वचन-कौशल से॥

दास को दो दिव्यज्ञान, हे अज्ञान-नाशिनी।
कुयश सुयशे दृढ़ बुद्धि दो प्रकाशिनी।
सुख दुःख समवृत्त,
कार्यमें रहूँ प्रवृत्त,
नित्य निरंजन भजि नित्यानन्द पाऊं।
जीवमात्र में सदैव ब्रह्मभाव ध्याऊं॥

और एक निवेदन माते तव चरण में,
विरह-विधुर मम आत्मीय स्वजन में,
दीजे दिव्य-ज्ञान दान,
सुपथ करो प्रदान,
हतभाग्य तरें जिससे पावें नहिं क्लेश!
आशा पूर्ण करो माता निवेदन शेष॥

सेवकाधम—
श्रीनलिनीकान्त।

ॐ जयगुरु

अवतरणिका !

ॐ ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्त्तिं
द्वन्द्वातीतं गगन-सदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलममलं सर्वदा साक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामी ॥

परम-स्नेहमय सच्चिदानन्दस्वरूप भक्त-हृदय-विहारी श्रीश्रीगुरु-देवके तरुण-अरुण सदृश श्रीश्रीचरण-कमलोंमें भक्ति पुरस्सर प्रणतिपूर्वक आज मैं अत्यन्त आनन्दके साथ भारतीय सुधी भाइयोंके करकमलोंमें बङ्गला योगीगुरुका हिन्दी अनुवाद अर्पण कर रहा हूँ। आज मुझे परम आनन्द हो रहा है, कि जिनकी अहेतुकी कृपासे यह चराचर विश्व सृजित, पालित, वर्द्धित, सञ्जीवित एवं अन्तमें लय प्राप्त हो रहा है, उन्हींकी महत् अनुकम्पासे मैं हिन्दी भाषा-भाषी न होते हुए और विशेष अल्पज्ञ होने पर भी इस पुस्तकका अनुवाद कर सका हूँ।

जीवनके प्रारम्भमें जब मैंने इस कर्म्मक्षेत्रमें अवतरण किया, तब हिन्दीभाषा कैसे बोलते हैं, यह भी मैं नहीं जानता था। धीरे-धीरे नाना देश-देशान्तर घूमनेके बाद जब सन् १९२७ के अक्टूबरमें, मैं राजपूतानामें आया, तब हृदयके अन्दरसे मानों किसीके द्वारा यह

प्रेरणा हुई कि मेरे पूर्व-पुरुषों यानी हमारे आर्य्य-ऋषि-मुनियोंके निवास तथा साधन-भजनका स्थान इसी पुण्य-प्रदेशमें था। यदि मुझे अपने पूर्व-पुरुषोंकी समस्त साधनाका मूल-तत्त्व तथा आत्मज्ञान उपलब्ध करना पड़े, तो इस प्रदेशमें ही निवास कर यहाँकी भाषाका भी मुझे ज्ञान-प्राप्त करना होगा। इसी इच्छा-पूर्तिके लिये धीरे धीरे मैंने इस प्रदेशको अपना कार्य्यक्षेत्र बनाना आरम्भ कर दिया; तथा यहाँकी भाषाका भी मैं धीरे धीरे अभ्यास करने लगा।

कुछ समय पहले यद्यपि योगीगुरुका हिन्दी अनुवाद होकर पहला संस्करण भी निकल चुका था, तथापि उसमें कितनी ही अशुद्धियां रह गई थीं और अनुवादकने मूल-विषयका भी बहुतसा अंश छोड़कर अपने उद्देश्यको प्रकट किया था। अतः जब मैंने हिन्दी भाषाका कुछ ज्ञान-प्राप्त करके देखा, कि श्रीश्रीगुरुमहाराजके उद्देश्य, भाषा, भाव, किसीसे भी इसका लगाव नहीं है, तब मुझे बड़ा क्लेश हुआ और उसी दिन मैंने सङ्कल्प कर लिया, कि मैं स्वयं ही इसका पुनः अनुवाद करूँगा। यद्यपि मैं यह जानता था, कि योगीगुरुके भाषा, भाव और विषय जितने ऊंचे दर्जेके हैं; वैसे ही भाषा, भाव और विषय पूर्ण रूपसे रख कर मैं हिन्दी अनुवाद कर सकनेमें असमर्थ हूँ, तथापि जिनकी इच्छासे मेरे अन्तःकरणमें इस कार्य्यकी प्रेरणा हुई है, उनकी ही कृपासे मैं अज्ञ होनेपर भी इस अनुवादको पूर्ण कर लूंगा। कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि "योगीगुरु" के जैसी भाषा-शैली साधन-तत्त्वसे पूर्ण तथा आनन्द-प्रद धार्मिक पुस्तक

आजतक मेरे देखनेमें नहीं आई ; तिसपर भी उस भाव-भाषाको कायम रख कर अनुवाद करना कितना कठिन है, इसे केवल भुक्तभोगी अनुवादक ही समझ सकते हैं। सुधी पाठक जब इस ग्रन्थको पढ़ना आरम्भ करेंगे, तभी उन्हें पता लगेगा कि यह पुस्तक कितने गूढ़ तत्त्वशाली विषयोंसे पूर्ण है तथा किस प्रकार भाषाकी प्राञ्जलता, मधुरता, कोमलता, भावमयता, सौष्ठवता, उद्दीपनता, सजीवता एवं साधनमें प्रेरकताके लिये विशेष-रूपसे युक्त है।

आयुर्वेदमें जिस प्रकार 'मृत-सञ्जीवनी'का नाम सुनते ही रोगीके हृदयमें इस बातके लिये अतिशय उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है, कि इसका व्यवहार करनेसे मैं अवश्य कष्टमुक्त हो जाऊंगा, वैसे ही पाप-ताप-क्लिष्ट, संसार-जर्ज्जरित, मरुसम विषाद-युक्त, भाग्यहीन मानवगण "योगीगुरु" पाठ करके सदा मंगलमय परमपिताको अपनानेके लिये उत्कण्ठित हो उठेंगे और उनके चित्तमें यह आकांक्षा दृढ़ हो जायगी, कि "मैं भी इस प्रकारकी साधना करके इष्ट-दर्शन अथवा आत्मज्ञान प्राप्त कर सकूंगा।"

बङ्गला भाषामें श्रीश्रीगुरु महाराजकी बनाई हुई नाना प्रकारकी साधनाकी प्रत्यक्ष फलप्रद पुस्तकें हैं ; उनमेंसे कई-एक पुस्तकोंके तो एकादश संस्करण तक हो चुके हैं तथा एक एक संस्करण पाँच-पाँच हजार तकके छपते हैं। योगीगुरुके बङ्गला संस्करणकी सातवीं बार तक लगभग १६००० हजार पुस्तकें बिक चुकी हैं और आठवां संस्करण यन्त्रस्थ है। हिन्दी भाषाके सुधी-साधक-वृन्दके लिये

धीरे धीरे श्रीश्रीगुरुमहाराजकी समस्त रचनाएँ अनुवाद करके प्रकाशित करनेका विचार है। किन्तु मैं तो "अद्य भक्ष्यो धनुर्गुणः" —भिखारी हूँ। अर्थाभावके कारण पुस्तकावली छपानेके लिये असमर्थ हूँ।

अनुवादमें अनेक स्थानों पर हिन्दी भाषामें मूल-बङ्गलाकी तरह भाव व्यक्त न हो सकनेसे मैंने मूल बङ्गला वाक्य रखकर कोष्ठमें उसका हिन्दी शब्दार्थ लिख दिया है। इतने पर भी यदि कहीं किसी भाईको सन्देह उत्पन्न हो तो वे मेरी असमर्थताके लिये क्षमा करके मुझे सूचित करनेकी कृपा करेंगे, जिससे कि आगामी संस्करणमें उचित संशोधन किया जा सके।

त्रिभुवन त्राणकारी श्रीश्रीभगवान् रामचन्द्रके वंशधर राजपूतानान्तर्गत डूंगरपुर राज्यके लोकप्रिय प्रजा वत्सल हिज हाईनेस राए ए-रायन महाराजाधिराज महारावल श्रीश्रीमान् लक्ष्मण सिंहजी साहब बहादुर तथा उनकी परमकरुणामयी माता धर्म्मलक्ष्मी हर हाईनेस महारानी श्रीश्रीमती देवेन्द्र कुँवर देवी साहबा महोदया तथा उक्त पवित्र वंशके राजपूतानान्तर्गत बाँसवाड़ा राज्यके लोकप्रिय प्रजा-वत्सल हिज हाईनेस राए-ए-रायन महाराजाधिराज महारावल श्रीश्रीमान् पृथ्वी सिंहजी साहब बहादुर महोदयने विशेष कृपा-पूर्वक मुझे नाना प्रकारकी सहायता की है, जिसके लिए मैं विशेष कृतज्ञ हूँ। परममङ्गलमय सर्व-सिद्धि-दाता भक्तवाञ्छा-कल्पतरु श्रीश्रीसद्गुरु महाराजके तरुण-अरुण सदृश श्रीश्रीचरण कमलोंमें गिड़गिड़ाके

प्रार्थना करता हूँ, कि उक्त चिः श्रीश्रीमान्-द्वय तथा श्रीश्रीमती माजी साहबा ऐसे ही जन-हितकर कामोंमें सुप्रतिष्ठित रहकर परा-शान्तिके अधिकारी बनें।

जगत् प्रसिद्ध आर्य्य-कुल-कमल-दिवाकर महाराणा प्रताप सिंहजी के मेवाड़ राज्यके सुयोग्य मिनिष्टर सुकोमल-हृदय, धर्म्म-रञ्जन श्रीश्रीमान् वाबू प्रभाचन्द्र चट्टोपाध्याय महाशयने सर्वप्रथम इस प्रान्तमें जिस भावसे मुझे अपने वालक-वत् अपनाया है; उसे प्रकाश करने जैसी भाषा मेरे पास नहीं है; तथा मेरे परम सुहृद मध्यभारतान्तर्गत मालवा—आगरा निवासी श्रीमान् पंडित गोपीवल्लभजी उपाध्यायने स्वतः प्रवृत्त होकर इस पुस्तकके संशोधन तथा प्रूफ करेक्शनका भार ले लेनेके कारण ही, मैं इसे इतनी शीघ्रतासे आप सज्जनोंके कर-कमलोंमें रख सका हूँ। वे हिन्दी साहित्यके उच्चकोटिके लेखक तथा साप्ताहिक "सुदर्शन" (देहरादून) तथा मासिक "भ्रमर" (बरेली) आदि कई एक पत्र-पत्रिकाओंके योग्य सम्पादक रह चुके हैं। इस पुस्तकके लिये उन्होंने निःस्वार्थ परिश्रम किया है, एतदर्थ मैं उनके लिए मङ्गल-कामना करता हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य जिन जिन भाइयोंने इस कार्य्यमें मुझे सहायता दी है, उन सबको मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। परम-शान्तिदाता श्रीश्रीठाकुरके श्रीश्रीचरण कमलोंमें आकुल प्रार्थना करता हूँ, कि वे उन सब सज्जनोंको अपने अतुल स्नेहसे अपना लें तथा सुख-शान्ति प्रदान कर उनके जीवनको आनन्दमय बना देवें।

अन्तमें सुधी-साधक-वृन्दसे निवेदन है, कि वे भाषा-दोष तथा व्याकरण-गत भूल-भ्रान्तिको छोड़ केवल दिव्य-भावमें विभोर होकर ही इसका पाठ करें और अपने अपने जीवनमें सत्य-सनातन हिन्दू-धर्म्मकी साधना करके उन्हें उपलब्ध करते हुए परमानन्द अवस्थाको प्राप्त करें। जयगुरु !

सारस्वत मठ
झूलन पूर्णिमा
१९८८ वि० सं०।

श्रीश्रीगुरुचरणाश्रित—
श्रीब्रह्मचारी गोपाल।

सूची-पत्र ।

प्रथम अंश ।

योग-कल्प ।

द्वितीय अंश।

साधन—कल्प।

तृतीय अंश।

मन्त्र—कल्प।

चतुर्थ अंश।

स्वर-कल्प।

परमहंस परिव्राजकाचार्य्य
श्रीश्रीमत् स्वामी निगमानन्द सरस्वती देव ।

योगीगुरु

प्रथम अंश

योगकल्प

ग्रन्थकारका साधन-पद्धति संग्रह

नमः शिवाय शान्ताय कारणत्रय हेतवे।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥

भूतभावन भवानीपतिके भवभीतिभञ्जन, भक्तहृदिरञ्जन चरण-युगलका स्मरण एवं पदाङ्कका अनुसरण कर ग्रन्थारम्भ करता हूँ।

विश्वपिता विधाताके विश्वराज्यमें सर्वत्र एक ही नियम है, कि "चिरदिन समान नहीं बीतते"। आज जो सुधाधवलित प्रासादके मध्यमें सुखसे शयन कर चतुर्विध रसास्वादनसे रसनाकी तृप्ति करता है, कल वही वृक्षतलका आश्रय लेकर एक मुट्ठि अन्नके लिये दूसरोंके दरवाज़े पर जा खड़ा होता है। आज जो, पिता, पुत्रके जन्मोत्सवमें मुक्तहस्त होकर अजस्र धनव्यय करके अपनेको सौभाग्यवान् समझता है; कल वह उसी नयनानन्द-दायक पुत्रकी मृतदेह

छातीसे लगाकर श्मशानमें छिन्नकण्ठ कपोतकी भाँति फड़फड़ाने लगता है। आज जो विवाहवासरमें अवगुण्ठनवती वाल-वधूका चन्द्र-वदन देखते-देखते भावी सुखसे विभोर होकर आशाका हार पिरोता है; कल वह उसी प्राणसमा प्रियतमाको दूसरेकी प्रणयाकांक्षिणी समझकर प्राण छोड़नेको तैयार हो जाता है। आज जो पलङ्गपर प्यारे पतिके पास बैठ, प्रेमके लहरसे प्राण परितृप्त करती है, कल वही बिखरे केश एवं छिन्न-भिन्न मलिन-वेशधारी पगलीकी भाँति मृत पतिके पार्श्वमें गिरकर धूलिमें लोटती है। अन्य देशोंमें जब दूसरे लोग नंगे रह कर वृक्षकी खोह या पहाड़की गुफामें वास करके कषाय कन्द-मूल-फलोंसे क्षुधा-निवृत्ति किया करते थे, उस समय आर्य्यावर्त्तमें आर्य्यगण सरस्वतीके पुलिनपर निवास करके सुललित स्वरमें सामध्वनिसे दश-दिशाओंको गुञ्जयमान करते थे। समय पाकर मुसलमान-धर्म्मके अभ्युदयसे राज्यविप्लव उपस्थित होनेपर हिन्दुगण स्वाधीनताके साथ-साथ क्रमशः अपने विपुल ज्ञान-गरिमा, आर्य्यवीर्य्य, आचार-व्यवहार और धर्म्मसे भी च्युत हो गये, भारत-गगन घोर अज्ञानके अन्धकारसे आच्छन्न हो गया। वीर्य्यैश्वर्य्यशाली आर्य्यगण अन्तमें सब विषयोंमें सर्वतोभावेन परमुखापेक्षी बन गये। समयके परिवर्त्तनसे मुसलमानी राज्यका अन्त और बृटिश आधिपत्यका विस्तार हुआ। पाश्चात्य शिक्षासे हिन्दुओंका मस्तिष्क बिगड़ा और वे स्वपथ भूल गये। जो हिन्दू-धर्म्म कितने ही युग-युगान्तरसे अपनी विमल स्निग्ध किरणोंको विकीर्ण करता आ रहा है, कितने ही अतीत कालसे जिस धर्म्मकी आलोचना, आन्दोलन और साधन-रहस्यका

उद्भेद चला आ रहा है, कितने ही वैज्ञानिकोंने, कितने ही दार्शनिकोंने जिसके सम्बन्धमें तर्क-वितर्क और वादानुवाद किया है, उसी सनातन हिन्दूधर्म्मके आश्रित हिन्दुगणको वर्त्तमान युगके सभ्य-शिक्षित पाश्चात्य-देशीय लोग तथा पाश्चात्य-शिक्षा-विकृत मस्तिष्क कितने ही भारतवासी—मूर्त्तिपूजक, जड़ोपासक एवं कुसंस्काराच्छन बता कर घृणा करते हैं। किन्तु हिन्दु-धर्म्मकी मूल-भित्ति अत्यन्त दृढ़ होनेके कारण ही वर्त्तमान युगमें राष्ट्रविप्लव और धर्म्मविप्लवके समय वह अशेष अत्याचार सहन करके भी जीवित रहा है।

किन्तु पहले ही मैं बता चुका हुँ, कि "चिरदिन समान नहीं बीतते"—स्रोत पलटा है। इस समय हिन्दुओंके हृदयमें ज्ञान, धर्म्म और स्वाधीनताकी लिप्सा जाग्रत हो उठी है। हिन्दुगण समझ चुके हैं, कि इस अति वैचित्र्यमय सृष्टि-राज्यकी सीमा कहाँ है ? हिन्दु-धर्म्म गभीर, सूक्ष्म, आध्यात्मिक-विज्ञान-सम्मत दार्शनिकतासे परि-पूर्ण है। हिन्दूधर्म्मका निगूढ़ मर्म्म कुछ-कुछ समझ कर पाश्चात्य जड़-विज्ञान चकित बन जाता है। दिन-दिन हिन्दूधर्म्मकी जैसी उन्नति दिखाई देती है, उसीसे आशा होती है कि, थोड़े ही दिनोंमें इस धर्म्मकी अमल धवल चंद्रिकासे समग्र-देशके सर्व-मानव, सर्व-जाति, उद्भासित एवं प्रफुल्लित हो उठेंगे।

आजकल हिन्दू-सन्तान हिन्दूशास्त्र पर विश्वास करती और हिन्दूधर्म्मको मानती एवं हिन्दू मतसे उपासना करती है। स्कूल-कालेजके छात्रोंसे लेकर युवकों और प्रौढ़ोंतक अनेकोंकी ही साधन-भजनमें प्रवृत्ति है, किन्तु उपयुक्त उपदेष्टाके अभावसे कोई भी

व्यक्ति साधनके विषयमें प्रकृत पथ देख नहीं पाते। हमारे देशके प्रख्यात-नामा पण्डितगण साधनका जैसा कठिन उपाय बताते हैं, उसे देखकर साधनमें प्रवृत्त होना तो दूरकी बात है, उसे सुनकर ही इस आशाको जन्म-भरके लिये जलाञ्जलि दे देनी पड़ती है। वे धर्म्म-कर्म्मकी जैसी लम्बी चौड़ी तालिका प्रस्तुत करते हैं, आजीवन कष्टो-पार्जित धन-व्यय करके भी उसे पूरा करना बहुतोंके लिये अत्यन्त कठिन है। धर्म्म करना हो तो स्त्री-पुत्रका परित्याग करना होगा, धन-रत्नको जलाञ्जलि देनी होगी, घरबार छोड़ना पड़ेगा, अनाहारसे देह शुष्क करनी पड़ेगी और स्वांग बनाकर वृक्ष-तलमें आश्रय लेकर शीत-वात सहन करना होगा, नहीं तो भगवान्‌की कृपा नहीं हो सकेगी! धर्म्ममें जो इतनी विडम्बना उठानी पड़ती है, यह बड़े ही आश्चर्य्यकी बात है। मैं जानता हूँ कि सुख ही के लिये धर्म्माचरण है; शास्त्रमें भी इस बातका प्रमाण मिलता है;—

सुखं वाञ्छति सर्वो हि तच्च धर्म्म समुद्भवम्।
तस्माद्धर्म्मः सदा कार्य्यः सर्ववर्णैं प्रयत्नतः॥

दक्षसंहिता।

तभी देखिए, धर्म्माचरणका उद्देश्य ही सुख लाभ है। अनाहार और अर्थव्यय करके कायिक तथा मानसिक कष्ट उठाना अज्ञानताका परिचायक है। दुःखकी बात है, कि उपयुक्त उपदेष्टाके अभावसे ही घरमें प्रचुर अन्न रहते हुए भी हमें उपवास करके समय बिताना पड़ता है। हमारे शास्त्र असीम और साधन कौशल अनन्त हैं। हम वर्षभरमें भादोंके महीनेमें केवल एक दिन शास्त्र-समूहको धूपमें

सुखानेके बाद गठरी बांधकर रख देते और सूखे मुंहसे दूसरेकी ओर दृष्टिपात करते हैं; किम्वा किसी विकृत साधनमें प्रवृत्त होकर विड़-म्बना भोगते हैं, नहीं तो कलि-कालके कन्धेपर बोझ रखकर निश्चिन्त हो जाते हैं। पाठक! मैंने कैसी विड़म्वना भोगकर अन्तमें सर्व-मङ्गलमय, सत्यस्वरूप, सच्चिदानन्द सदाशिवके सदानुग्रहसे सद्गुरुको पाया था, यह आपको बताये विना मैं प्रतिपाद्य विषयके वर्णनमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। सुनिये—

मैं त्रयोविंश वर्षकी अवस्थामे प्रफुल्ल प्राणकी समस्त सुख-शान्ति आशा-भरोसा, उद्यम और अध्यवसायको मादोंसे भरे भैरवनद तीरस्थ कदम्बके नीचे भस्मीभूत करते हुए स्मृतिकी ज्वलन्त चिन्ता-चिता छातीपर रख घरसे बाहर निकला था। बादमें कितने ही नगर, गांव और पुरोंमें परिभ्रमण करके सुचारु-कारु-कार्य्य खचित, सुधाधवलित और सदृश्य सौधराजीका निरीक्षण किया, किन्तु प्राणकी आग न बुझी; कितने ही नद, नदी ह्रदादिका उत्ताल-तरङ्ग-समाकुल और हृदय-कँपानेवाला कल-कल नाद कानोंमें पड़ा, किन्तु कराल-कालकी दंष्ट्राजनित कातरता न घटी। कितने ही पर्वत, कितनी ही उपत्यका अधित्यकाओंका आरोहण अवरोहण करके विश्वपिता विधाताकी विश्वसृष्टिके कौशलका विचित्र व्यापार अवलोकन किया, किन्तु जीवनकी ज्वाला ठण्डी न पड़ी। कितने ही श्वापद-संकुल-वन-भूमिमें अपूर्व प्रकृति-पद्धति और वनकुसुमके सुदृश्य एवं सुन्दर सुखमाका सन्दर्शन किया, किन्तु अन्तरकी ज्वाला अन्तर्हित न हुई। बहुत दिन पीछे आद्या, ब्रह्मा-विष्णु-शिवाराध्या, विन्ध्याद्रि-

निलया, महामायाकी कृपासे सावित्री पहाड़पर (पुष्करमें) साधकाग्र-गण्य परमहंस श्रीमत् सच्चिदानन्द सरस्वतीके साथ साक्षात् सन्द-र्शन संघटित हुआ। परमज्ञानी परमहंसदेवके उपदेशसे जीवका जन्म-जन्मान्तर रहस्य, गतागति, कर्म्म-फल-भोग और मायादि-निगमका निगूढ़-तत्त्व अवगत होनेपर मायाका मोह छूट गया। पार्थिव पदार्थकी असारता समझ पड़ी। हृदय-निकुञ्जमें कोकिलाने पहली तान छोड़ी,—क्या ही एक अभूतपूर्व आनन्दमें चित्त डूब गया। मैंने मन ही मन स्थिर संकल्प किया,—"मर्त्य जगत्में फिर मदन-मरणका अभिनय करते न घूमेंगे। हम किसके हैं ? कौन हमारा है ? वृथा रोनेका झगड़ा क्यों ? अकेले आये हैं; अकेले जायँगे ! तव लोभमें पड़ क्यों अशान्तिकी ज्वालामें जलें !" उसी क्षण हृदयके निगूढ़तम-प्रदेशसे शास्त्रका यह वाक्य फूट निकला,—

पिता कस्य कस्य माता कस्य भ्राता सहोदराः।
काया प्राणेन सम्बन्धः का कस्य परिवेदना॥

माया मोहका आवरण बहुत-सा दूर हट गया, किन्तु प्राणमें एक प्रबल पिपासा जाग उठी; मैंने स्थिर कर लिया, कि किसी भी एक साधक सम्प्रदायमें सम्मिलित होकर एक सुख साध्य साधनका अनु-ष्ठान करके लीलामयकी विचित्र लीलाका मधुर स्वाद आस्वादन करते करते जीवनके शेष दिन काट डालूंगा। यह सोचकर मैं किसी सिद्ध महापुरुषके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुआ। बहुतसे साधु संन्या-सियोंका अनुसरण किया। किसीने धूनीकी राखको चिनी बनाना बताया, किसीने गर्म तेलमें हाथ डालनेका कौशल दिखाया,

किसीने कपड़ेमें आग बांधनेकी पन्था प्रदर्शन की, किन्तु मेरे प्राणकी प्रबल पिपासा न मिटी। एक ख्यात-नामा तान्त्रिक साधकका संवाद पाकर मैं उनके पास जा पहुँचा और चेला बन नौकरकी तरह सेवा करने लगा। कुछ दिन पीछे उन्होंने एक अस्वाभाविक वस्तु लाने का आदेश दिया। "शनि और मंगलकी वज्राहत गर्भवती चण्डाल रमणीके उदरस्थ मृत सन्तानपर आसन लगाकर मन्त्र न जपे तो, तन्त्रोक्त साधनामें सिद्धिलाभ होना अति कठिन है।" मैं यह बात सुनकर ही उनके पाससे चल दिया। जो योगी नामसे परिचित हैं, उन्होंने नेती, धौती प्रभृति ऐसी कठिन क्रियायोंके अनुष्ठान करनेका उपदेश दिया कि हमारे वंशमें कोई भी उनका अभ्यास न कर सकता। वैरागी बाबाजियोंमें से एकने कहा,—"बिल्व-फल जैसा मस्तकका सुदृश्य बना कर खूब लम्बी चोटी रखो और गलेकी मालामें पीतलके दाने डालकर काठकी मालासे गुरुदत्त मन्त्रको जपो—नियमित रूपसे हरिवासर (भजनगान) और प्रत्यह किञ्चित् गोपीमृत्तिका गात्रमें न लगाने पर गोपीवल्लभ कृपा न करेंगे।" फिर एक आधुनिक सम्प्रदायके वैरागीने शास्त्रका कितना ही सूक्ष्मांश निकाला और अपने अनुकूल कदर्थ बनाकर बताया,—"सिवाय शक्तिके मुक्तिका और कोई भी दूसरा उपाय नहीं है।" उन्होंने दादी की अवस्थावाली एक माता भी बनानेकी व्यवस्था बताई। इस हेतुवादसे श्रीश्रीवृन्दावनके राधाकुण्डमें रहनेवाले परोपकार-परायण एक बाबाजी अपनी अनाथा कन्याको निःस्वार्थ भावसे दान करके मेरा मुक्तिका मार्ग खोलने पर भी तैयार हो गये; किन्तु मैं बड़ा अकृतज्ञ

हूँ ! नहीं तो क्या ऐसे उदार-हृदय निःस्वार्थ परायण और परोप-कारी व्यक्तिकी प्रार्थना न सुनकर भाग खड़ा होता ? पञ्जाब-प्रदेशमें रहनेवाले अमृतसरके उदासी सम्प्रदायने उपदेश दिया,—"यज्ञोप-वीत आदि छोड़कर छत्तीस जातिका अन्न खाते हुए घूमनेसे ही ब्रह्म-भाव जाग्रत होगा।" संन्यासियोंने अखण्ड विभूति-लेपन, सुदीर्घ जटा-जूट धारण, चिमटेका ग्रहण और त्वरितानन्दसे दमका कौशल सिखाया। नागा सम्प्रदायने नंगे होकर कमरमें लोहेकी जंजीर बांधने एवं अन्नादि परित्याग करके फल-मूल खानेकी व्यवस्था दी। किन्तु सावित्री पहाड़के पूज्यपाद परमहंसदेवने पहले ही मुझे कुछ पक्का कर दिया था, इसीसे इन सब फक्कड़ोंकी कोरी बातोंपर मन न मुड़ा। इतनेपर भी भग्नोत्साह न होकर जगतगुरु योगेश्वरके चरणका स्मरण करके अपनी कार्य्यसिद्धिके लिये मैं फिर घूमने लगा।

पश्चिम प्रदेशमें कुछ दिन भ्रमण करके मैं कामाख्या मांके चरणोंके दर्शनाभिलापसे कई साधु-संन्यासियोंके साथ आसाम विभागमें गया। आसाम पहुँचनेपर परशुरामतीर्थ देखनेको मन चाहा। गौहाटीसे जहाज़पर बैठकर डिबरूगढ़ और डिबरूगढ़से वाष्पीय शकटारोहण कर सदिया जा उतरा। सदियासे कोई २०।२५ साधु-संन्यासियोंके साथ दुर्गम और श्वापद-संकुल वनभूमि एवं छोटे-छोटे पहाड़ी टीले लांघनेपर बड़े कष्टसे परशुराम तीर्थपर पहुँचा। तीर्थ, नयन-मन-प्राण प्रफुल्लप्रद स्वभाव-सौन्दर्यसे परिपूर्ण है ! शास्त्रोंमें लिखा है, कि भार्गवने सब तीर्थोंमें घूमनेके बाद इसी ब्रह्म-

कुण्डमें अवगाहन करके मातृहत्या-जनित महापातकसे छुटकारा पाया था; एवं इसी कुण्डके प्रभावसे हाथमें लगा परशु भी निकल गया था। उसी दिनसे इस स्थानका नाम "परशुराम तीर्थ" पड़ गया है। इस ब्रह्मकुण्डसे ही ब्रह्मपुत्र नद निकला है, किन्तु आजकल ब्रह्मकुण्डसे उक्त नदका कोई लगाव नहीं। ब्रह्मकुण्डपर पहुँचकर मैंने भी सबकी तरह स्नान-पूजा आदि करके परिश्रम सार्थक किया और जीवनको धन्य समझा!

जिस दिन ब्रह्मकुण्ड पहुँचा, ठीक उसके दो दिन बाद में प्रबल ज्वर एवं आमशय रोगसे आक्रान्त हो गया। राहमें कई दिनके अनियमित परिश्रमसे मैं पहलेसे ही कातर हो गया था। इसके ऊपर ज्वर और आमाशयसे चार पांच दिनमें ही उठने बैठनेकी ताकत जाती रही। साथके संन्यासिगण लौटनेके लिये घबड़ा उठे; मैं बड़े सोच-विचारमें पड़ गया; क्योंकि उस समय मेरे शरीरमें एक पैर भी चलनेकी ताकत नहीं थी, तब कैसे उस दुर्गम वनभूमि और पर्वतश्रेणीको लांघता? अतः मैंने संन्यासियोसे दो चार दिन राह देखनेके लिये हाथ जोड़कर अनुनय विनय किया; किन्तु कुछ भी फल नहीं निकला। वे एक रातको मुझसे छिपकर और साधुजनोचित सहृदयता दिखाते हुए चुपकेसे चलते बने! फलतः मुझे अकेले उस जन-मानवशून्य पार्वत्य प्रदेशमें विषम विपद झेलनी पड़ी। पास ही असभ्य पहाड़ी लोगोंका एक छोटा-सा गाव था। मैंने निरुपाय हो उनसे गिड़गिड़ाकर रहनेको जगह मांगी। वे लोग साधु ब्राह्मणोंको नहीं मानते; किन्तु मेरी नई अवस्था और कातर शरीर देखकर

या दूसरे किसी कारणसे हो, उन्होंने सादर जगह दे दी। नया देश, नये, लोग और नई भाषा थी, इसीसे पहले-पहल जड़की तरह रहनेमें बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु दो तीन ही दिनमें मैंने उनकी भाषा सीख ली और धीरे-धीरे उनसे मेल-जोल बढ़ गया। वे नौकरकी तरह मेरी सेवा करने लगे। मैं उनके सद्व्यवहारसे मुग्ध हो गया। आशातीत यत्न और सेवासुश्रुषा पाकर भी पूरे तौरसे स्वस्थ और सबल होनेमें एक माससे कुछ अधिक समय बीत गया। मैं बंगाल वापस पहुँचनेकी आशासे ब्रह्मकुण्डपर गया; किन्तु वहां जाकर सुना, कि "आगामी कार्तिक माससे पहले सदिया जानेके लिये साथी न मिलेगा।" उस श्वापद-संकुल वनभूमि को अकेले पार करना किसीके वशकी बात नहीं। सुतरां भग्नोत्साह होकर फिर मैं पहले आश्रय देनेवालेका शरणापन्न बना। वे खुशीसे छः सात महीनेके लिये जगह देनेपर राज़ी हो गये। कहना वृथा है, कि यह समग्र स्थान भारतवर्षमें तो है, किन्तु वृटिश शासनके अधीन नहीं है।

सर्वनियन्ता विश्वपिता विधाताके चरणोंका भरोसा रख, "जब जैसा—तब तैसा" सोचकर इन सब अशिक्षित असभ्योंके साथ एक प्रकारका सुख स्वच्छन्दतासे समय काटने लगा। उनके उदार स्वभाव, सरल-प्राण, सत्यनिष्ठा, परोपकार, सहानुभूति आतिथेयिता प्रभृति जो अनेक सद्गुण देखनेमें आये, वर्त्तमान युगमें शिक्षित और सभ्यताभिमानी भारतवासियोंके बीच वे कहीं भी नहीं दिखाई देंगे। किसी भी देश और किसी भी जातिमें ऐसी भद्रता और मनुष्यत्व

इस दुर्दिनमें देखनेको न मिलेगा। इन्हें हम असभ्य और अशिक्षित बताकर घृणा करते हैं, किन्तु मैं मुक्त-कण्ठसे कहता हूँ, कि यदि आप प्रकृत मनुष्यत्व इस मर्त्य जगत्में कहीं देखना चाहते हैं, तो सिवाय इन असभ्योंके वह और कहीं न पाइयेगा। फिर यदि हम मनुष्य समझे जावें, तो इन्हें देवता मानना पड़ेगा। हाय! क्या ही बुरे समयमें हम लोगोंने सभ्यताकी शिक्षा पाई है। किसी सभ्य शिक्षित बाबूके घर दास-दासी और कुत्ते-बिल्ली अन्न खाकर समाप्त नहीं कर सकते; किन्तु वही बाबू देश या ग्रामके निरन्न व्यक्तिको सहायता देना तो दूरकी बात है, उनके भाई जब घरके पास ही रह कर, सारा दिन भूखे मरते हों और अन्न संग्रह करनेमें असमर्थ हों, यहां तक कि अन्त समयमें भूखे मुंह आहें भरते हों; तब भी क्या वे उस ओर दृष्टि डालते हैं? क्षुधातुर अतिथिको एक मुट्ठी अन्न देना हम अपव्यय समझते हैं; विपदापन्न और निराश्रय पथिकको एक रातके लिये जगह देनेमें हम हिचकते हैं; इस पर भी यदि हम सभ्य शिक्षित और मनुष्य हैं तो फिर अभद्र, पाखण्डी और पिशाच किसे कहेंगे? कुरता धोती पहनने और घड़ी छड़ी डाटकर गाड़ीपर बैठनेसे कोई सभ्य नहीं हो जाता। सभा करके दो चार अंगरेजी बातें बघारनेसे भी कोई शिक्षित नहीं कहलाता। हाय! किस अशुभ समयमें भारतमें पाश्चात्य सभ्यता घुसी थी, कि जो हम प्रकृत मनुष्यत्व खोकर पशुसे भी अधम बन गये। यही कारण है, कि अपनी अवस्था आप ही न समझकर शिक्षा और सभ्यताके अभिमानमें हम हिताहित ज्ञान-शून्य हो गये। मैंने इन असभ्यों और अशिक्षितों

के बीच जिस भद्रता और मनुष्यत्वको पाया है, मालूम होता है, कि इस जीवनमें फिर उसकी सुध बिसार न सकूंगा। जगन्माता जगदम्बासे गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करता हूँ कि हमारे हिन्दुस्थानी माईयोंके घर-घरमें ऐसी ही असभ्यता प्रतिष्ठित हो जाय।

एक जगह बहुत दिन रहनेके कारण धीरे-धीरे सर्वसाधारणसे जान पहचान बढ़ गई। आस पासवाले दूसरे गांवोंके लोग भी मेरे यहाँ आने जाने लगे। मैं भी अनेक दिनोंतक बराबर एक ही जगह रहनेके कारण कुछ कष्ट बोध होनेसे, नई नई बस्तियोंमें परिभ्रमण करने लगा। इसी तरह ब्रह्मकुण्ड से कोई बीस कोस उत्तर जा पहुँचा। इस जगह समतल भूमि नहीं, केवल स्तर-स्तरमें पहाड़ोंकी कतार लगी है। पहाड़के पाद देशमें आठदश घरका एक एक छोटा गांव बसा है। मैं प्रतिदिन खाता, सोता और किसी दिन हिम्मत बाँधकर पहाड़पर प्रकृतिका सौन्दर्य देखने चला जाता। एक दिन तीसरे पहर इसी तरह मैं घूमने निकला। उस समय वर्षाकाल था, गहरी वृष्टिकी आशङ्कासे मैंने पैवन्द लगा हुआ एक टूटा छाता मांग लिया और कितने ही जङ्गल तथा पहाड़ोंका अतिक्रम करके एक नई जगह जा पहुँचा। वह स्थान पर्वतका एक एकान्त और सौन्दर्यमय प्रदेश था। वहाँ जन-मानवकी गन्ध तक नहीं थी। वहाँ केवल चारों ओर पहाड़ ही पहाड़, पहाड़की गोदमें झरने, झरनोंकी गोदमें हरी-भरी-नीलिमामय वनभूमि, वनभूमिकी गोदमें श्वेत, पीत और लोहित (लाल) कुसुमोंके गुच्छे खिले हुए थे एवं कुसुमोंकी गोदमें सुगन्ध और शोभा भरी हुई थी। नयन और मनको आनन्द

देनेवाले उस स्थानकी शोभा देखकर अनेक क्षण भ्रमण करते हुए अन्तमें थक जानेसे मैं वहाँ बैठ गया और बैठे बैठे स्रष्टाका अपूर्व सृष्टि-रचना-कौशल एवं प्रकृतिकी विचित्र गति-विधि पर विचार करने लगा। धीरे धीरे नदीकी तरङ्गोंकी तरह एक एक कर कितने ही प्रकारकी चिन्ताएं मेरे मनमें उठने लगीं; कितने ही देशोंकी बातें, कितने ही लोगोंकी कथाएँ; उनके आचार-व्यवहार, प्रेम-प्रीति, मेल-जोल, रहन-सहन एवं अन्तमें अपनी जन्मभूमिकी बातें स्मरण हो आईं। वही लड़कपन, पिता-माता, उनके प्यार दुलारकी बात, भाई बहनका प्यार, आत्मीय-स्वजनोंका स्नेह, बाल्य-बन्धुओंका सरल एवं प्राणोपम सच्चा प्यार, प्रणयिनीकी हृदयको मस्त बनानेवाली मधुर वाणी—इन सब बातोंका स्मरण आते ही मनमें एकदम बड़ी खलबली मच गई। हृदयका दृढ़ सङ्कल्प टूट गया, छाती धड़कने लगी, आंखसे चिनगारी उठी, मुहूर्त्त मात्रमें परमहंसदेवके उपदेश-वाक्य तृणकी तरह उस स्मृतिके प्रबल स्रोतमें न जाने कहाँ बह गये—दर्शन, विज्ञान, गीता, पुराणादिका शास्त्रज्ञान रसातलमें पहुँच गया—यहाँ तक कि अन्तको मैं आत्मविस्मृत हो गया।

नहीं जानता, उस हालतमें मैं कितनी देरतक रहा। किन्तु जब फिर पूर्वज्ञान (होश) आया, तब मैंने देखा, कि भगवान् मरीचिमाली सूर्य्यदेव अपनी मयूखमालाको उपसंहृत कर अस्ताचलके शिखरपर आरोहण कर रहे हैं। सन्ध्या देवी नई बालिका-वधूकी भाँति अन्धेरेके घूंघटसे अपना चन्द्र-वदन आवृत्त करती दिखाई दी। पहलेसे ही पक्षिगणने अपने अपने घोसलोंमें आश्रय ले लिया था, कहीं कहीं दो

एक पक्षी डालियोंपर बैठकर सुललित स्वरसे कर्णकुहरमें पीयूषधारा निचोड़ रहे थे। महामायाके माया-मोहका प्रभाव देख कर मैं आश्चर्य्य-चकित बन गया। विचार किया कि—"मैं जो था, वही हूँ। एक ही लहरकी चोटसे जब हृदयका समस्त सङ्कल्प ढीला पड़ गया, तब शास्त्रादिके ज्ञानका अभिमान वृथा है।" जो हो, अब अधिक सोचनेका समय कहाँ है? इसी-क्षण गांवको लौटना होगा, अतः मैंने भय-भीत चित्तसे चलना आरम्भ किया। कुछ देर चलने पर मालूम हुआ, कि मैं मार्ग भूल कर बेराह हो गया हूँ। उस समय वनमें घोर अन्धेरा छा गया था। प्राणके भयसे घबड़ाकर मैं बाहर निकलनेके लिये तरह तरहकी कोशिशें करने लगा, लेकिन समस्त यत्न और परिश्रम व्यर्थ गया। जिस ओर जाता केवल असीम जङ्गल और दुर्भेद्य अन्धेरा ही देख पड़ता था। हताश हो कर मैं एक स्थान पर बैठ गया। शरीरसे पसीना बहने लगा। अब उपाय ही क्या है?—उस निविड़ अंधेरेमें दुर्भेद्य वनभूमि अतिक्रमण करना मेरी पहुँचके बाहर था। मुझे यह भी बिल्कुल पता नहीं था, कि पहाड़की किस बगलमें गांव है। ऐसी दशामें अनुमान लगाकर गांवकी तलाश करना भी निरर्थक था; इतना ही नहीं, बल्कि उस तरह निरर्थक घूमनेसे तो कहीं शेर भालूके पैने दांतोंकी चोटसे भव-लीला संवरण करने तककी सम्भावना थी;—अथवा जङ्गली हाथियोंके पैर तले दब जानेका संदेह था। इसीलिए मैंने सोचा, अकारण गांव ढूंढ़नेकी तक़लीफ क्यों उठाऊँ? अन्तको मैंने हर हालतमें उसी जगह रहनेकी ठहराई—जो होना है, हो जयगा।

विपद्-चिन्ता भयका कारण है, किन्तु विपदमें फँस जानेसे आप ही आप हिम्मत पैदा हो जाती है। अतः अकेले ही उस भयावह वन-भूमिमें बैठकर मैं प्रतिक्षण मृत्युकी प्रतीक्षा करने लगा। कभी मनमें आता कि, कराल-वदन विस्तारकर शिकारी हिंस्र जन्तु मुझे निगलने आ रहा है। फिर कभी मनमें आता कि, भीमदर्शन भूत, प्रेत और पिशाचगण विकट दांत निकालकर अट्टहास्यसे वनभूमिको हिला रहे हैं। मैं प्रतिमुहूर्त्तमें मृत्यु-यन्त्रणा भोगने लगा। मैंने मनमें विचार किया कि ऐसी यन्त्रणा-भोगनेकी अपेक्षा तो मैं मर जाता तो भी अच्छा होता। जो हो किसी न किसी तरह इसी सोच विचारमें समय कट गया। अन्तमें कुछ हिम्मत बाँधी और नाना प्रकारसे मैं मनको दृढ़ करने लगा। उसी समय शास्त्र-कारोंका यह मधुर उपदेश स्मरण हो आया।—

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते।
अद्य वाब्द शतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥

श्रीमद्भागवत् १०।१।२६

जब एक दिन मृत्यु निश्चित ही है, तब उस मृत्युके लिये इतना घबड़ाना किस कामका ?

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्य्येऽर्थे नत्वं शोचितुमर्हसि॥

गीता २ य अ० २७ श्लोक।

पूजनीय परमहंस-देवका वह प्राणस्पर्शी वाक्य भी स्मरण हो आया,—

"नासौ न तव न तस्य त्वं, वृथा का परिवेदना।"

इस प्रकार आपही आप मृत्युका वह भय अनेकांशसे अन्तरसे अन्त-हित हो गया। किन्तु निश्चेष्ट होकर उस तरह बैठे रहना नितान्त कायरका लक्षण था। अलबत्ता वृक्षपर चढ़ जानेसे शिकारी हिंस्र प्राणियोंके पंजेसे बचाव अवश्य हो सकता था; लेकिन वृक्षपर चढ़नेका उपाय क्या है ? मैं तो वृक्षपर चढ़नेमें सम्पूर्णतः अक्षम था। पल्लीग्राममें जन्म होनेपर भी बचपनमें वृक्षारोहण की शिक्षा मुझे नहीं मिली थी, तथापि मैं चेष्टा करने लगा। पास ही एक बड़े पहाड़ी वृक्षकी शाखा प्रायः जमीनसे लगी हुई लटक रही थी। थोड़ी ही कोशिशसे मैं उस शाखा पर चढ़ गया और धीरे धीरे काँपते हाथों उसके सहारे मूलतक जा पहुँचा। वहाँ जाते ही मैंने एक अदृष्टपूर्व आश्चर्य्य-जनक गह्वर देखा। वह गह्वर अनोखा था, जैसा कभी किसीने न देखा न सुना हो। जहाँ वह शाखा पूरी हुई थी, ठीक उसीकी बगल तनेके भीतर एक गहरा गह्वर था। विशेष सावधानीके साथ देखनेसे साफ मालूम हुआ कि गड़हेके भीतर मिट्टी भरी हुई है और केवल एक मनुष्य आरामसे उठ-बैठ सके, इतनी जगह उसमें है। मैंने हिम्मत बांध कर धीरे धीरे खोहमें प्रवेश किया और डरका कोई कारण न देख मैं नीचे बैठ गया एवं छाता तान कर मैंने खोहका मुंह ढांप दिया। इसके बाद कुछ निश्चिन्त होकर मैंने उस अपार-करुणा-निलय जगत्पिता जगदीश्वरको धन्यवाद दिया एवं आँखें मून्द कर इष्टमन्त्र को जपना आरम्भ कर दिया। कितना ही समय बीत गया, लेकिन

कालरात्रिने मानो जाना ही न चाहा। बहुत देर बाद प्रभातके लक्षण देख पड़े; वन्य कुक्कुट एवं अन्यान्य दो एक पक्षियोंने जागरणका संदेश सुनाया। हृदय प्रफुल्लित हुआ और इस यात्रामें बच गया सोचकर मन ही मन में भगवान्‌के प्रति कृतज्ञता दिखाने लगा। रातभर जगनेसे और मरनेकी चिन्ताके कारण मैं बहुत घबड़ा गया था। अतः अब निश्चिन्त होने एवं उषःकालकी मन्द-मन्द सुशीतल समीरणके शरीरमें लगनेसे नींदका बड़ा जोर बँधा। फलतः उसी तरह बैठे-बैठे वृक्षके सहारे मैं सो गया।

नींद टूटने पर देखा कि वनभूमि सूर्य किरणों से चमक उठी है। आश्चर्यान्वित हो मैंने छाता बन्द करके डरते डरते शिर उठाकर देखा कि—मैं जिस वृक्षपर अधिष्ठित हूँ, ठीक उसीके नीचे सूखे पत्तोंमें अग्नि प्रज्ज्वलित करके एक मनुष्य बैठा हुआ है। रात्रिके अन्तमें सहसा ऐसे निविड़ जङ्गलमें मनुष्य कहाँसे आया? क्या वह भी मेरी ही तरह विपदापन्न है? इतने समय तक वह कहाँ था? नाना प्रकार की चिन्ता करके मैं इस विषय की कुछ भी मीमांसा नहीं कर सका। चिन्तानुरूप भूत-प्रेतादिकी कल्पना भी एक बार मनमें पैदा हुई। किन्तु अन्तमें दुर्गाका नाम स्मरण कर हिम्मत बाँध मैं खोहसे बाहर निकला और पहिली ही वृक्षशाखासे नीचे उतर कर उसके सामने जा खड़ा हुआ। किन्तु इस प्रकार मुझे एकाएक वृक्षसे उतरते देख कर भी वह भीत, चकित या

विस्मित न हुआ। यहाँतक कि मुँह उठाकर उसने मेरी तरफ देखा भी नहीं। मैंने देखा, कि वह शिर नीचा करके अपनी धुनमें मस्त हो गांजा मल रहा था। सिवा कौपीनके उसके पास दूसरा कोई कपड़ा न था। उसकी बगलमें एक बड़ा चिमटा एवं लम्बी नलीकी चिलम पड़ी हुई थी। इन चीज़ोंको देख मैंने उसे गृहत्यागी संन्यासी समझ लिया। लेकिन ऐसी पार्वत्य वन-भूमिमें संन्यासियोंका कोई आश्रम है, ऐसा तो किसी भी दिन मैंने किसीके मुँहसे नहीं सुना था? जो हो, मैं किसी प्रकारका साहस कर उससे कुछ भी पूछ न सका—पास जाकर बैठ गया। गांजा तैयार होनेपर उसने चिलमपर चढ़ाया एवं आग रखकर क़ायदेसे दम लगाया और मुझे भी चिलम देनेको हाथ बढ़ाया। यद्यपि मुझे गांजा पीनेकी आदत न थी, तथापि डरते-डरते चिलम लेकर मैंने दो एक फूंक मारी और चिलम उसे वापस दे दी। उसने फिर दम लगाया और आग नीचे गिरा दी। इसके बाद जमीन परसे चिमटा उठा कर वह खड़ा हो गया और हाथके संकेतसे मुझे अपने पीछे पीछे आनेका आदेश देकर चलने लगा। मन्त्रमुग्ध व्यक्तिकी भाँति मैं भी उसके पीछे-पीछे चल दिया। चलते चलते मैंने सोचा—'मैं कहाँ जा रहा हूँ? यह व्यक्ति कौन है? इसके मनका उद्देश्य क्या है? इसका क्या कारण है कि मुझसे न कुछ पूछा, न कुछ जाँचा, न परिचय लिया, बल्कि चुप-चाप साथ चलनेका आदेश कर दिया!"

एकबार बङ्किम बाबूकी "कपाल-कुण्डला" के कापालिककी बात स्मरण हो आई। उसी समय छाती धड़कने लगी। तथापि काल-वारिणी, काल-वरणी कालीके चरणका भरोसा बांधे मैं उसके साथ-साथ चलता रहा। वह गुल्म-लता-कण्टकादि की परवाह न कर दानवकी तरह चला जाता था। गांजेके नशेसे मेरी आंखोंमें सरसोंके फूल जैसी चिनगारियाँ उठने लगीं, लज्जावती बेलके कांटेके चुमनेसे पैर फट जाने पर खून बहने लगा। तथापि जहाँतक हो सका कष्ट सहन करके भी मैंने उसके पीछे चले जानेमें कुछ भी उठा न रखा। कहना वृथा है, कि उस समय सवेरा हो गया था।

कुछ देर इसी तरह वह निविड़-वनभूमि अतिक्रमण करके हम एक पहाड़ी टीलेके पास जा पहुँचे। वह स्थान स्वाभाविक सौन्दर्य्यसे पूर्ण था। एक ओर पहाड़ी टीला अपना उन्नत शिर उठाये वीरकी भाँति ताल ठोंक कर खड़ा था; तो दूसरी तीनों ओर दुर्भेद्य नीलिमामय हरी-भरी भूमि थी। बीचका कुछ स्थान परिष्कृत एवं वृक्षादिसे शून्य था; एक छोटासा झरना भी टीलेके बगलमें वेगसे सुमधुर शब्द करता हुआ बह रहा था। उस जगह पहुँचने पर वह साधु मेरी ओर घूम कर खड़ा हो गया। वहीं उसका यथार्थ स्वरूप देख पड़ा! अहा! वह क्या ही विराट् मूर्त्ति थी!—तपे सोने जैसा रङ्ग, प्रशस्त ललाट, विशाल वक्षःस्थल, घुटनों तक लम्बे-लम्बे मांसल हाथ, रक्ताभ होंठ और भौंरे जैसे झूमते हुए काले दीर्घ बाल, कानतक लम्बी आंखें तथा समस्त शरीर सरलता-मय एवं ब्रह्म-

तेजसे चमक रहा था। उस अदृष्टपूर्व अपूर्व मूर्त्तिको देख मैं स्तम्भित, विस्मित और रोमाञ्चित होगया! इस जीवनमें मैंने कितने ही साधु-संन्यासियोंको देखा है; किन्तु वैसी मधुर मूर्त्ति उस दिन तक एक भी देखनेमें नहीं आई थी। अतः क्या ही एक अभूतपूर्व आनन्द हृदयमें भर आया और प्राणाधार पर भक्तिका प्रवाह प्रवाहित हो गया। क्या ही एक अपूर्व भावमें मैं विभोर हो गया और उस अचेतनावस्थामें भी आप ही आप मेरी देह उनके चरणों पर लोटने लगी।

उन्होंने स्नेहके साथ मेरा हाथ पकड़ा और उठाकर धीर-गम्भीर एवं मधुर वाणीमें कहा—"बाबा! सहसा रात्रिके अंतमें मुझे वृक्षके नीचे देखने और तुम्हारा हाल कुछ न पूछ कर चुपचाप साथ चलनेको कहनेसे, तुम कुछ घबड़ा गये और आश्चर्य्यान्वित भी हुए थे। किन्तु, इसके पूर्व ही तुम कौन हो? किस मतलबसे घूम रहे हो? आज वृक्षकी खोहमें ही कैसे रह गये थे?—यह सब मुझे मालूम हो गया था; इसीसे मैंने कोई बात नहीं पूछी। रातमें तुम्हारा विषय जानकर तुम्हें इस जगह लानेके लिये ही उस वृक्षके नीचे बैठ कर मैं तुम्हारी राह देख रहा था।"

मैं अवाक् हो गया!—वह मेरी बात पहले ही कैसे जान गया था? सहसा मैं उनको सिद्ध-महापुरुष समझने लगा और गत रात्रिका दारुण कष्ट भूल कर मैंने जीवनको सार्थक समझा। मैं अपनेको उन्हें सौंप कर उनके शरणागत हो गया।

उन्होंने मीठी-मीठी बातोंसे मुझे सान्त्वना देकर मेरे पूर्व-पूर्व

और वर्तमान जन्मका कितना ही गुह्य रहस्य प्रकाशित किया और योग एवं साधन-कौशल सिखाना भी स्वीकार कर लिया। मैंने विस्मित और आनन्दित होकर विनीत भावसे कृतज्ञता प्रकट की और गत रात्रिकी विपद् सम्पद्का कारण समझ कर सर्वमंगलमय परमेश्वरको मन ही मन धन्यवाद दिया। इतने दिनोंमें मनोरथ सिद्ध होते देख हृदय प्रफुल्ल और उल्लासित हो उठा।

फिर उसी महापुरुषने टीलेके पास जाकर कौशलसे एक बृहत् लम्बा-चौड़ा पत्थर हटाया। बड़ा ही आश्चर्य्य-कारक दृश्य था! आहा! हा!! क्या ही प्रकाण्ड गुफ़ा!!! मैंने उसमे घुसकर देखा, कि गुफा एक छोटे घरकी तरह प्रशस्त और परिष्कृत है। उन्होंने मुझे हाथके लिखे योग और स्वरोदय-शास्त्रके कितने ही ग्रंथ पढ़नेको दिये। मैं अपनेको सौभाग्यवान् समझ सिद्ध महापुरुषके साथ उनके आश्रममें सुख-स्वच्छन्दतासे निवास करने लगा।

प्रतिदिन वे मुझे लड़केकी तरह प्यार कर स्नेहके साथ योग और स्वरशास्त्रके गूढ़ स्थानोंकी विशद व्याख्या करके शिक्षा देने लगे एवं मौखिक उपदेश और साधनका सहज तथा सुखसाध्य कौशल सिखाने लगे। मैंने वहाँ तीन महीनेसे कुछ अधिक समय अवस्थान किया और सिद्ध मनोरथ होकर कृतज्ञ एवं भक्ति गद्-गद्-चित्तसे उनकी चरण-वन्दना कर विदाके लिए प्रार्थना की। उन्होंने भी प्रफुल्लित चित्तसे मुझे पहलेके पहाड़ी गांवमें पहुँचा दिया।

पहले जान-पहचानके आश्रयदातागण एकाएक मुझे पीछे लौटते देखकर आश्चर्य्यान्वित और आनन्दित हुए। उन्होंने तीन-चार

दिन पार्वत्य वनभूमिमें मेरा अनुसन्धान किया था। किन्तु जब कोई पता न लगा तब यह समझ कर कि किसी हिंस्र जानवरके पंजेमें पड़ कर मैं मर गया हूँ; वे लोग विशेष खिन्न एवं दुखी हुए थे; अस्तु। मैंने उनको सब बातें कह सुनाई; और दो-एक दिन उनके यहाँ निवास कर मैं ब्रह्मकुण्ड पर आ पहुँचा और वहाँसे तीर्थयात्रियोंके साथ बङ्गदेशको वापस लौट आया।

सिद्ध महापुरुषकी दिखाई राहसे क्रिया-अनुष्ठान करके मैंने शास्त्रोक्त साधनाकी सफलताके सम्बन्धमें विशेष सत्यताका प्रमाण पा लिया। इसीसे आज स्वदेशी साधन-पथके खोजनेवाले भाईयोंके उपकारार्थ कई एक सद्यः प्रत्यक्षफल देनेवाली सहज और सुख-साध्य साधन-पद्धतियाँ सन्निवेशित करके यह पुस्तक प्रकाशित कर रहा हूँ। साधन-पथमें अग्रसर होकर साधकगणको जिससे विड़म्बना भोगनी न पड़े, यही मेरी एकान्त इच्छा है। अब इस कार्यमें मैं कहाँतक कृतकार्य्य हुआ हूँ, पाठकगण ही इसका विचार कर सकते हैं। यदि किसीको कोई भी विषय समझनेमें सन्देह हो तो पत्र लिखने या मेरे पास आनेसे मैं सविशेष समझानेकी चेष्टा करूंगा। किन्तु मेरा पता स्थिर नहीं है। अतः "कार्य्याध्यक्ष— सारस्वत मठ, पोष्ट कोकिलामुख, जोरहाट, आसाम" (Manager— Saraswat Math, P. O. Kokilamukh, Jorhat, Assam.)के,—पते पर जवाबी कार्ड लिखकर मेरे अवस्थानका पता जान लेना चाहिये।

योगकी श्रेष्ठता।

सब साधनाओंकी जड़ और सर्वोत्कृष्ट साधना योग है। शास्त्रमें लिखा है, कि वेदव्यासके पुत्र शुकदेव पूर्वजन्ममें किसी वृक्षकी शाखामें छिपे रहकर भगवान शिवजीके मुँहसे निकला हुआ योगोपदेश श्रवण करके पक्षियोनीसे उद्धार पा परजन्ममें परम योगी बन गये थे। योगके उपदेश श्रवणसे जब यह फल है, तब योग साधन करनेसे ब्रह्मानन्द और सर्वसिद्धि मिलनेमें कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। योगके विषयमें शास्त्र यही कहता है, कि अविद्यामें फँस कर आत्मा जीव-संज्ञा प्राप्त करके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों तापोंके अधीन हो गया है। उसी तापत्रयसे मुक्तिलाभका उपाय योग है। योगके अभ्यासके अतिरिक्त प्रकृतिका मायाजाल ज्ञात नहीं होता। जो व्यक्ति योगी है, उसके सामने प्रकृति अपना मायाजाल नहीं फैला सकती; वरन् लाजके मारे भाग खड़ी होती है। सीधी बात तो यह है, कि उसी योगी पुरुषमें प्रकृति लयको प्राप्त हो जाती है। प्रकृतिके लयको प्राप्त होनेसे वही पुरुष फिर पुरुष-पद-वाच्य नहीं रहता; तब वह केवल आत्माके नामसे सत्स्वरूपमें अवस्थित होता है, इस सत्स्वरूपमें अवस्थान करनेके कारण योग श्रेष्ठ साधन कहा जाता है।

योग ही धर्म्मजगत्का एकमात्र पथ है। तन्त्रका मन्त्र, मुसलमानोंका अल्लाह और खृष्टानोंका खृष्ट, पृथक् होने पर भी

जब वे अपने-अपने अभ्याससे आत्म-लीन हो जाते हैं; तब अज्ञात-रूपसे वे भी योगाभ्यासके सिवाय और क्या किया करते हैं ? परन्तु किसी भी देशका कोई भी धर्म्मशास्त्र आर्य्य-योग-धर्म्मकी भाँति परिणति या परिपुष्टिको प्राप्त नहीं हुआ है। फलतः अन्यान्य जातियोंके सम्बन्धमें चाहे जो हो ; किंतु भारतीय तन्त्र, मन्त्र, पूजा-पद्धति प्रभृति सभी कुछ योग-मूलक ही हैं।

योगाभ्यासके द्वारा चित्तकी एकाग्रता हो जानेपर, ज्ञान समुत्पन्न होता है एवं उसी ज्ञानसे मानवात्माकी मुक्ति होती है। वह मुक्तिदाता परमज्ञान, योगके सिवाय अन्य शास्त्रोंके पढ़नेसे प्राप्त नहीं हो सकता।

भगवान् शङ्करदेवने कहा है—

अनेकशतसंख्याभिस्तर्कव्याकरणादिभिः।
पतिताशास्त्रजालेषु प्रज्ञया ते विमोहिताः॥

—योगबीज। ८

सैकड़ों तर्कशास्त्र और व्याकरणादि अनुशीलन पूर्वक मानवगण शास्त्रजालमें फँसकर केवल विमोहित होते हैं। वास्तवमें प्रकृत ज्ञान योगाभ्यासके विना उत्पन्न नहीं होता।

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्राणि चैव हि।
सारस्तु योगिभिः पीतस्तक्रं पिबन्ति पण्डिताः॥

ज्ञान सङ्कलिनी तन्त्र। ५१

वेदचतुष्टय और सब शास्त्रोंको मथकर उसका मक्खन स्वरूप सारभाग तो योगिगण चाट गये हैं और उसका असार-भाग

तक्र (छाछ) पण्डित लोग पी रहे हैं। शास्त्र पढ़नेसे जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह मिथ्या और कोरी डींग है, वह प्रकृत ज्ञान नहीं। बाहरकी तरफ मुँह फेरे हुए मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको सब बाहरी विषयोंसे निवृत्त करके अन्तर्म्मुखी करते हुए सर्वव्यापी परमात्मामें मिलानेका नाम ही प्रकृत ज्ञान है।

एकबार भरद्वाज ऋषिने पितामह ब्रह्मासे पूछा था—"किं ज्ञानमिति ?" इसके उत्तरमें ब्रह्माने कहा,—"एकादशेन्द्रिय निग्रहेण सद्गुरूपासनया श्रवण-मनन-निदिध्यासनैर्दृक्दृश्य-प्रकारं-सर्वं निरस्य सर्वान्तरस्थं घट-पटादि विकारपदार्थेषु चैतन्यं विना न किञ्चिदस्तीति साक्षात्कारानुभव—ज्ञानम्।" अर्थात् "चक्षु-कर्ण-जीभ-नाक-चर्म इन पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा हाथ, पैर, मुँह, पायु, उपस्थ-इन पांच कर्म्मेन्द्रिय एवं मन—इन ग्यारह इन्द्रियोंका निग्रह करके सद्गुरुकी उपासना द्वारा श्रवण-मनन-निदिध्यासनके साथ घट-पट-मठादि सारे विकारमय दृश्य-पदार्थोंका नाम-रूप परित्याग कर उन सब वस्तुओंके बाहर भीतर रहनेवाले एकमात्र सर्वव्यापी चैतन्यके अतिरिक्त और कुछ भी सत्य पदार्थ नहीं है, ऐसा अनुभवात्मक जो ब्रह्मसाक्षात्कार है, उसीका नाम ज्ञान है।" योगाभ्यास न करने पर कभी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। साधारण लोगोंका जो ज्ञान है, वह भ्रान्त ज्ञान है। क्योंकि सभी जीव मायाके फन्देमें जकड़े हुए हैं, मायाका फन्दा तोड़ न सकनेसे सच्चा ज्ञान का उदय नहीं होता। माया-पाश तोड़कर सच्चा-ज्ञानालोक प्राप्त करनेका उपाय योग है। योग-साधनके अनुष्ठानके अतिरिक्त

किसी प्रकारसे भी मोक्षलाभका हेतुभूत जो दिव्यज्ञान है, वह नहीं उदय होता। योगविहीन सांसारिक ज्ञान वास्तवमें अज्ञानमात्र है; उससे केवल सुख-दुःखका अनुभव होता है; मुक्तिके पथमे चलनेकी सहायता नहीं मिलती। परमयोगी महादेवजीने अपने मुँहसे कहा है—

"योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवतीश्वरि !"—योगवीज। १८

हे परमेश्वरि ! योगविहीन ज्ञान कैसे मोक्षदायक हो सकता है ? सदाशिवजीने योगकी श्रेष्ठता बता कर पार्वतीको सुनाया था !—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि धर्म्मज्ञोऽपि जितेन्द्रियः।
विना योगेन देवोऽपि न मुक्तिं लभते प्रिये ! योगवीज। ३१

हे प्रिये ! ज्ञानवान्, संसारविरक्त, धर्म्मज्ञ, जितेन्द्रिय, किम्वा कोई देवता भी योगके सिवाय मुक्ति नहीं पा सकता। विना योग के मिले केवल साधारण सूखे ज्ञानसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। योगरूपी अग्नि अशेष पाप-पञ्जर जला देती है एवं योगके द्वारा दिव्य-ज्ञान मिलता है और उस ज्ञानसे ही लोग दुर्लभ निर्वाण पद पाते हैं। योगानुष्ठान में समाधिका अभ्यास पक्का हो जाने पर ही अन्तःकरणके असम्भवादि दोषकी निवृत्ति हो जाती है। ऐसा होते ही उस विशुद्ध-अन्तःकरण में आत्मदर्शन मात्रसे ही अज्ञानका नाश हो जाता है। सुतरां आप ही आप दिव्य ज्ञान प्रकाश पाने लगता है। योग-सिद्धिके अतिरिक्त कभी प्रकृत ज्ञान प्रकाशित नहीं होता। योगीके सिवाय दूसरेका ज्ञान प्रलाप मात्र है।

यावन्नैव प्रविशति चरन् मारुतो मध्यमार्गे-
र्याविद्बिन्दुर्न भवति दृढ़: प्राणवातप्रवन्धात् ।
यावद् ध्यानं सहज सदृशं जायते नैव तत्त्वं
तावद्‌ज्ञानं वदति तदिदं दम्भमिथ्या प्रलापः ॥

गोरक्षा संहिता चतुर्थ अंश

जबतक प्राणवायु सुषुम्णाविवरमें विचरणकर ब्रह्मरन्ध्रमें नहीं प्रवेश करता, जबतक वीर्य्य दृढ़ नहीं होता एवं जबतक चित्तका स्वाभाविक ध्यायाकार वृत्ति प्रवाह नहीं उमड़ता, तबतक जो ज्ञान है, वह मिथ्या प्रलापमात्र है; वह प्रकृत ज्ञान नहीं है। प्राण, चित्त और वीर्य्यको वशीभूत न कर सकनेसे प्रकृत ज्ञानका उदय नहीं हो सकता। किन्तु चित्त तो सतत ही चञ्चल है, अतः वह स्थिर कैसे होगा? शास्त्रमें इसका भी उत्तर है। यथा:—

योगात् संजायते ज्ञानं योगो मय्येक चित्तता। आदित्य पुराण।

योगाभ्यासके द्वारा ज्ञान उत्पन्न होता है एवं योगसे ही चित्तकी एकाग्रता होती। सुतरां चित्त स्थिर करनेका उपाय प्राण संरोध अर्थात् प्राण-वायुको रोकना है, कुम्भकसे प्राणवायुके स्थिर होनेपर चित्त आप ही आप स्थिर हो जाता है। चित्तके स्थिर होने पर ही वीर्य्य स्थिर होता है और वीर्य्यके स्थिर होने से ही प्रकृत ज्ञानोदय होता है। कुम्भकके समय प्राणवायु जब सषुम्णा नाड़ीके बीचसे भ्रमण करता करता ब्रह्मरन्ध्रस्थ महदाकाशमें जा पहुँचता है, तब स्थिरता प्राप्त होती है; प्राणवायु स्थिर होनेपर ही चित्त स्थिर होता है। कारण—

इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः ।

हठयोग प्रदीपिका । २६

मन इन्द्रियोंका :मालिक है, जो प्राणवायुके अधीन है। सुतरां प्राणवायुके स्थिर होते ही चित्त अवश्य स्थिर हो जाता है। चित्त की स्थिरता प्राप्त होते ही ज्ञानचक्षु उन्मीलन होनेपर आत्मा या ब्रह्मका साक्षात्कार प्राप्त होता है। सुतरां सबको ही योगकी आवश्यकताकी उपलब्धि करके उसके अभ्यासमें नियुक्त होना चाहिये। योगके सिवाय दिव्य-ज्ञान लाभ वा आत्माकी मुक्ति नहीं होती।

इससे पहले कह आये हैं कि सबसे श्रेष्ठ साधन योग है। इसी योगसे सभी व्यक्ति, सभी समयमें, सभी अवस्थाओंमें सिद्धि लाभ कर सकते हैं। योगबलसे अनोखी और अपूर्व क्षमता प्राप्त कर सकते हैं; कर्म्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान—इन्हें पीछे रखकर हम समाधिपद प्राप्त कर सकते हैं। मत, अनुष्ठान, कर्म्म, शास्त्र और मन्दिरमें जाकर उपासना करना उसके गौण अंग-प्रत्यङ्ग हैं। सब क्रिया कर्मोंमें रहकर भी साधक इसी योग साधनासे कैवल्य-पद प्राप्त कर सकता है; दूसरे धर्म्मावलम्बीगण भी आर्य्य-शास्त्रोक्त योगा-नुष्ठानकर सिद्धि पा सकते हैं।

योगबलसे अत्याश्चर्य्य और अमानुषिक क्षमता प्राप्त होती है। योगसिद्ध व्यक्ति अणिमादि अष्टैश्वर्य्य प्राप्त करके स्वेच्छा विहार कर सकता है। उसको वाक्सिद्धि हो जाती है, साथ ही दूरसे देखने, दूरसे सुनने, वीर्य्य-रोकने, देह बनाने और दूसरेके शरीरमें प्रवेश करने आदिकी क्षमता भी प्राप्त हो जाती है; विण्मुत्र लेपनसे स्वर्णादि

धात्वन्तर होता है एवं अन्तर्धान होनेकी शक्ति भी आ जाती है। योगके प्रभावसे यह सब सिद्धियाँ मिलती हैं एवं अन्तर्यामित्व तथा बिना रोक-टोक आकाश-मार्गमें जाने आनेकी शक्ति भी उसमें आ जाती है, किन्तु सावधान ! केवल अलौकिक-शक्ति प्राप्त करनेके अभिप्रायसे योग साधन करना उचित नहीं है; क्योंकि इससे लोक-समाजमें, दशजनोंके बीच शाबासी अवश्य मिलती है, किन्तु जो जैसा है, वह वैसा ही बना रहेगा। अतः ब्रह्मके उद्देश्यसे योग-साधन करना आवश्यक है—विभूति आप ही आप प्रकाशित होगी। योगाभ्याससे आशक्तिशून्य होनेको जाकर फिर आशक्तिकी ही अग्निसे जलना किम्वा कर्म्म-बन्धन तोड़नेको अग्रसर होकर पुनः कण्टक-पिञ्जरमें न फंस जाना चाहिए।

एक बात और है, सिद्धि प्राप्त करनेमें जितने प्रकारकी रुकावटें हैं, उनमें "सन्देह" ही सबसे भारी रुकावट है। यह सन्देह ही साधन-पथका कांटा है, कि मैं जो इतना कष्ट उठाकर साधन करता हूँ, इससे कुछ फल निकलेगा या नहीं? किन्तु योगमें यह आशंका नहीं, जितना अभ्यास करेंगे, उतना ही फल मिलेगा। किसीको योग साधनकी प्रबल इच्छा रहते हुए भी सांसारिक प्रतिबन्धके कारण सफलता नहीं दिखने पाती; किन्तु फिर भी यदि वह उसी इच्छाको लेकर मर जाय तो परजन्ममें उसे जन्मस्थानादिरूप ऐसा उत्कृष्ट एवं अनुकूल सुविधा प्राप्त होगी, कि जिससे योगावलम्बनकी सुविधा होकर उसके लिए मुक्तिका मार्ग एकदम मुक्त हो जायगा। यदि कोई योगानुष्ठान कर सिद्धि पानेके पहले ही मर

जाय, तो इस जन्ममें जितना अनुष्ठान किया है, पर जन्ममें आप ही आप वह ज्ञान जाग्रत होकर फिर उसी स्थानसे आरम्भ होगा। ऐसे व्यक्तिको योगभ्रष्ट कहते हैं। योगभ्रष्टकी मृत्युके पीछेकी अवस्था भगवान् श्री कृष्णजीने गीतामें अर्जुनको बतलाई थी—"योग-भ्रष्ट व्यक्ति पुण्यकारी व्यक्तियोंके प्राप्यस्थानमें बहुत दिन अवस्थान करके पीछे सदाचार-सम्पन्न धनीके घर या ब्रह्मबुद्धि-सम्पन्न ऊंचे वंशमें जन्म लेता है। इसीलिये उस जन्ममें पहले देहकी वृद्धिको प्राप्त होकर मुक्ति-लाभके विषयमें विशेष रूपसे यत्न किया करता है।" * इस प्रकार योगकी श्रेष्ठता अवगत होकर योगा-नुष्ठानमें सबको यत्न करना चाहिये। अब देखना चाहिये कि—

योग क्या है ?

सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते।—योगशास्त्र।

'जिस समय मनुष्य सर्वचिन्ता परित्याग कर देता है, उस समय उसके मनकी उस लयावस्थाको योग कहते हैं। अपिच—

---

* प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥

गीता ६।४१-४२

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

पातञ्जल समाधिपाद। २

अर्थात् चित्तकी सभी वृत्तियोंको रोकने या हटानेका नाम योग है। वासना और कामनासे संलिप्त चित्तको वृत्ति कहा है। इस वृत्तिका प्रवाह स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्ति—इन तीनों प्रकारकी अवस्थाओंमें मनुष्यके हृदयपर प्रवाहित होता रहता है। चित्त सदा-सर्वदा ही अपनी स्वाभाविक अवस्थाको पुनः प्राप्त करनेके लिये कोशिश करता रहता है, किन्तु इन्द्रियाँ उसे बाहर आकर्षित कर लेती हैं। उसको रोकना एवं उसके बाहर निकलनेकी प्रवृत्तिको निवृत्त करके, उसको फिर पीछे घुमाकर चिद्घन पुरुषके पास पहुँचानेके पथमें ले जानेका नाम ही योग है। चित्त परिष्कृत न होनेसे उसे रोक नहीं सकता—जैसा कि मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता; अतः उसे रंगनेके पहिले परिष्कृत कर लेना पड़ता है। हमें जलाशयका तलदेश नहीं देख पड़ता है, इसका कारण क्या है? जलाशयका जल अपरिष्कृत होने एवं सर्वदा तरङ्ग प्रवाहित रहनेके कारण उसके तलदेशपर दृष्टि नहीं जाती। यदि जल निर्म्मल रहे और बिन्दुमात्र भी तरङ्ग न उठें तो हमें उसका तलदेश अवश्य देख पड़ेगा। जलाशयका तलदेश हमारा प्रकृत स्वरूप है—चित्तको जलाशय और उसकी तरङ्गको वृत्तिस्वरूप समझना चाहिये। हम अपने हृदयस्थ चैतन्यघन पुरुषको क्यों नहीं देख पाते? इसी कारण, कि हमारा चित्त हिंसादि पापसे मैला एवं आशादि वृत्तिसे तरंगायित है, सुतरां हम हृदय नहीं

देख पाते। यम-नियमादिके साधनसे चित्तका मैल छुड़ाकर चित्त-वृत्तिको रोकनेका नाम योग है। यम-नियमादिके साधनसे हिंसा-काम-लोभादि पाप मैलको छुड़ाकर एवं कामना-वासनासे संयुक्त चित्त-वृत्ति-प्रवाहको रोकने पर ही हृदयस्थ चैतन्य पुरुषका साक्षात् दर्शन हो सकता है। ऐसा दर्शन होनेपर "मैं कौन हूँ?" "वह कौन है?" यह भ्रम दूर हो जाता है। तब जगत् क्या है, पुत्र कलत्र क्या हैं, सोनेका फन्दा क्या है और लोहेका फन्दा क्या है, यह ज्ञान भी उत्पन्न हो जाता है। हृदय दृढ़-भक्ति और अहेतुक-प्रेम सम्पन्न हो जाता है; तब वह श्यामसुन्दर, चिद्घनरूप कभी भूला नहीं जा सकता तथा तभी दिव्यज्ञान भी उत्पन्न होता है एवं विशिष्ट-रूपसे समझ पड़ता है, कि—दारा-पुत्र-धन-ऐश्वर्य्य कुछ नहीं है, देह कुछ नहीं है, घट-पट-प्रेम-प्रीति भी कुछ नहीं है, वही आदि अन्तहीन चराचर विश्वव्यापी विश्वरूप ही सत्य है। सत्यस्वरूपके सत्य ज्ञानसे असत्य दूर भाग हो जाता है—राधे-श्यामके महारासके महामञ्चपर आनन्दसे मतवाला होकर एक रस हो जाता है।

चित्तकी यह अवस्था प्राप्त करनेके लिये योगकी आवश्यकता होती है। किन्तु यह अवस्था प्राप्त करनी हो तो चित्त की वृत्तिको रोकना पड़ेगा। इसी चित्तकी वृत्तिको रोकनेका नाम योग है। अब देखना चाहिये, कैसे हम उस चित्तवृत्तिको रोक सकते हैं। किन्तु इससे पहले शरीर-तत्त्वका जान लेना आवश्यक है।

शरीर-तत्त्व।

योगकी शिक्षा प्राप्त करनेके पहले अपने शरीरका विषय जान लेना आवश्यक है। शरीर और प्राण इन दोनों विषयोंका सम्यक् तत्त्व न जान लेनेपर योग-साधना विड़म्बना मात्र होती है; इसलिये योगी बननेके पहले वा उसके साथ-साथ इसे जान लेना आवश्यक है। कारण, शरीर और प्राणका परस्पर सम्बन्ध न जानने पर कोई भी साधक प्राणका संयम नहीं कर सकता और न शरीरको ही नीरोग रख सकता है एवं कौनसी नाड़ीमें किस प्रकार प्राणवायु बहती है और कैसे प्राणको अपानसे संयोग करना होता है, यह भी नहीं जान सकता। सुतरां योग-साधन भी नहीं बनता। शास्त्रमें भी लिखा है कि—

नवचक्रं षोड़शाधारं त्रिलक्ष्यं व्योम पञ्चकम्।
स्वदेहे यो न जानन्ति कथं सिध्यन्ति योगिनः॥

उत्पत्ति तन्त्र।

नवचक्र, षोड़शाधार, त्रिलक्ष्य और पञ्चाकाशको अपने शरीरमें जो व्यक्ति नहीं जानता है, उसको योग-सिद्धि कैसे होगी? जिस किसी भी साधनके लिये जो कुछ भी आवश्यक है, वह सभी शरीरमें मौजूद है।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्त्तते॥

शिव संहिता॥

"भूर्भुवः स्वः" इन तीनों लोकोंमें जितने प्रकारके जीव हैं, वे सभी शरीरमें अवस्थान कर रहे हैं। वे सब पदार्थ मेरुको वेष्टन करके अपना-अपना विषय सम्पादन कर रहे हैं।

देहेऽस्मिन् वर्त्तते मेरुः सप्तद्वीप समन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्र-पालकाः ॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्त्तन्ते पीठदेवताः ॥
सृष्टिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वीं तथैव च ॥

शिव संहिता।

जीवके शरीरमें सात द्वीपोंके साथ सुमेरु पर्वत, सब नद, नदी, समुद्र, पर्वत, क्षेत्र और क्षेत्रपाल प्रभृति भी अवस्थान करते हैं। सब मुनि-ऋषि, ग्रह-नक्षत्र, पुण्य-तीर्थ, पुण्य-पीठ और पीठ-देवतागण इसी शरीरमें नित्य अवस्थान कर रहे हैं। सृष्टिको नाश करनेवाले चन्द्र-सूर्य इसी शरीरमें सर्वदा भ्रमण करते रहते हैं। फिर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश प्रभृति पञ्चमहाभूत भी इसी शरीरमें अधिष्ठित हैं।

जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः।

शिव संहिता।

जो व्यक्ति शरीरका यह सब वृत्तान्त जानता है, वही प्रकृत योगी है। सुतरां सबसे पहले शरीरका तत्त्व जान लेना आवश्यक है।

प्रत्येक जीवका शरीर ही शुक्र, शोणित, मज्जा, मेद, मांस,

अस्थि और त्वक् इन सात धातुओंसे बना है। मृत्तिका, वायु, अग्नि, जल और आकाश, इन्हीं पञ्चभूतसे शरीरके बनानेमें समर्थ ये सप्तधातु एवं क्षुधा, तृष्णादि शरीरके धर्म्म उत्पन्न हुए हैं। पञ्चभूतसे यह शरीर उत्पन्न होनेके कारण यह भौतिक देह कहलाता है। भौतिक-देह निर्जीव एवं जड़ स्वभावापन्न है, किन्तु चैतन्यरूपी पुरुषके अवस्थानकी भूमि होनेके कारण यह सचेतनकी भाँति देख पड़ता है। शरीरके भीतर पञ्चभूतोंमें प्रत्येकके अधिष्ठानके लिये स्वतन्त्र-स्वतन्त्र स्थान नियत हैं, उन्हीं स्थानोंको चक्र कहते हैं। वे सब अपने-अपने चक्रमें अवस्थान करते हुए शरीरके सब काम कर रहे हैं। गुह्य देशमें मूलाधार-चक्र पृथ्वीतत्त्वका स्थान है, लिङ्गमूलमें स्वाधिष्ठान-चक्र जलतत्त्वका स्थान है, नाभिमूलमें मणिपूर-चक्र अग्नितत्त्वका स्थान है, हृद्देशमें अनाहत-चक्र वायुतत्त्वका स्थान है और कण्ठदेशमें विशुद्ध चक्र आकाश-तत्त्वका स्थान है। योगिगण इन्हीं पाँच चक्रोंमें पृथिवी आदिके क्रमसे पञ्चमहाभूतका ध्यान किया करते हैं। इनके सिवाय ध्यान-योग और भी कईएक चक्र हैं। ललाटदेशके आज्ञा नामक चक्र पञ्चतन्मात्रतत्त्व, इन्द्रियतत्त्व, चित्त और मनका स्थान है। उसके ऊपर ज्ञान नामक चक्रमें अहं-तत्त्वका स्थान है। उसके भी ऊपर ब्रह्मरन्ध्रमें एक शतदल चक्र है, उसमें महतत्त्वका स्थान है। उससे भी ऊपर महाशून्यमें सहस्रदल चक्रमें प्रकृति-पुरुष परमात्माका स्थान है। योगिगण पृथ्वीतत्त्वसे परमात्मा तक सब तत्त्वोंका इसी भौतिक शरीरमें ध्यान किया करते हैं।

नाड़ीकी बात।

सार्द्धलक्षत्रयं नाड्यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्।
प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश ॥

शिवसंहिता २।१३

भौतिक देहको कार्यक्षम बनानेके लिये मूलाधारसे प्रधानभूता साढ़े तीन लाख नाड़ियाँ उत्पन्न होकर "सड़े हुए पीपल या कमलके पत्तेपर जैसे नसें देख पड़ती हैं," वैसे ही अस्थिमय शरीरके ऊपर ओतप्रोत भावसे व्याप्त होकर अङ्ग-प्रत्यङ्गका सब काम सम्पन्न कर रही हैं। इन साढ़े-तीन लाख नाड़ियोंमें चौदह नाड़ियाँ प्रधान हैं। यथा—

सुषुम्णेड़ा पिङ्गला च गान्धारी हस्तिजिह्विका।
कुहूः सरस्वती पूषा शङ्खिनी च पयस्विनी ॥
वारुण्यलम्बुषा चैव विश्वोदरी यशस्विनी।
एतासु तिस्रो मुख्याः स्युः पिङ्गलेड़ासुषुम्णिकाः ॥

शिव संहिता २।१४-१५

इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, कुहू, सरस्वती, पूषा, शङ्खिनी, पयस्विनी, वारुणी, अलम्बुषा, विश्वोदरी और यशस्विनी, इन चौदह नाड़ियोंमें भी इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्णा ये तीन नाड़ियाँ ही प्रधान हैं। सुषुम्णा नाड़ी मूलाधारसे उत्पन्न होकर नाभि-मण्डलमें जो अण्डाकार नाभीचक्र है, उसके ठीक बीचमें होती हुई

ब्रह्मरन्ध्र तक चली गई है। सुषुम्णाकी बाईं ओरसे इड़ा एवं दाहिनी ओरसे पिङ्गला उत्थित होकर स्वाधीष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्ध चक्रको धनुषाकारसे वेष्टन करती हुई इड़ा दाहने नथने तक एवं पिङ्गला बायें नथने तक चली गई हैं। मेरुदण्डके इन्द्राभ्यन्तरसे (छेदसे) होकर सुषुम्णा नाड़ी और मेरुदण्डकी बाहरी ओरसे होकर पिङ्गला एवं इड़ा नाड़ी चली गई हैं। इड़ा चन्द्रस्वरूपा, पिङ्गला सूर्य्यस्वरूपा, एवं सुषुम्णा चन्द्र, सूर्य्य और अग्निस्वरूपा है, सत्त्व रजः और तम इन तीन गुणोंसे युक्त एवं खिले हुए धतूरेके पुष्पके सदृश श्वेतवर्णा है।

पहले बताई हुई अन्यान्य प्रधान नाड़ियोंमें कुहू नाड़ी सुषुम्णाकी बाईं ओरसे उत्थित होकर मेढ़ू देशतक चली गई है, वारुणी नाड़ीने देहका ऊर्द्ध एवं अधः प्रभृति समस्त भाग घेर रखा है। यशस्विनी नाड़ी दाहने पैरके अंगूठेकी नोकतक, पूषानाड़ी दाहिनी आँख तक, पयस्विनी दाहने कानतक, सरस्वती जिह्वाग्र तक, शङ्खिनी बायें कान-तक, गान्धारी बाईं आँखतक, हस्तिजिह्वा बायें पैरके अंगूठेतक, अलम्बुषा मुंह तक एवं विश्वोदरी पेट तक पहुँच गई है। इसी प्रकार सारा शरीर नाड़ियोंसे आवृत्त हो रहा है। नाड़ीकी उत्पत्ति और उसके विस्तारके सम्बन्धमें मनको स्थिर करके विचार करने पर जान पड़ेगा कि मानो कन्दमूल पद्मबीजकोपके चारों ओर लगे हुए केशरकी तरह नाड़ियोंसे वेष्टित हैं एवं बीजकोपके बीचसे इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा नाड़ी परागकेशरकी तरह उत्थित होकर पूर्वोक्त स्थानोंपर पहुँच गई हैं। क्रमशः इन सब नाड़ियोंसे शाखा-

प्रशाखाएँ उत्थित होकर शरीरको शिरसे पैरतक वस्त्रके ताने और बानेकी तरह व्याप्त किये हुए हैं।

योगिगण प्रधानभूता इन चौदह नाड़ियोंको पुण्यनदी कहा करते हैं। इन कुहूनाम्नी नाड़ीको नर्म्मदा, शङ्खिनी नाड़ीको ताप्ती, अलम्बुषा नाड़ीको गोमती, गान्धारी नाड़ीको कावेरी, पूषा नाड़ीको ताम्रपर्णी एवं हस्तिजिह्वा नाड़ीको सिन्धु नदी कहते हैं। इड़ा गङ्गारूपा, पिङ्गला यमुनास्वरूपा एवं सुषुम्णा सरस्वती रूपिणी है; येही तीनों नाड़ियाँ आज्ञाचक्रके ऊपर जिस स्थानपर जा मिली हैं, उस स्थानका नाम त्रिकुट या त्रिवेणी है। प्रयागकी त्रिवेणीमें लोग कष्टसे कमाया रुपया पैसा खर्च करके किम्वा शारीरिक क्लेश उठाकर स्नान करने जाते हैं, किंतु इन सब नदियोंमें बाह्य स्नान (बाहरसे नहाना) करने पर यदि मुक्ति प्राप्त होती तो आज तीर्थादिके जलमें जलचर-जीवजन्तु नहीं मिलते, क्योंकि वे भी सबके सब मुक्त हो जाते। शास्त्रमें भी कहा है—

"अन्तः स्नान विहीनस्य बहिः स्नानेन किं फलम् ?"

अन्तःस्नान विहीन व्यक्तिके बाह्यस्नानसे कोई फल नहीं निकलता। गुरुकी कृपासे जो आत्म-तीर्थको जानकर आज्ञाचक्रके ऊपर इस तीर्थराज त्रिवेणीमें मानस स्नान या यौगिक स्नान करता है, वह निश्चय ही मुक्तिपद लाभ करता है। इस शिव-वाक्यमें कोई भी सन्देह नहीं।

इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा इन तीनों प्रधान नाड़ियोंमें सुषुम्णा सर्व प्रधान है। इसके गर्भमें वज्राणी नामक एक नाड़ी है। यह

नाड़ी शिश्नदेशसे निकल कर शिरःस्थान तक छा रही है। वज्र नाड़ीके बीचमें आद्यन्त प्रणवयुक्ता अर्थात् चन्द्र, सूर्य्य और अग्नि-स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिवसे आदि एवं अन्तमें मिली हुई मकड़ीके जालेकी तरह वहुत सूक्ष्म चित्राणी नामकी और एक नाड़ी है। इस चित्राणी नाड़ीमें पद्म वा चक्र सव गुंथे हुए हैं। चित्राणी नाड़ीके वीचमें दूसरी और एक विद्युत्वर्णा (विजली जैसी) नाड़ी है, उसे ब्रह्मनाडी कहते हैं। ब्रह्मनाड़ी मूलाधारपद्मस्थित महादेवके मुखसे उत्थित होकर शिरस्थित सहस्रदल तक फैली हुई है। यथा—

तन्मध्ये चित्रणी सा प्रणव विलसिता योगिनां योगगम्यां,
तां तन्तूपमेयां सकलसरसिजान् मेरुमध्यान्तरस्थान्।
भित्वा देदीप्यते तद् ग्रथनरचनया शुद्ध वुद्धि प्रवोधा,
तस्यान्तर्ब्रह्मनाड़ी हरमुख कुहरा दादिदेवान्तसंस्था॥

पूर्णानन्द परमहंस कृत "पट्चक्र"

इस ब्रह्मनाड़ीके विषयमे रात-दिन योगियोंको ध्यान करना चाहिये; कारण योग-साधनाका चरमफल इसी ब्रह्मनाड़ीसे प्राप्त होता है। इसी ब्रह्मनाड़ीके अन्दरसे गमन कर सकने पर आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होता है एवं योगका उद्देश्य सिद्ध होकर मुक्ति लाभ होता है। अव किस नाड़ीमें कैसे वायु चलता है, यह जान लेनेकी आवश्यकता है।

वायुकी बात

मौतिक देहमें जितने प्रकारके शारीरिक कार्य्य होते हैं, वे सभी वायुकी सहायतासे सम्पन्न होते हैं। चैतन्यकी सहायतासे इस जड़ देहमें वायु ही जीवरूपसे दैहिक कार्य्य सम्पन्न कर रहा है। देह केवल यन्त्र मात्र है; वायु उसके चलानेका उपकरण है। सुतरां वायुको वश करनेके उपायका नाम ही योगसाधन है। वायुके वशमें होजाने पर ही मन वशीभूत होता है, मनके वशमें आनेसे इन्द्रिय जय हो सकता है, इन्द्रिय जय होने पर सिद्धि मिलनेमें कुछ भी वाकी नहीं रह जाता। वायु जय करके जिससे चैतन्य स्वरूप पुरुषके साथ साक्षात् हो जाय, इसीके लिये योगिगण योगसाधन करते हैं; सुतरां सबसे पहिले वायुकी बात जान लेना वहुत ही आवश्यक है।

मानवदेहके अन्दर हृद्देशमें अनाहत नामक एक रक्तवर्ण पद्म है, उसके बीचमें त्रिकोनी पीठपर वायुबीज (यं) है। यह वायुवीज वा वायुयन्त्रको प्राण कहा जाता है; प्राणवायु शरीरके नाना स्थानोंमें अवस्थान कर दैहिक कार्य्यभेदसे दश नामोंसे पुकारा जाता है।

प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः॥

गोरक्ष संहिता। २६

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय इन्हीं दशनामसे प्राणवायु अभिहित होता है। इन दश वायुओंमें प्राणादि पञ्चवायु अन्तस्थ एवं नागादि पञ्चवायु वहिस्थ हैं। अन्तस्थ पञ्च प्राणके देहमें अलग अलग स्थान निर्दिष्ट हैं। यथा—

हृदि प्राणोवसेन्नित्यमपानो गुह्यमण्डले।
समानो नाभिदेशेतु उदानः कण्ठमध्यगः।
व्यानो व्यापी शरीरेतु प्रधानाः पञ्चवायवः॥

गोरक्ष संहिता। ३०

प्रधान पञ्चवायुके बीचमें हृद्देशमें प्राणवायु, गुह्यदेशमें अपान वायु, नाभिमण्डलमें समान वायु, कण्ठदेशमें उदान वायु और सारे शरीरमें व्यान वायु व्याप्त होकर अवस्थान कर रहा है। यद्यपि ये अलग-अलग नाम हैं, तथापि एक प्राणवायु ही इनमें मूल और प्रधान है।

प्राणस्य वृत्तिभेदेन नामानि विविधानि च।

शिवसंहिता।

प्राण वायुके वृत्तिभेदसे विविध नाम हुवे हैं। अब इन

दश वायुके गुण

जान लेना आवश्यक है। प्राणादि अन्तस्थ पञ्चवायु और नागादि वहिस्थ पञ्चवायु अपने-अपने स्थानमें अवस्थान करके, शारीरिक समस्त कार्य्य सम्पन्न कर रहे हैं। यथा—

निःश्वासोच्छ्‌वासरूपेण प्राणकर्म्म समीरितम्।
अपानवायोः कर्म्मैतद्विन्मूत्रादि विसर्ज्जनम्।'
हानोपादान चेष्टादिर्व्यानकर्मेति चेष्यते ।
उदान कर्म्म तच्चोक्तं देहस्योन्नयनादि यत्॥
पोषणादि समानस्य शरीरे कर्म्म कीर्त्तितं ।
उद्गारादिर्गुणो यस्तु नागकर्म्म समीरितम्॥
निमीलनादि कूर्म्मस्य क्षुत्तृष्णे कृकरस्य च।
देवदत्तस्य विप्रेन्द्र तन्द्राकर्म्मेति कीर्त्तितम्।
धनञ्जयस्य शोपादि सर्वकर्म्म प्रकीर्त्तितम्॥

योगी याज्ञवल्क्य ४।६६—६९

नाकसे श्वास-प्रश्वास लेना, पेटमें गये अन्न-जलको पचाना व अलग करना, नाभिस्थलमें अन्नको विष्टारूपसे, जलको स्वेद और मूत्ररूपसे एवं रसादिको वीर्य्यरूपसे बनाना प्राण वायुका कार्य्य है। पेटमें अन्नादि पचानेके लिये अग्नि प्रज्वालन करना, गुह्यमेंसे मल निकालना, उपस्थमेंसे मूत्र निकालना, अण्डकोषमें वीर्य्य डालना एवं मेढ्र, ऊरू, जानु, कमर और जङ्घाद्वयके कार्य्यसम्पन्न करना अपान वायुका काम है। पक्व रसादिको बहत्तर हज़ार नाड़ियोंमें पहुँचाना, देहका पुष्टिसाधन करना और स्वेद निकालना समान वायुका काम है। अङ्ग-प्रत्यङ्गका सन्धिस्थान एवं अंगका उन्नयन करना उदान वायुका काम है। कान, नेत्र, ग्रीवा, गुल्फ, कण्ठदेश और कमरके नीचेके भागकी क्रिया सम्पन्न करना व्यान वायुका

काम है। उद्गारादि नाग वायु, सङ्कोचनादि कूर्म्म वायु, क्षुधातृष्णादि कृकर वायु, निद्रातन्द्रादि देवदत्त वायु और शोषणादि कार्य्य धनञ्जय वायु सम्पन्न करता है। वायुके ये सब गुण जान करके वायु जय कर सकनेसे हम अपने शरीरपर इच्छानुरूप आधिपत्य स्थापन कर सकते हैं एवं शरीर स्वस्थ, नीरोग और पुष्टि-कान्ति-विशिष्ट (तन्दुरस्त) बना सकते हैं।

शरीरमें जबतक वायु विद्यमान रहता है, तभीतक देह जीवित रहता है। वही वायु देहसे निकलकर पुनः न पहुँचने पर मृत्यु हो जाती है। प्राणवायु नथनेके रन्ध्रसे आकर्षित होकर नाभिग्रन्थि तक गमनागमन करता है और योनि-स्थानसे नाभिस्थानतक अपान वायु नीचेके भागमें गमनागमन करता है। जब नासारन्ध्र द्वारा प्राणवायु आकर्पित होकर नाभिमण्डलका ऊर्द्ध्व भाग विकसित करता रहता है, ठीक उसी समय अपान वायु योनिदेशसे आकर्षित होकर नाभि-मण्डलका अधोभाग विकसित करता है। इसी प्रकार नासारन्ध्र और योनिस्थान, इन दोनों जगहसे प्राण और अपान ये दोनों वायु ही पूरक-कालमें नाभिग्रन्थिमें आकृष्ट होते हैं एवं रेचक-कालमें दोनों वायु दोनों तरफ़ अपने-अपने स्थानमें गमन करते हैं। यथा—

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानञ्च कर्षति।
रज्जुबद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः॥
तथा चैतौ विसम्वादे सम्वादे सन्त्यजेदिदम्॥

षट्चक्रभेद टीका।

अपान प्राणवायुको आकर्षण करता है एवं प्राण अपान वायुको आकर्षण करता है। जैसे श्येनपक्षी रस्सीसे बन्धा रहनेसे उड़ जाने पर भी फिर लौट आता है, प्राणवायु भी वैसे ही नासारान्ध्रसे निकल जाने पर भी अपान वायु द्वारा आकर्षित होकर फिर देहमें पहुँच जाता है; इन्हीं दोनों वायुके विसम्वादसे अर्थात् नाक और योनिकी ओर विपरीत भावसे चलनेसे ही जीवन-रक्षा होती है। फिर जब ये दोनों वायु नाभिग्रन्थ भेद कर एकत्र मिलकर चलते हैं, तभी ये (दोनों वायु) देह त्याग करते हैं; पृथिवीकी भाषामें तभी जीवकी मृत्यु हो जाती है। मृत्यु समयके ऐसे भावको नाभिश्वास कहते हैं। वायुका यह सब तत्त्व जानकर ही योगाभ्यासमें नियुक्त होना उचित है। अब शरीरस्थ हंसाचारका विषय जान लेना आवश्यक है।

हंस-तत्त्व।

मानव देहके भीतर हृद्देशमें अनाहत नामक पद्मकी त्रिकोनी पीठ (आसन) पर वायुबीज 'यं' विद्यमान है। इस वायुमण्लके बीचमें कामकलारूप, तेजोमय और रक्तवर्ण पीठ (आसन)पर कोटि-विद्युत् सदृश भास्कर सुवर्णवर्ण वाणलिङ्ग शिव विराजित हैं। उनके मस्तकपर श्वेतवर्ण तेजोमय अति सूक्ष्म एक मणि है, उसमें निर्वात दीपकलिका की (वायु रहित स्थानमें स्थित—स्थिर दीपककी)

भाँति हंस-बीज-प्रतिपाद्य विशेष तेज (ज्योति) है। यही जीवका जीवात्मा है। अहंभावको आश्रय करके वही जीवात्मा मानव देहमें अवस्थान कर रहा है। हम जो मायासे मुह्यमान और शोकसे कातर होते हैं एवं सब तरहके सुख-दुःख इत्यादि फल भोगते हैं—वे सब हम सबका हृदयस्थ वही जीवात्मा भोग करता है। अनाहत पद्ममें यह जीवात्मा रातदिन साधन वा योग अथवा ईश्वर-चिन्तन करता है। यथा—

सोऽहं हंसः पदेनैव जीवो जपति सर्वदा।

हंसका विपरीत (उल्टा) "सोऽहं" जीव सर्वदा जप करता है। श्वास-प्रश्वासमें हंस उच्चारित होता है। श्वासवायुको छोड़नेके समय हं एवं ग्रहण करनेके समय सः यही शब्द उच्चारित होते हैं। हं शिव-स्वरूप और सः शक्तिरूपिणी है। यथा—

हंकारो निर्गमे प्रोक्तः सकारस्तु प्रवेशने।
हंकारःशिवरूपेण सकारः शक्तिरुच्यते।

स्वरोदय शास्त्र ११।७

श्वास छोड़कर यदि ग्रहण नहीं किया जाय, तो उसीसे ही मृत्यु हो जाती है, अतएव 'हं' शिवस्वरूप वा मृत्यु है। 'सः' कारसे जो श्वास ग्रहण करता है, वही शक्ति—स्वरूप है। अतएव यह श्वास-प्रश्वास ही जीवका जीवत्त्व है; श्वास रुक जानेसे मृत्यु होती है। सुतरां हंस ही जीवका जीवत्त्व है। शास्त्रमें भी भूतशुद्धि पर लिखा है, कि "हंस इति जीवात्मानं" अर्थात् हंस ही जीवात्मा है।

इस हंस शब्दको ही अजपा गायत्री कहते हैं। जितनी वार श्वास-प्रश्वास होता है, उतनी ही वार "हंस" रूपी परम मंत्रका अजपा-जप होता है। जीव रातदिनमे २१६०० इक्कीस हज़ार छः सौ वार अजपा गायत्रीका जप करता है। यही मानवका स्वाभाविक जप और साधन है। इसको जान लेने पर फिर झोली और माला लेकर वाह्यानुष्ठान वा उपवासादिका कठोर कायक्लेश नहीं उठाना पड़ता। दुःखकी वात है कि इसके प्रकृत तत्त्व और संकेतके उपदेशके अभावसे ऐसा सहज जपसाधन कोई नहीं समझता। गुरुके उपदेशसे यही हंसध्वनि थोड़ी ही चेष्टासे साधकको कर्णगोचर हो जाती है। इस हंसका विपरीत (उल्टा) "सोऽहं" ही साधककी साधना है। जीवात्मा सर्वदा यही 'सोऽहं" (अर्थात् मैं वही हूँ, मैं वही परमेश्वर हूँ) शब्द जपा करता है। किन्तु हमारा अज्ञान-तमसाच्छन्न विषयसे विमूढ़ मन उसे उपलब्ध नहीं कर सकता। साधक सामान्य प्रयत्नसे यह स्वतः उत्थित (आपसे निकली) अश्रुतपूर्व (पहले न सुनी हुई) अलोक सामान्य (अनोखी) "हंस" और "सोऽहं" की ध्वनि श्रवण करके अपार्थिव परमानन्दका उपभोग कर सकता है।

प्रणव-तत्त्व।

अनाहत पद्मकी पूर्वोक्त "हंस" ध्वनिको प्रणव ध्वनि कहते हैं। यथा—

शब्द ब्रह्मेति तां प्राह साक्षाद्देवः सदाशिवः।
अनाहतेषु चक्रेषु स शब्दः परिकीर्त्यते॥

परापरिमलोल्लास।

अर्थात् शब्द ब्रह्म है। वह साक्षात् देवता सदाशिव है। वही शब्द अनाहत-चक्रमें है। अनाहत पद्ममें हंस उच्चारित होता है। वह हंस ही प्रणव वा ओंकार होता है। यथा—

हकारश्च सकारश्च लोपयित्वा ततः परं।
सन्धिं कुर्य्यात्ततः पश्चात् प्रणवोऽसौ महामनुः॥

योग स्वरोदय।

अर्थात् "हंस" का उल्टा "सोऽहं" होता है; किन्तु 'स' और 'ह' लय होनेसे केवल 'ओं' रह जाता है। यह ही हृदयस्थ शब्द-ब्रह्मरूप ओंकार होता है। साधकगण शब्दब्रह्मरूप प्रणवध्वनि (ओंकार) को सुननेकी लालसासे द्वादश-दल (बारह-पँखुरी) वाले अनाहत पद्मका ऊर्द्ध्वमुख ध्यान करके गुरुके उपदेशानुसार क्रिया करें, तो उससे हंस वा ओंकार ध्वनि कानमें भर जायगी।

इस शब्द-ब्रह्मरूप ओंकारके सिवाय और एक वर्णब्रह्म रूप ओंकार है। वह आज्ञा-चक्रके ऊपर निरालम्बपुरमें नित्य विराज-मान है। भौंहोंके बीचमें दो-दल (पँखुरी) वाला श्वेतवर्ण आज्ञा-चक्र है। इस चक्रके ऊपर जहाँ सुषुम्णा-नाड़ीका अन्त हुवा है एवं शङ्खिनी-नाड़ी का आरम्भ हुआ है, उसी स्थानको निरालम्बपुरी कहते हैं। वही तेजोमय तारक-ब्रह्मका स्थान है। इसी स्थानमें

ब्रह्मनाड़ीके आश्रित तारंकबीज-प्रणव (ओंकार) वर्त्तमान है। यही प्रणव वेदका प्रतिपाद्य ब्रह्मरूप एवं शिव-शक्ति योगसे प्रणवरूप है। शिव-शब्दमें इ-कार और उसका आकार गज-कुम्भ जैसा अर्थात् "ओ" कार है। ओ-कार रूप पलङ्गपर नादरूपिणी देवी है; उनके ऊपर विन्दुरूप परमशिव विद्यमान हैं। ऐसा होनेसे ही ओंकार होता है। सुतरां शिव-शक्ति वा प्रकृति-पुरुषके संयोगसे ही ओंकार वनता है। तन्त्रमें इस ओंकारकी स्थूलमूर्त्ति वा राजराजेश्वरी रूप महाविद्या प्रकाशिता हुई है। * उसका गूढ़ रहस्य और विस्तृत विवरण इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य विषय नहीं है।

साधक योगानुष्ठानसे यथा-विध षट्‌चक्र भेदकर ब्रह्मनाड़ीकी सहायतासे इस निरालम्ब-पुरीमें पहुँचनेपर महाज्योतिरूप ब्रह्म ओंकार अथवा अपने-अपने इष्ट देवताका दर्शन कर सकता है एवं प्रकृत निर्वाण पदको प्राप्त होता है। सब देवदेवीका वीज-स्वरूप वेद प्रतिपाद्य ब्रह्मरूप प्रणव तत्त्व जानकर साधन करनेसे वह इस तारक-ब्रह्मके स्थानपर ज्योतिर्म्मय देवदेवीका साक्षात् लाभ कर सकता है। ऐसा होनेपर फिर तीर्थ-तीर्थमें दौड़-धूप कर अकारण कष्टभोग नहीं करना पड़ता।

---

* श्रीमत् स्वामी विमलानन्द कृत कलकत्ता चोरवागानके आर्ट स्टुडियो से प्रकाशित श्री श्री कालिकामूर्त्ति प्रणवका स्थूल रूप है। पञ्चप्रेतासन पर महाकाल पड़े हैं एव उनके नाभि-कमलमें शिवशक्ति विराजती है—बड़ा ही अपूर्व मिलन है।

ओंकार प्रणवका केवल दूसरा नाम मात्र है। ओंकारके तीन रूप हैं—श्वेत, पीत और रक्त। 'अ', 'उ', 'म्' के मिलनसे प्रणव हुआ है एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर प्रणवमें प्रतिष्ठित हैं। यथा—

शिवो ब्रह्मा तथा विष्णुरोङ्कारे च प्रतिष्ठिताः।
अकारश्च भवेद्ब्रह्मा उकारः सच्चिदात्मकः॥
मकारो रुद्र इत्युक्तः............।

अ-कार ब्रह्मा, उ-कार विष्णु और म-कार महेश्वर है। सुतरां प्रणवमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये तीनों देवता; इच्छा, क्रिया और ज्ञान—ये तीन शक्तियाँ एवं सत्त्व, रजः और तमः—ये तीन गुण प्रतिष्ठित हैं। इसीलिये इसको त्रयी कहते हैं। शास्त्रमें लिखा है, कि "त्रयीधर्म्मः सदाफलः' अर्थात् त्रयी अ-कार, उ-कार और म-कार विशिष्ट शब्द प्रणव-धर्म्म सर्वदा फल देता है। जो तीन प्रणवयुक्त गायत्री जप करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। ब्राह्मणोंकी गायत्री जपमें तीन प्रणव संयुक्त एवं इष्टमन्त्रके आदि और अन्तमें प्रणव द्वारा सेतुबन्धन कर जप न करनेसे गायत्री वा इष्ट मन्त्रका जप निष्फल हो जाता है। हमारे देशके ब्राह्मणगण गायत्रीके आदि और अन्तमें दो प्रणव योग करके जप करते हैं, किन्तु यह शास्त्रके विरुद्ध है; आदिमें, व्याहृतिके पीछे और अन्तमें—इन तीनों स्थानोंमें प्रणव संयुक्त करके जप करना चाहिये।

यह हम पहले ही बता चुके हैं, कि अ, उ, म् के संयोगसे प्रणव होता है। प्रणवका यही अ-कार नादरूप, उ-कार विन्दुरूप, म-कार कलारूप और ओंकार ज्योतिःरूप है। साधकगण साधनाके समय

पहले नादको सुनकर नाद-लुब्ध, फिर विन्दु-लुब्ध और तदनन्तर कला-लुब्ध होकर अन्तमें ज्योतिर्दर्शन करते हैं।

प्रणवमें आठ अंग, चार पाद, तीन स्थान, पञ्च देवता प्रभृति और भी अनेक गुह्य रहस्य हैं। किन्तु उन सबका सम्यक् तत्त्व वा विशद वर्णन करना इस ग्रन्थका उद्देश्य नहीं है।

कुलकुण्डलिनी-तत्त्व।

गुह्यदेशसे दो अंगुल ऊपर और लिङ्गमूलसे दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तृत मूलाधार-पद्म विद्यमान है। उसके बीच पूर्वोक्त ब्रह्मनाड़ीके मुखमें स्वयम्भू-लिङ्ग विद्यमान है। उसके गात्रमें दक्षिणावर्त्तसे साढ़े तीन फेरे लगाकर कुण्डलिनी शक्ति है। यथा—

पश्चिमाभिमुखी योनिर्गुदमेढ्रान्तरालगा।
तत्र कन्दं समाख्यातं तत्रास्ते कुण्डली सदा॥
संवेष्टा सकलानाड़ीः सार्धत्रिकुटिलाकृति।
मुखे निवेश्य सापुच्छः सुषुम्णा विवरे स्थिता॥

शिव संहिता

गुह्य और लिङ्ग इन दोनोंके बीचमें पीछेको मुंह किये योनिमण्डल है—उस योनिमण्डलको कन्द भी कह सकते हैं।

योनिमण्डलके बीचमें कुण्डलिनी-शक्ति सब नाड़ीको लपेट करके सार्ध त्रिकुटिलाकार (साढ़े तीन चक्कर लगाकर) सर्प रूपसे अपनी पूंछको मुंहमें डाल सुषुम्णा विवरको रोक करके अवस्थान कर रही है।

यह कुण्डलिनी ही नित्यानन्द-स्वरूपा परमा प्रकृति है; इसके दो मुंह हैं एवं यह विद्युल्लताकार (विजलीके समान) तथा अति सूक्ष्मा है, जो देखनेमें आधे ओंकारकी प्रतिकृति जैसी मालूम होती है। नर-अमर-असुरादि सभी प्राणियोंके शरीरमें कुण्डलिनी विराज रही है। पद्मके मध्यमें जैसे भ्रमरकी अवस्थिति है, वैसे ही देहके बीचमें कुण्डलिनी विराजित रहती है। इस कुण्डलिनीके अभ्यन्तरमें केलेके कोष जैसी कोमल मूलाधारमें चित्‌शक्ति विराजित है। उसकी गति अति दुर्लक्ष्य है।

कुलकुण्डलिनी-शक्ति प्रचण्ड स्वर्णवर्णा, तेजः स्वरूपा, दीप्तिमती और सत्त्व, रजः व तमः—इन तीन गुणोंको प्रसूती ब्रह्मशक्ति है। यह कुण्डलिनी शक्ति ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान—इन तीन नामोंमें विभक्त होकर समस्त शरीरके चक्रोंमें भ्रमण करती है। यह शक्ति ही हमारी जीवनी-शक्ति है। इस शक्तिका अपने वशमें लाना ही योग-साधनका उद्देश्य है।

यह कुण्डलिनी-शक्ति ही जीवात्माकी प्राणस्वरूप है; किन्तु कुण्डलिनी-शक्ति ब्रह्मद्वारको रोककर सुखसे सोती है; उसीसे जीवात्मा रिपु और इन्द्रियगण' द्वारा चालित होकर अहंभावापन्न

हुआ है एवं अज्ञानकी मायासे आच्छन्न होकर सुख-दुःखादिके भ्रान्ति-ज्ञानसे कर्म्मफलका भोग कर रहा है। कुण्डलिनी-शक्तिके न जागने पर शत-शत शास्त्र पढ़नेसे वा गुरुके उपदेश सुनने पर भी प्रकृत ज्ञान उत्पन्न नहीं होता एवं तप-जप और साधन-भजन सब ही वृथा हो जाता है। यथा—

मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो।
तावत् किञ्चिन्न सिध्येत मन्त्रयन्त्राच्चर्नादिकम्॥
जागर्त्ति यदिसादेवि वहुभिः पुण्यसञ्चयैः।
तदा प्रसादमायाति मन्त्रयन्त्राच्चर्नादिकम्॥

गौतमीय तन्त्र।

मूलाधार-स्थित कुण्डलिनी-शक्ति जवतक न जागे, तवतक मन्त्र-जप और यन्त्रादिसे पूजाच्चर्ना सव विफल हैं। यदि पुण्यके प्रभावसे यह शक्ति-देवी जाग उठे तो मन्त्र जपादिका सव फल भी सिद्ध हो सकता है।

योगके अनुष्ठानद्वारा कुण्डलिनीका चैतन्य सम्पादन करना ही मानव जीवनका पूर्णत्व है। भक्तिपूर्ण चित्तसे प्रतिदिन कुण्डलिनी-शक्तिका ध्यान पाठ करने पर साधकको इस शक्तिके सम्बन्धमें ज्ञान उत्पन्न होता है एवं यह शक्ति धीरे-धीरे जाग्रत होती है। ध्यान यथा—

ध्यायते कुण्डलिनीं सूक्ष्मां मूलाधारनिवासिनीम्
तामिष्टदेवतारूपां सार्द्धत्रिवलयान्विताम्।
कोटिसौदामिनीभासां स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिताम्॥

अब शरीरके नवचक्रादिका विवरण जान लेना आवश्यक है ; नहीं तो योगका साधन करना विड़म्बना मात्र होगा।

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपञ्चकम्।
स्वदेहे यो न जानाति स योगी नामधारकः ॥

योग स्वरोदय।

शरीरके नवचक्र, षोड़शाधार, त्रिलक्ष्य और पञ्चप्रकारके व्योम जो व्यक्ति नहीं जानता, वह व्यक्ति केवल नामधारी योगी है अर्थात् वह योगतत्त्वको कुछ भी नहीं जानता है। किन्तु नवचक्रका विस्तृत वर्णन करना इस निःस्व (अर्थहीन) लेखककी शक्तिसे वाहर है। फिर भी इस ग्रन्थमें जितने साधन-कौशल लिखे हैं, उनके (साधनके) लिये उपयोगी, सामान्य प्रकारसे नवचक्रका वर्णन किया गया है। जो सम्यक् प्रकारसे जानना चाहते हैं, वे पूर्णानन्द परमहंस कृत "षट्चक्र" का मनन करें। योगके साधनके अतिरिक्त नित्य-नैमित्तिक और काम्य जप पूजादि करने पर भी चक्रादिका विवरण जान लेना परम आवश्यक है

नवचक्र।

मूलाधारं चतुष्पत्रं गुह्योर्द्धे वर्त्तते महत्।
लिङ्गमूले तु पीताभं स्वाधिष्ठानन्तु षड़्दलम् ॥
तृतीयं नाभिदेशेतु दिग्दलं परमाद्भुतम्।
अनाहतमिष्टपीठं चतुर्थकमलं हृदि ॥

कलापत्रं पञ्चमन्तु विशुद्धं कण्ठदेशतः ।
आज्ञायां षष्ठकं चक्रं भ्रुवोर्मध्ये द्विपत्रकम् ॥
चतुःषष्टिदलं तालुमध्ये चक्रन्तु मध्यमम् ।
ब्रह्मरन्ध्रेऽष्टमं चक्रं शतपत्रं महाप्रभम् ॥
नवमन्तु महाशून्यं चक्रन्तु तत् परात्परम् ।
तन्मध्ये वर्त्तते पद्मं सहस्रदलमद्भुतम् ॥

प्राणतोषिणीधृत तन्त्रवचन ॥

इस तन्त्रके वचनकी व्याख्यासे साधकगण नवचक्रका विवरण कुछ भी समझ न सकेंगे, अतएव षट्चक्रका संस्कृतांश परित्याग करके अनुवाद मात्रसे साधकके लिये आवश्यकीय विषयका वर्णन किया जाता है ।

प्रथम-मूलाधारचक्र ।

मानव-देहके गुह्यदेशसे दो अंगुल ऊपर और लिङ्ग मूलसे दो अंगुल नीचे चार अंगुल विस्तृत जो योनिमण्डल विद्यमान है, उसके ही ऊपर **मूलाधार** पद्म अवस्थित है। यह अल्प (थोड़ा) रक्तवर्ण और चतुर्दल विशिष्ट है, जिसकी चारों पँखुरियां व, श, ष, स-इन चार वर्णोंसे सजी हैं। इन चार वर्णोंका रङ्ग सोने जैसा है। इस पद्मकी कर्णिकाके बीचमें अष्टशूलसे शोभित चतुष्कोन (चौकोना) पृथ्वीमण्डल है। उसकी एक बगलमें पृथ्वीबीज लं विद्यमान है।

उसके बीचमें पृथ्वीबीजका प्रतिपाद्य इन्द्रदेव विराजित है। इन्द्रदेवके चार हाथ हैं और उनका पीतवर्ण है एवं वे सफेद हाथी पर बैठे हुए हैं। इन्द्रदेवकी गोदमें शैशवावस्थामें चतुर्भुज ब्रह्मा विराजित हैं। ब्रह्माजीकी गोदमें रक्तवर्ण, चतुर्भुजा और सालंकृता डाकिनी नाम्नी उनकी शक्ति विराजती है।

'लं' बीजके दक्षिण भागमें कामकला-रूप रक्तवर्ण त्रिकोणमण्डल विद्यमान है। उसके बीचमें तेजोमय, रक्तवर्ण क्लीं बीज-रूप कन्दर्प नामक रक्तवर्ण स्थिरतर वायुकी वसती है। उसके बीचमें ठीक ब्रह्मनाड़ीके मुख पर स्वयम्भूलिङ्ग विद्यमान है। यह लिङ्ग रक्तवर्ण और कोटिसूर्य्यकी भाँति तेजोमय है। इसके शरीरमें साढ़े तीन फेर (आँटे) लगी हुई कुण्डलिनी-शक्ति विद्यमान है। इस कुल-कुण्डलिनी-शक्तिके अभ्यन्तर चित्तशक्ति विराज रही है। यह कुण्डलिनी-शक्ति सबके लिये इष्ट देवी स्वरूपिणी है एवं मूलाधार-चक्र मानव-देहका आधार स्वरूप है, इसलिये इसका दूसरा नाम आधारपद्म है। साधन-भजनका मूल इसी स्थानमें है, इसीलिये इसको मूलाधार पद्म कहते हैं।

इस मूलाधार पद्मका ध्यान करनेसे गद्य-पद्यादि, वाक्सिद्धि और आरोग्यादि मिलते हैं।

द्वितीय—स्वाधिष्ठानचक्र ।

लिङ्गके मूलमें रहनेवाले द्वितीय पद्मका नाम स्वाधिष्ठान है। यह सुप्रदीप्त (खूब चमकीला) अरुण वर्ण और षड्दल विशिष्ट है— ब, भ, म, य, र, ल—ये छः मातृका वर्णात्मक हैं। प्रत्येक दलमें अवज्ञा, मूर्च्छा, प्रश्रय, अविश्वास, सर्वनाश और क्रूरता—ये छह वृत्तियाँ भरी हुई हैं। इसके कर्णिकाभ्यन्तरमें श्वेतवर्ण अर्धचन्द्राकार वरुण-मण्डल विराजमान है। उसके बीचमें श्वेतवर्ण वरुणबीज वं विद्यमान है। उसके बीचमें वरुणबीजके प्रतिपाद्य श्वेतवर्ण द्विभुज वरुण देवता मकर पर अधिष्ठित हैं। उनकी गोदमें जगत्के पालने वाले नवयौवन सम्पन्न हरि विराज रहे हैं। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं। वक्ष-स्थलमें श्रीवत्स कौस्तुभ शोभित है एवं पीताम्बर पहिने हुए हैं। इनकी गोदमें दिव्यवस्त्र और आभरण-भूषिता, चतुर्भुजा गौरवर्णा राकिनी नाम्नी इनकी शक्ति विराज रही है।

इस पद्मका ध्यान करनेसे भक्ति, आरोग्य और प्रभुत्वादिकी सिद्धि मिलती है।

तृतीय—मणिपुरचक्र ।

नाभिदेशमें तृतीय पद्म मणिपुर अवस्थित है। यह मेघवर्ण (बादल जैसा) दशदलयुक्त है, दश-दल—ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—ये दश मातृका वर्णात्मक हैं। इसके दशों वर्ण नीले हैं। प्रत्येक दल (पँखुरी) में लज्जा, पिशुनता, ईर्ष्या, सुषुप्ति, विषाद, कषाय, तृष्णा, मोह, घृणा और भय—ये दश वृत्तियाँ हैं। मणिपुर पद्मकी कर्णिकाके बीचमें रक्तवर्ण त्रिकोण वह्निमण्डल विद्यमान है। उसके बीचमें चिह्न (बीज रं विद्यमान है; यह भी रक्तवर्ण है। इस वह्निबीजके बीचमें उसके प्रतिपाद्य चार हाथवाले रक्तवर्ण अग्नि देव मेषारोहण कर अधिष्ठित हैं। उनकी गोदमें जगत्का नाश करने वाले भस्म-भूषित सिन्दूरवर्ण रुद्र व्याघ्र चर्म्मके आसन पर बैठे हैं। उनके दो हाथ हैं, इन दोनों हाथोंमें वर और अभय शोभा पा रहे हैं। उनके तीन आँखें हैं और वे व्याघ्रचर्म्म पहने हुए हैं। उनकी गोदमें पीत-वसन परिधाना, नानालङ्कार भूषिता, चतुर्भुजा, सिन्दुरवर्णा लाकिनी नाम्नी उनकी शक्ति विराज रही है।

इस पद्मका ध्यान करनेसे आरोग्य, ऐश्वर्य्यादि मिलते हैं एवं जगत्के नाशादि करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है।

चतुर्थ—अनाहतचक्र ।

हृदयमें बन्धूक पुष्प सदृश (कुँदरूके फूल जैसा) वर्ण-विशिष्ट द्वादशदलयुक्त (वारह पँखुरीवाला) चतुर्थ पद्म अनाहत विद्यमान है। द्वादशदल—क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ— ये वारह मातृका वर्णात्मक हैं। इन वर्णोंका रङ्ग सिन्दूरवर्ण है। प्रत्येक दलमें आशा, चिन्ता, चेष्टा, ममता (मेरापन), दम्भ (अहंकार), विकलता (चञ्चलता), विवेक, अहङ्कार, लोलुपता (लोभ) कपट, वितर्क और अनुताप ये वारह वृत्तियां हैं। इस पद्मकी कर्णिकाके भीतर अरुणवर्ण सूर्य्यमण्डल एवं धूम्रवर्ण षट्कोन् विशिष्ट वायु-मण्डल विद्यमान है। इसकी एक वग़लमें धूम्रवर्ण, वायुवीज यं विद्यमान है। इस वायु बीजके वीचमें उसके प्रतिपाद्य धूम्रवर्ण, चतुर्भुज वायु देव कृष्णसार (कालेहरिण) पर अधिरोहन कर अधिष्ठित हैं। उनकी गोदमें वराभयलसिता, त्रिनेत्रा, सर्वालङ्कार-भूषिता, मुण्डमाला-धरा, पीतावर्ण काकिनी नाम्नि उनकी शक्ति विराजित हैं। इस अनाहतपद्मके वीचमें विद्यमान वाणलिङ्ग शिव और जीवात्माका विषय हंस तत्त्वमें वर्णित है।

इस अनाहत पद्मका ध्यान करनेसे अणिमादि अष्टैश्वर्य्योंका लाभ होता है।

पञ्चम—विशुद्धचक्र ।

कण्ठदेशमें धूम्रवर्ण षोड़शदल (सोलह पँखुरी) विशिष्ट विशुद्ध पद्म अवस्थित है । षोड़शदल—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—इन्हीं सोलह मातृका वर्णात्मक हैं। इन वर्णोंका वर्ण काञ्चनार पुष्प जैसा होता है । प्रत्येक दलमें निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड़ज मध्यम, धैवत और पञ्चम—ये सप्तस्वर और हुँ, फट्, वौषट्, वषट्, स्वाहा, नमः, विष और अमृत प्रभृति विद्यमान हैं। इस पद्मकी कर्णिकामें श्वेतवर्ण चन्द्रमण्डलके बीचमें स्फटिक समान वर्णविशिष्ट हं विद्यमान है। उसके बीचमें हं-बीजके प्रतिपाद्य आकाश देवता श्वेत हाथीपर सवार हैं। उनके चार हाथ हैं,। उन्ही चार हाथोंमें पास, अंकुश, वर और अभय शोभा पा रहे हैं। इसी आकाश देवताके गोदमें त्रिलोचनान्वित पञ्चमुखलसित दशभुज वाले, सदसत्-कर्म्म-नियोजक व्याघ्र-चर्म्माम्बर पहनेवाले सदाशिव विराजमान हैं। उनकी गोदमें शर, चाप, पास और शूलयुक्ता, चतुर्भुजा, पीत-वसना रक्तवर्णा शाकिनी नाम्नी तत्शक्ति अर्द्धांगिनी रूपमें विराजित हैं। इन अर्द्ध नारीश्वर शिवके पास सभी के बीजमन्त्र या मूलमन्त्र विद्यमान हैं।

इस विशुद्ध पद्मका ध्यान करने पर जरा और मृत्युपाश दूर होकर भोगादि प्राप्त होते हैं।

षष्ठ—आज्ञाचक्र ।

दोनों भौंहोंके बीच श्वेतवर्ण द्विदलविशिष्ट आज्ञापद्म विद्यमान है। वे दो दल ह और क्ष—वर्णात्मक हैं। इस पद्मकी कर्णिकाके भीतर शरत्‌के चन्द्र जैसा निर्म्मल श्वेतवर्ण त्रिकोणमण्डल विद्यमान है। त्रिकोणके तीनों कोणोंमें सत्त्व, रजः और तमः—ये तीन गुण एवं तीनों गुणवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव यह तीन देव विराज रहे हैं। त्रिकोण मण्डलके बीचमें शुक्लवर्ण चन्द्रबीज ठं दीप्तिमान है। त्रिकोण मण्डलके एक बग़लमें श्वेतवर्ण बिन्दु विराजित है। उसकी बग़लमें चन्द्रबीजके प्रतिपाद वर और अभयसे शोभित द्विभुज देवविशेषकी गोदमें जगन्निधान-स्वरूप श्वेतवर्ण, द्विभुज, त्रिनेत्र ज्ञान-दाता शिव विराजित हैं। उनकी गोदमें चन्द्रमाकी भाँति श्वेतवर्णा, षड् वदना, विद्या-मुद्रा-कपाल-डमरू-जपवटिका-वराभय-शर- चापांकुश- पास- पङ्कज- लसिता द्वादशभुजा हाकिनी नाम्नी तत्‌शक्ति विराजती हैं।

आज्ञाचक्रके ऊपर इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा—इन तीनों नाड़ियोंके मिलनेका स्थान है। इस स्थानका नाम त्रिकूट या त्रिवेणी है। इस त्रिवेणीके ऊपर सुषुम्णाके मुंहसे नीचे अर्द्ध-चन्द्राकार मण्डल विद्यमान है। अर्द्धचन्द्रके ऊपर तेजःपुञ्ज-स्वरूप एक बिन्दु है। इस बिन्दुके ऊपर उच्च-नीच भावसे दण्डाकार नाद विद्यमान है। यह नाद देखनेमें ठीक एक तेजोरेखाके समान है।

इसके ऊपर श्वेतवर्ण एक त्रिकोण मण्डल विद्यमान है। उसके बीचमें शक्तिरूप शिवाकार ह्—काराद्ध है! इस स्थानमें वायुक्रियाका अन्त हो गया है। इसकी दूसरी बातें प्रणवतत्त्वमें वर्णित है।

इस आज्ञापद्मका एक दूसरा नाम ज्ञानपद्म भी है। परमात्मा इसका अधिष्ठाता हैं एवं इच्छा उनकी शक्ति है। यहाँ प्रदीप्तशिखा-रूपिणी आत्मज्योतिः सुन्दर पीले स्वर्णरेणुकी भाँति विराजमान है। इस स्थानमें जो ज्योतिर्दर्शन होता है, वही साधकका आत्म-प्रतिविम्ब है।

इस पद्मका ध्यान द्वारा दिव्यज्योतिके दर्शन पानेपर योगका चरमफल अर्थात् प्रकृत निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

सप्तम—ललनाचक्र।

ताळुकी मूलमें रक्तवर्ण चौंसठ दलवाला ललनाचक्र अधिष्ठित है। इस पद्ममें अहंतत्त्व का स्थान है। यहाँ श्रद्धा, संतोष, स्नेह, दम, मान, अपराध, शोक, खेद, अरति, सम्भ्रम, ऊर्म्मि और शुद्धता—ये वारह वृत्तियाँ एवं अमृतस्थाली विद्यमान हैं।

इस पद्मका ध्यान करनेसे उन्माद, ज्वर, पित्तादि जनित-दाह, शूलादि वेदना, शिरःपीड़ा और शरीरकी जड़ता मिट जाती है।

अष्टम—गुरुचक्र।

ब्रह्मरन्ध्रमें श्वेतवर्ण शतदल (सौ पँखुरीवाला) अष्टमपद्म गुरुचक्र अवस्थित है। इस पद्मकी कर्णिकामें त्रिकोण मण्डल विद्यमान है। इस त्रिकोण मण्डलके तीनों कोणमें यथाक्रम ह, ल, क्ष—ये तीन वर्ण हैं। इसके सिवा तीनों ओर समुदाय मातृकावर्ण विद्यमान है। इसी त्रिकोणमण्डलको **योनीपीठ** और **शक्ति-मण्डल** भी कहते हैं। इस शक्ति-मण्डलके बीचमें तेजोमय **कामकला-मूर्त्ति** विद्यमान है। मस्तकमें एक तेजोमय बिन्दु है। उसके ऊपर दण्डाकार तेजोमय नाद विद्यमान है।

इस नादके ऊपर निर्धूम अग्निशिखाकी भाँति (बिना धूएंके अग्निकी ज्वालाकी तरह) तेजःपुञ्ज विद्यमान है। उसके ऊपरमें हंसपक्षीके पलंग-जैसा तेजोमय पीठ है। उसके ऊपर एक श्वेत हंस विराजमान है; इस हंसका शरीर ज्ञानमय है, और उसके दोनों पक्ष (बाजू) आगम और निगम हैं। उसके दोनों चरण शिव-शक्तिमय, चोंच प्रणव-स्वरूप एवं आँख और कण्ठ कामकलां-रूप है। यह हंस ही गुरुदेवके पादपीठ स्वरूप है।

इस हंसके ऊपर श्वेतवर्ण वाग्भव बीज (गुरुबीज) ऐं विद्यमान है। उसकी बगलमें तद् बीज प्रतिपाद्य गुरुदेव विराज रहे हैं। उनका वर्ण श्वेत एवं कोटि सूर्य्यकी भाँति तेजःपुञ्ज स्वरूप है। उनके दो हाथ हैं—एक हाथमें वर और दूसरे हाथमें

अभय शोभा पा रहे हैं। ये श्वेतमाला और श्वेत गन्ध धारण किये हुए हैं एवं श्वेतवस्त्र पहन कर हास्यमुखसे गुरुदेव करुण दृष्टिसे कृपाका अमृत बरसा रहे हैं। इनकी बाईं तरफकी गोदमें रक्तवर्ण कपड़े पहनी हुई सर्व-भूषण-भूषिता तरुण-अरुण-सदृश रक्तवर्णा गुरुपत्नी विराज रही हैं। इनके बायें हाथमें एक कमल एवं दाहिने हाथसे श्रीगुरुदेवके शरीरको लपेटे बैठी हैं। श्रीगुरु और गुरुपत्नीके मस्तक पर सहस्रदल पद्म छत्रीकी भाँति शोभा पा रहा है।

इस शतदल पद्ममें हंसपीठके ऊपर गुरुपादुका एवं सबहीके गुरु विराजमान हैं। ये ही अखण्ड मण्डलाकारसे चराचरमें व्याप्त हो विराजमान हैं। इसी पद्ममें ऊपर लिखे हुए प्रकारसे सपत्निक गुरुदेवका ध्यान करना होता है।

इस शतदल पद्मका ध्यान करनेसे सर्वसिद्धि और दिव्य ज्ञानका प्रकाश होता है।

नवम—सहस्रार।

ब्रह्मरन्ध्रके ऊपर महाशून्यमें रक्त किञ्जल्क (केसररेणु) श्वेत-वर्ण सहस्रदल-विशिष्ट नवां चक्र सहस्रार अवस्थित है। सहस्रदल पद्मके चारों ओर पचास दल विराजित हैं एवं लगातार एक दूसरे पर बीस स्तरमें सजे हुए हैं। प्रत्येक स्तरके पचास दलमें पचास मातृकावर्ण विद्यमान हैं।

सहस्रदल कमलकी कर्णिकाके भीतर त्रिकोण चन्द्रमण्डल विद्यमान है। उसका दूसरा नाम शक्तिमण्डल है। इस शक्ति-मण्डलके तीनों कोणोंपर यथाक्रमसे ह, ल, क्ष—यह तीन वर्ण एवं तीनों ओर सब स्वर और व्यञ्जन वर्ण सन्निविष्ट हैं।

इस शक्ति-मण्डलके बीचमें तेजोमय विसर्गके आकारसे मण्डल विशेष विद्यमान है। उसके ऊपर दो-पद्मके कोटि सूर्य्य-स्वरूप तेजःपुञ्ज एक बिन्दु विराजमान है; वह विशुद्ध स्फटिककी भाँति श्वेतवर्ण है। यह बिन्दु ही परमशिव नामक जगत्के उत्पादक, पालक और नाशकारक परमेश्वर होते हैं। यही अज्ञानके अन्धकारको नाश करनेवाले सूर्य्यस्वरूप परमात्मा हैं। इसीको भिन्न-भिन्न सम्प्रदायने भिन्न-भिन्न नामसे निर्धारित किये हैं। साधनके बलसे इस बिन्दुको प्रत्यक्ष करनेका नाम ब्रह्मसाक्षात्कार है।

परमशिव स्वरूप यही बिन्दु सर्वदा गले हुए सुधा (अमृतद्रव) के समान है। इसके बीचमें सारे सुधाके आधार गोमूत्रके वर्ण जैसी अमा नामकी कला विद्यमान है। यही आनन्दभैरवी है। इसके बीचमें अर्द्धचन्द्राकार निर्वाण कामकला विद्यमान है। यह निर्वाण कामकला ही सबकी इष्टदेवता है। उसके बीचमें तेजोरूप परम निर्वाण शक्ति शोभित है—इसके आगे नि-रा का-र-म-हा-शू-न्य है।

इस सहस्रदल पद्ममें कल्पवृक्ष विद्यमान है। इसकी जड़में चार दरवाजेवाला ज्योतिर्म्मन्दिर है; उसके बीचमें पञ्चदश अक्षरात्मिका

वेदिका है। उसके ऊपर रत्नके सिंहासनमें चणकाकार महाकाली और महारुद्र विराज रहे हैं; वे महाज्योतिर्म्मय हैं। इन्हींका नाम चिन्तामणिके घरमें मायासे आच्छादित परमात्मा है।

इस सहस्रदलका ध्यान करनेसे जगदीश्वरत्व प्राप्त होता है।

अब कामकलातत्त्वको जाननेकी आवश्यकता है। किन्तु श्रीश्रीगुरुदेवके भक्त और पूर्णाभिषिक्त व्यक्तिके सिवाय

कामकला-तत्त्व—

को साधारण लोगोंके सम्मुख प्रकाशित करनेको मना किया गया है; इसीसे साधारण पाठकोंके सामने वह गुह्य तत्त्व प्रकाश नहीं किया जा सकता। इस पुस्तकमें जहाँ-जहाँ कामकला लिखा गया है, वहाँ-वहाँ उसे त्रिकोणाकार समझना चाहिये। उपर्युक्त नौ चक्रोंके अतिरिक्त मनश्चक्र, सोमचक्र प्रभृति और भी अनेक गुप्तचक्र विद्यमान हैं एवं पहले बताये हुए नौ चक्रका प्रत्येक चक्रके नीचे एक एक करके प्रस्फुटित ऊर्द्ध्वमुख चक्र है। मैंने यही सोचकर इसका पूरा तत्त्व विस्तारसे प्रकट नहीं किया कि, विषय बहुत बढ़ जायगा और रुपयाके अभाव तथा छापनेके झगड़ेसे पुस्तक न छप सकेगी। फिर भी मैं समझता हूँ, कि जहाँतक वर्णन किया गया है, वही साधकोंके लिये यथेष्ट होगा। प्रोक्त नव चक्रका ध्यान करते समय साधकगणको एक—

के जानलेनेकी आवश्यकता है। उन पद्मोंके सभी ओर मुह हैं; किन्तु जो भोगी अर्थात् फल-कामना करते हैं, उनको सब पद्मोंका नीचेकी तरफ मुख किये हुए रूपमें ध्यान करना चाहिये एवं जो योगी अर्थात् जिन्हें मोक्ष पानेकी इच्छा है, उन्हें पद्मको ऊपर मुंह वाले जानकर ध्यान करना चाहिये। इसी प्रकार भावके भेदसे ऊर्द्ध और अधः मुह वाले पद्मोंका ध्यान करना उचित है। साथ ही ये सब पद्म बहुत ही सूक्ष्म हैं—अतः उनकी भावना न हो सकने के कारण उन्हें चार अंगुलके आकारकी कल्पना करके ध्यान करना चाहिये।

षोड़शाधार।

पादांगुष्ठौ च गुल्फौ च।
पायुमूलं तथा पश्चात् देहमध्यञ्च मेढ्रकं॥
नाभिश्च हृदयं गार्गि कण्ठकूपस्तथैव च।
तालुमूलञ्च नासायां मूलं चाक्ष्णोश्च मण्डले।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटञ्च मूर्द्धा च मुनिपुङ्गवे॥
योगी याज्ञवल्क्य।

पहले-दाहने पैरका अंगूठा, दूसरा—पैरके गुल्फ (पादमूल), तीसरा—गुह्यदेश, चौथा—लिङ्गमूल, पांचवां—नाभिमण्डल

(तोंदिका चक्कर), छठां—हृदय, सातवां—कण्ठकूप (गलेका गड्ढा), आठवां जीभकी नोक, नवां—दाँतका मसूड़ा (मसूढ़े), दशवां तालुमूल, ग्यारहवां—नाककी नोक, बारहवाँ भौंहका मध्यभाग, तेरहवां—आँखका आधार, चौदहवां—ललाट,— पन्द्रहवां—मूर्द्धा (खोपड़ा), सोलहवां—सहस्रार—यही सोलह आधार हैं। इनके एक एक स्थानमें क्रिया-विशेषके अनुष्ठानसे लय योगका साधन करना होता है। इन क्रियाओंका कौशल साधन-कल्पमें लिखा गया है।

त्रिलक्ष्य।

आदिलक्ष्यः स्वयम्भूश्च द्वितीयं बाण संज्ञकम्।
इतरं तत्परे देवि ज्योतिरूपं सदाभज ॥

स्वयम्भूलिङ्ग बाणलिङ्ग और इतरलिङ्ग, इन्हीं तीन लिङ्गोंको त्रिलक्ष्य कहते हैं। ये तीनों लिङ्ग यथाक्रम मूलाधार, अनाहत और आज्ञा चक्रमें अधिष्ठित हैं।

व्योम-पञ्चक।

आकाशन्तु महाकाशं पराकाशं परात्परम्।
तत्त्वाकाशं सूर्य्याकाशं आकाशं पञ्चलक्षणम् ॥

आकाश, महाकाश, पराकाश, तत्त्वाकाश और सूर्य्याकाश—इसीको पञ्च-व्योम कहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन्हीं पञ्च-तत्त्वोंको पञ्चाकाश कहते हैं। इस पञ्चाकाशके रहनेकी जगह शरीर तत्त्वमें वर्णन की गई है।

ग्रन्थित्रय।

ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि—इन्हीं तीनको ग्रन्थित्रय कहते हैं। मणिपुर पद्म-ब्रह्मग्रन्थि, अनाहत पद्म-विष्णुग्रन्थि और आज्ञा-पद्म रुद्रग्रन्थिके नामसे अभिहित हैं।

शक्तित्रय।

ऊर्द्ध शक्तिर्भवेत् कण्ठः अधःशक्तिर्भवेद् गुदः।
मध्यशक्तिर्भवेन्नाभिः शक्त्यतीतं निरञ्जनम्॥

ज्ञान सङ्कलिनी तंत्र।

कण्ठदेशके विशुद्धचक्रमें ऊर्द्धशक्ति, गुह्यदेशके मूलाधार चक्रमें अधःशक्ति और नाभिदेशके मणिपुर चक्रमें मध्यशक्ति विराजित हैं। इन शक्तियोंको दूसरे नाममें ज्ञान, इच्छा और क्रिया अथवा गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी भी कहते हैं। ये तीनों शक्तियाँ ही प्रणवकी ज्योतिः स्वरूप हैं। यथा—

इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी ।

त्रिधा शक्तिः स्थिता लोके तत्परं ज्योतिरोमिति ॥

महानिर्वाणतन्त्र । ४

मूल प्रकृति सत्त्व, रजः और तमः इन तीन गुणोंके भेदसे तीनों गुणोंमें विभक्त होकर सृष्टिका काम चलाती है ।

सर्वार्थ-साधिनी, सर्वशक्ति-प्रदायिनी, सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी, शम्भू-सीमन्तिनी, शिवाणीकी शक्तिसे सुधी साधकगणकी साधन-सरणीके सुगम साधनोद्देश और सुविधाके लिये, सर्वप्रथम सानन्द साध्यमत् सम्यक् शरीर-तत्त्व सुश्रृङ्खल और सुन्दर भावसे सन्निवेशित करके अब—

योगतत्त्व

की

आलोचनामें प्रवृत्त होते हैं । **योग** किसको कहते हैं ?—

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मा परमात्मनोः ।

योगी याज्ञवल्क्य ।

जीवात्मा और परमात्माका मेल ही योग है । इसके अतिरिक्त देहको मजबूत बनानेका नाम योग है, मनको उत्तम रूपसे स्थिर करनेका नाम योग है, चित्तको एक स्थानमें लगानेका नाम योग है, प्राण और अपान वायुको मिलानेका नाम योग है, नाद और बिन्दुको जोड़नेका नाम योग है, प्राण वायुको रोकनेका नाम योग है, सहस्रारमें स्थित परमशिवके साथ कुण्डलिनी-शक्तिका संयोग करनेका नाम

योग है। इसके सिवाय शास्त्रमें असंख्य प्रकारके योगकी बातोंका उल्लेख है; यथा—सांख्ययोग, क्रियायोग, लययोग, हठयोग, राजयोग, कर्म्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, विज्ञानयोग, ब्रह्मयोग, विवेकयोग, विभूतियोग, प्रकृति-पुरुषयोग, मन्त्रयोग, पुरुषोत्तमयोग, मोक्षयोग और राजाधिराज योग अर्थात् भाव-व्यापक कर्म्म मात्रको ही योग कहा जा सकता है। इस भाँति जितने प्रकारके योग हैं, वे सब एक प्रधान योगके अर्थात् जीवात्मा और परमात्माके मिलनेके ही अंग-प्रत्यङ्ग मात्र हैं। असलमें योग एक ही प्रकारका है, दो या अधिक प्रकारका नहीं। तथापि उस एक ही प्रकारके योग-साधनकी सिढ़ी स्वरूप जो सब प्रक्रियाएँ हैं, वे सभी स्थान-विशेषमें—उपदेश विशेषमें एक एक स्वतंत्र योगके नामसे पुकारी गई हैं। किन्तु जीवात्मा और परमात्माका संयोग-साधन ही योगका प्रकृत उद्देश्य है। अब देखना चाहिये, कि जीवात्मा और परमात्माका संयोग कैसे हो सकता है? उसका सहज उपाय वक्ष्यमाण (आगे कही जानेवाली) योगकी प्रणाली है। योगके आठ अंग हैं। योग-साधनमें फल प्राप्त करनेके लिये—

योगके आठ अंग

—का साधन करना होगा। साधनका अर्थ अभ्यास है; योगके आठों अङ्ग ये हैं; तथा—

यमश्च नियमश्चैव आसनञ्च तथैवच।
प्राणायामस्तथा गार्गि प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वरानने ॥

योगी याज्ञवल्क्य ११४५

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—यही आठ योगके अंग हैं। योगका साधन करना हो अर्थात् पूर्ण मानुष बनकर स्वरूप-ज्ञान लाभ करना हो तो योगके इन आठों अंगोंकी साधना अर्थात् अभ्यास करना चाहिये। सबसे पहले—

यम

किसको कहते हैं, उसकी साधन प्रणालीको जान लेना आवश्यक है।

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥

पातञ्जल, साधन-पाद। ३०

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह—इन्हींको यम कहते हैं।

अहिंसा,—

मनोवाक्कायैः सर्वभूतानामपीड़नं अहिंसा ॥

मन, वाक्य और देहसे सर्वभूत (किसी भी प्राणी) को कष्ट न पहुँचनेका नाम अहिंसा है। जब मनमें हिंसाकी छायातक न देख पड़ेगी, तब ही अहिंसा सिद्ध हुई समझनी चाहिये।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

पातञ्जल, साधन-पाद। ३५.

जब हृदयमें दृढ़ रूपसे अहिंसा प्रतिष्ठित हो जायगी, तब दूसरा उसके प्रति अपने आप वैर भावका परित्याग कर देगा। अर्थात् चित्त हिंसाशून्य होने पर साँप, बाघ, प्रभृति हिंस्र जानवर भी उसकी हिंसा नहीं करेंगे।

सत्य,—

परहितार्थं वाङ्मनसो यथार्थत्वं सत्यम्।

दूसरेके हितके लिये वाक् और मनका जो यथार्थ भाव है, उसको सत्य कहते हैं। सरल चित्तके अकपट वाक्यको, जिसमें दुर्विचारका लेश भी न हो, वही सत्य भाषण कहलाता है। जब सत्य स्वभाव गत हो जायगा और जब मनमें मिथ्याका लेश तक न रहेगा, तभी सत्य का साधन समाप्त हो सकेगा।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

पातञ्जल, साधन-पाद। ३६

अन्तरमें सत्य प्रतिष्ठित हो जाने पर, कोई कार्य्य न करके भी फल प्राप्त हो जाता है। अर्थात् सत्य प्रतिष्ठित व्यक्ति वाक्य- सिद्ध हो जाता है।

अस्तेय,—

परद्रव्यापहरणत्यागोऽस्तेयम्।

दूसरेकी चीज़को चुराना छोड़ देनेका नाम अस्तेय है। जिस समय दूसरेकी चीज़को लेनेकी ज़रा भी इच्छा न होगी, तभी अस्तेय का साधन सिद्ध होगा।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।

पातञ्जल, साधन-पाद । ३७

मनुष्यके हृदयमें अस्तेयकी प्रतिष्ठा हो जाने पर, उसके सामने संसारके सब रत्न अपने आप ही आ पहुँचते हैं। अर्थात् अस्तेयकी प्रतिष्ठा करनेवाले व्यक्तिको कभी धन रत्नका अभाव नहीं होता।

ब्रह्मचर्य्य,—

वीर्य्यधारणं ब्रह्मचर्य्यम् ।

शरीरस्थ वीर्य्यको अविचलित और अविकृत अवस्थामें धारण करनेका नाम ब्रह्मचर्य्य है। शुक्र या वीर्य्य ही ब्रह्म है। सुतरां सब जगह, सर्वदा, सर्वावस्थामें, मैथुनका परित्याग करके वीर्य्य धारण करना सबका कर्त्तव्य है। आठ प्रकारका मैथुन परित्याग करनेसे ब्रह्मचर्य्य सिद्ध होता है।

ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः

साधन-पाद, पातञ्जल। ३८

ब्रह्मचर्य्य-प्रतिष्ठा होनेसे वीर्य्य-लाभ होता है। अर्थात् ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठित व्यक्तिके देहमें ब्रह्मण्य देवकी विमल-ज्योति प्रकाशित होती है। *

अपरिग्रह,—

देहरक्षातिरिक्तभोगसाधनास्वीकारोऽपरिग्रहः ।

---

* हमारे "ब्रह्मचर्य्य साधन" नामक ग्रन्थमें इस विषय पर विशेष रूपसे प्रकाश डाला गया है और वीर्य्य रक्षाका उपाय भी वर्णन किया गया है।

शरीर-रक्षाके अतिरिक्त भोगविलासके साधनोंके परित्याग करनेका नाम **अपरिग्रह** है। कहनेका मतलब यह है, कि लोभके परित्याग ही का नाम अपरिग्रह है, जब "यह मांगता हूं, वह मांगता हूं" यह भाव मनमें पैदा ही नहीं होगा, तभी अपरिग्रह सिद्ध हो सकेगा।

अपरिग्रह प्रतिष्ठायां जन्मकथन्तासंबोधः।

पातञ्जल, साधन-पाद। ३९

अपरिग्रहकी प्रतिष्ठा होनेपर पूर्वजन्मकी बातें स्मरण होने लगती हैं।

इन सब बातोंका साधन होने पर यम साधना समाप्त हो जाती है। प्रकृत मनुष्यत्व लाभ करना हो तो सब देशोंके सभी श्रेणीके लोगोंको इस यमकी साधनामें सिद्धिलाभ करना चाहिये। इसे न पालनेपर मनुष्य और जानवरमें कोई भेद नहीं रहता। अब—

नियम

किसे कहते हैं और उसे कैसे साधन करना होता है, सो समझना चाहिये।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमः।

पातञ्जल, साधन-पाद। ३२

शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—इन्हीं पांच प्रकारकी क्रियाओंको नियम कहते हैं। इसके अभ्यासका नाम **नियम-साधन** है।

शौच,—

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं वाह्यमाभ्यन्तरन्तथा ।
मृज्जालाभ्यां स्मृतं वाह्यं मनः शुद्धिस्तथान्तरं ॥

योगी याज्ञवल्क्य ।

शरीर और मनकी मलिनता दूर करनेको शौच कहते हैं। परन्तु साबुन, फुलेल तथा एसेन्स इत्यादि विलासिताकी सामग्रियाँ शौचके साधन नहीं हैं। गोमय, मृत्तिका तथा जल इत्यादिके द्वारा ही शरीर एवं दया इत्यादि सद्गुणोंके द्वारा मनकी मलिनताको दूर करना चाहिये।

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसङ्गश्च ।

पातञ्जल, साधन-पाद । ४०

हृदयमें पवित्रता रहनेसे शरीरमें यदि कहीं ज़रा भी अपवित्रता मालूम पड़ेगी तो उससे घृणा होने लगेगी एवं दूसरेके साथ संगति करनेमें भी घृणा होगी। उस समय अवधूत गीताका यह महान् वाक्य मनमें जाग्रत हो उठेगा, कि—

विष्ठादिनरकं घोरं भगं च परिनिर्मितम् ।
किमु पश्यसि रे चित्तं कथं तत्रैव धावसि ॥ ८।१४

अर्थात्—विष्ठा आदि परिपूरित इस भगको (स्त्रीके गुह्य अंगको) नरकका द्वार बनाया है। अरे चित्त! क्या तू यह नहीं देखता जो उसीकी ओर बारंवार दौड़ता है।

सन्तोष,—

यदृच्छालाभतो नित्यं मनः पुंसो भवेदिति ।
या धीस्तामृषयः प्राहुः सन्तोषं सुखलक्षणं ॥

योगी याज्ञवल्क्य ।

प्रतिदिन जो कुछ मिल जाय उसीसे मनको सन्तुष्ट रखनेका नाम सन्तोष है। अर्थात् दुराकांक्षा परित्याग करनेका नाम ही सन्तोष है ।

सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः ।

पातञ्जल, साधन-पाद । ४२

सन्तोषकी सिद्धि होनेपर अनुपम सुख प्राप्त होता है। वह सुख वर्णनातीत है, विषय निरपेक्ष सुख है, अर्थात् वाहरी वस्तुओंसे इस सुखका कोई भी सम्बन्ध नहीं है ।

तपस्या,—

विधिनोक्तेन मार्गेण कृछ्रचान्द्रायणादिभिः ।
शरीरशोषणं प्राहुस्तपस्यां तप उत्तमम् ॥

योगी याज्ञवल्क्य ।

वेदकी विधिके अनुसार कृच्छ्रचान्द्रायण इत्यादि व्रतोपवास द्वारा शरीरको शुष्क करनेका नाम उत्तम तपस्या है। तपस्या न करने पर योगमें सिद्धि लाभ नहीं हो सकती। यथा—

नातपस्विनो योगः सिध्यति ।

तपस्या साधन करनेसे ही अणिमादि ऐश्वर्योंका लाभ होता है। यथा—

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।

पातञ्जल, साधन-पाद, ४३ ।

तपस्याके द्वारा शरीर और इन्द्रियोंकी अशुद्धियाँ नष्ट हो जाती हैं। अर्थात् शरीरके शुद्ध हो जाने पर इच्छानुसार सूक्ष्म तथा स्थूल करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है एवं इन्द्रियाँ शुद्ध हो जाने पर सूक्ष्म दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्वाद ग्रहण, स्पर्शन इत्यादि सूक्ष्म विषयोंके ग्रहण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है।

स्वाध्याय,—

स्वाध्यायः प्रणवश्रीरुद्रपुरुषसूक्तादिमन्त्राणां
जपः मोक्षशास्त्राध्ययनञ्च ।

प्रणव और सूक्तमन्त्रादिके अर्थका चिन्तन करके जप एवं वेद और धर्मशास्त्र इत्यादिके भक्तिपूर्वक अध्ययन करनेको स्वाध्याय कहते हैं।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ।

पातञ्जल, साधन-पाद । ४४

स्वाध्यायके द्वारा इष्ट देवताका दर्शन प्राप्त होता है।

ईश्वर प्रणिधान,—

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ।

पातञ्जल दर्शन ।

भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक ईश्वरमें चित्त समर्पण करके, उसकी पूजा करनेका नाम ईश्वर प्रणिधान है।

समाधिरीश्वरप्रणिधानात्

पातञ्जल, साधन पाद।

ईश्वर प्रणिधानके द्वारा योगके सर्वोच्च फल समाधिकी सिद्धि होती है।

ईश्वर प्रणिधान द्वारा जितनी शीघ्रतासे चित्तकी एकाग्रता होकर शुद्धि हो जाती है, उतनी और किसी प्रकारके कार्य्यसे नहीं हो सकती। क्योंकि उनकी चिन्तासे उनकी ही भास्कर ज्योति हृदयमें आकर सब मलिनताको दूर कर देती है। अब योगका तीसरा अङ्ग—

आसन

कैसे सिद्ध करना होता है, वह मार्ग जानना चाहिये।

स्थिरसुखमासनम्।

पातञ्जल, साधन-पाद। ४३

शरीर न हिले, न डुले, न दुखे और चित्तमें किसी प्रकारका उद्वेग न हो, ऐसी अवस्थामें सुखसे बैठनेको आसन कहते हैं। योगशास्त्रमें अनेक-प्रकारके आसन बताये गये हैं। उनमेंसे कईएक प्रधान आसन और उनका साधन कौशल "साधन-कल्पमें" प्रदर्शित किया गया है।

ततो द्वन्द्वानभिघातः।

साधन-पाद, पातञ्जल। ४८

आसनके अभ्याससे सर्वप्रकारका द्वन्द्व छूट जाता है। अर्थात् शीत, ग्रीष्म, (जाड़ा-गरमी) क्षुधा, तृष्णा, राग, द्वेष प्रभृति किसी प्रकारके द्वन्द्व योग-सिद्धिमें बाधा नहीं डाल सकते। आसनका अभ्यास होनेके बाद योगका श्रेष्ठ और गुरुतर विषय जो चतुर्थ अङ्ग

प्राणायाम

—है, उसका अभ्यास करना उचित है। अब देखना चाहिये कि प्राणायाम किसे कहते हैं—

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥

पातञ्जल, साधन-पाद। ४८

श्वास-प्रश्वासकी स्वाभाविक चालका विच्छेद करके शास्त्रोक्त नियमसे चलानेका नाम **प्राणायाम** है। इसके सिवाय प्राण और अपान वायुके संयोगको भी प्राणायाम कहते हैं। यथा—

प्राणापानसमायोगः प्राणायाम इतीरितः।
प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकैः ॥

योगी याज्ञवल्क्य ६।२

प्राणायाम कहनेसे हम साधारणतः रेचक, पूरक और कुम्भक इन्हीं तीन प्रकारकी क्रियाओंको समझते हैं। बाहरकी वायुका आकर्षण करके भीतर भरनेको **पूरक** तथा जलसे पूर्ण घड़ेकी तरह भीतर ही वायु धारण करनेको **कुम्भक** और उसी धृत वायुको बाहर निकालनेको **रेचक** कहते हैं। पहले हाथके दहिने अँगूठेसे दाहने नथनेको बंद

करते हुए वायुको रोक कर प्रणव (ॐ) अथवा अपने-अपने इष्ट-मन्त्रका सोलह बार जप करते-करते बायें नथनेसे वायु पूर्ण करके (भीतर खींचकर) कनिष्ठिका और अनामिका उँगलीसे बायें नथनेको बंद करके वायुको रोकते हुए ॐ वा मूलमन्त्रका चौंसठ बार जप करते-करते कुम्भक करे; इसके बाद अँगूठा दाहने नथनेसे उठा कर ॐ या मूलमन्त्र बत्तीस बार जप करते-करते दाहिने नथनेसे वायुको निकाल दे। इस प्रकारसे फिर उलटे तौर पर अर्थात् श्वास छोड़नेके बाद उसी दाहिने नथनेसे ही ॐ या मूलमन्त्रका जप करते-करते पूरक एवं दोनों नथनोंको बंद करके कुम्भक करे, इसके बाद बायें नथनेसे रेचन करे। इस प्रकार ठीक पहलेकी तरह फिर नाकको कथित रीतिके अनुसार पूरक, कुम्भक और रेचक करे और बायें हाथकी उँगलियोंके पोरोंसे जपकी संख्या करता रहे।

पहले-पहल पूर्वोक्त संख्यासे प्राणायाम करनेमें कष्ट हो तो, ८।३२।१६ या ४।१६।८ बार जप करते-करते प्राणायाम करे। दूसरे धर्म्मावलम्बिगण वा जिनको मन्त्र जप करनेकी सुविधा नहीं है, उनको एक, दो, तीन आदि संख्यासे ही प्राणायाम करना चाहिए; नहीं तो फल मिलनेकी सम्भावना नहीं रहेगी। क्योंकि ताल ताल पर श्वास-प्रश्वासकी क्रिया सम्पन्न करनी होती है। परन्तु सावधान! ध्यान रहे कि जोरसे रेचक या पूरक न होने पावे। रेचकके समय विशेष सतर्क एवं सावधान रहना चाहिए। इतना धीरे-धीरे श्वास परित्याग करना चाहिये, कि हाथपर रखा हुआ सत्तू भी निःश्वासके वेगसे उड़ न सके। प्राणायामके समय सुखासनसे बैठ कर मेरुदण्ड

(रीढ़), गर्दन, मस्तक सीधा और भौंहोके बीचमें दृष्टि रखना चाहिये। इसे सहित-कुम्भक कहते हैं। योगशास्त्रमें आठ प्रकारके कुम्भककी बात लिखी है। यथा—

सहितः सूर्य्यभेदश्च उज्जायीशीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भिका।
गोरक्ष संहिता। १९५

सहित, सूर्य्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली—यही आठ प्रकारके कुम्भक होते हैं। * इसका विशेष विवरण केवल मुंहसे कहकर क्रिया कौशल न दिखानेसे जनसाधारणका कोई उपकार नहीं हो सकता, इसीलिये रुक जाना पड़ा। विशेषतः तङ्का (रुपया) का अभाव है; अगर तङ्का होता तो किसी प्रकारकी शङ्का नहीं थी, डङ्का बजाकर बहुत कुछ लिख सकता था।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।
पातञ्जल, साधन-पाद। ५२

प्राणायाम सिद्ध होनेपर मोहावरण क्षय होकर दिव्यज्ञानका प्रकाश होता है; प्राणायाम करनेवाला व्यक्ति सर्व-रोगसे मुक्त होता है; किन्तु अनुष्ठानके व्यतिक्रमसे (विगड़ जानेसे) नाना प्रकारके रोगोंकी भी उत्पत्ति हो जाती है। यथा—

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगसमुद्भवः॥

* मत्प्रणीत "ज्ञानीगुरु" ग्रन्थमें ऊपर्युक्त आठों प्रकारके प्राणायामोंकी साधन-पद्धति लिखी गई है।

हिका श्वासश्च कासश्च शिरः कर्णाक्षिवेदना।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतिक्रमात् ॥

सिद्धियोग।

नियम पूर्वक प्राणायाम करने पर साधक सर्व-रोगसे मुक्त होता है ; किन्तु अनियम और वायुका व्यतिक्रम हो जाने पर हिचकी, दमा, खाँसी, आँख, कान और सिरकी नाना प्रकारकी बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं।

प्राणायामका अच्छी प्रकारसे अभ्यास हो जाने पर योगके पाँचवें अंग—

प्रत्याहार

का साधन करना होता है। प्राणायामसे प्रत्याहार और भी कठिन है। यथा,—

स्व स्व विषयसम्प्रयोगाभावे चित्त-
स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

पातञ्जल, साधन-पाद। ५४

प्रत्येक इन्द्रियके अपना अपना ग्राह्य विषय परित्याग करके, अविकृत अवस्थामें चित्तके वशमें रहनेका नाम प्रत्याहार है। इन्द्रियगण स्वभावतः भोग्य विषयके ऊपर दौड़ा करती हैं, उन्हीं विषयोंसे इन्द्रियगणके निवृत्त करनेको प्रत्याहार कहते हैं।

ततः परमवश्यतेन्द्रियाणाम्।

पातञ्जल, साधन-पाद। ५५

प्रत्याहारकी साधनासे इन्द्रियाँ वशमें होती हैं।। प्रत्याहर करने वाले योगी प्रकृतिको चित्तके वशमें लाकर परम-स्थिरता लाभ कर लेते हैं ; इसीसे बाहरकी प्रकृति वशमें आ जाती है।

प्रत्याहारके बाद योगके छठे अंग—

धारणा

का साधन करना होता है। धारणा किसे कहते हैं ?

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।

पातंजल, विभूति पाद । १

चित्तको देशविशेषमें बन्धन करके (किसी खास स्थान पर रोक) रखनेका नाम धारणा है अर्थात् पूर्वोक्त षोड़शाधारमें किम्वा किसी देवदेवीकी प्रतिमूर्त्तिमें चित्तको लगाये रखना धारणा कहलाता है।

दूसरे विषयकी चिन्ताका परित्याग करके जो किसी भी एक विषयमें चित्तको लगाते हुए रोकनेकी कोशिश करने पर धीरे धीरे चित्त एकमुखी हो जाता है ; उसीका नाम धारणा है। धारणाके स्थिर होनेपर क्रमशः वही धारणा—

ध्यान

नामक योगके सातवें अंगमें परिणत हो जाती है। यथा —

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

पातञ्जल, विभूतिपाद । २

धारणा द्वारा धारणीय पदार्थमें चित्तकी जो एकाग्रताका भाव उत्पन्न होता है, उसका नाम ध्यान है। चित्त द्वारा आत्माके स्वरूपकी चिन्ता करनेको ध्यान कहते हैं। सगुण और निर्गुण भेदसे ध्यान दो प्रकारका होता है।

परब्रह्म किम्वा सहस्रारमें स्थित परमात्माके ध्यान करनेका नाम निर्गुण ध्यान है।

सूर्य्य, गणपति, विष्णु, शिव, आद्या-प्रकृति किम्वा षट्चक्रोंमें स्थित भिन्न-भिन्न देवताओंका ध्यान करनेका नाम सगुण-ध्यान है।

सगुण और निगुण ध्यानके सिवा अनेक लोग ज्योतिःका ध्यान भी करते हैं। ध्यानकी पहुंची हुई अवस्था ही

समाधि

है। ध्यानके गंभीर हो जानेसे अपना और ध्येयवस्तुका भेद-ज्ञान नहीं रहता। उस समय चित्त ध्येयवस्तुमें ही लय हो जाता है; अथवा यों कहना चाहिये कि चित्त उसीमें लीन हो जाता है। इस लय अवस्थाको ही समाधि कहते हैं।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

पातञ्जल, विभूतिपाद। ३

केवल वही पदार्थ (स्वरूप आत्मा) विद्यमान है, यह आभास (ज्ञान) मात्र रहेगा; दूसरा कुछ भी ज्ञान नहीं रहेगा। चित्तकी

ध्येय वस्तुमें ऐसी जो तन्मयता (एक हो जाना) है, उसीका नाम **समाधि** है। जीवात्मा और परमात्माकी समतावस्थाको भी (एक-जैसी अवस्था) समाधि कहते हैं। यथा—

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः।

दत्तात्रेय संहिता।

वेदान्तके मतसे समाधिके दो प्रकार हैं, यथा—सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनों पदार्थोंका भिन्न-भिन्न ज्ञान होते हुए भी अद्वितीय ब्रह्म वस्तुमें अखण्डाकार चित्तवृत्तिके अवस्थानका नाम—**सविकल्प समाधि** है। पातञ्जल दर्शनमें इसीको **सम्प्रज्ञात** समाधिके नामसे बताया गया है।

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनों पदार्थोंका भिन्न-भिन्न ज्ञान न रह कर अद्वितीय ब्रह्मवस्तुमें अखण्डाकार चित्तवृत्तिके अवस्थानका नाम **निर्विकल्प समाधि** है। पातञ्जलके मतसे यह ही **असम्प्रज्ञात** समाधि है।

यही वक्ष्यमाण (आगे कही जानेवाली) अष्टाङ्ग योगकी प्रणाली सर्वोत्कृष्ट है। धीरे धीरे इस अष्टाङ्ग योगकी साधनामें सिद्धि लाभ कर सकनेसे मर्त्यजगत्में अमरत्व प्राप्त हो जाता है। अधिक क्या कहूं, किसी प्रकारकी क्रियाका अनुष्ठान न करके भी इन यम-नियमका पालन करनेसे ही प्रकृत मनुष्यत्वका ज्ञान उत्पन्न होता है। अष्टाङ्ग साधन कर लेने पर और क्या चाहिये ?—मनुष्य जन्म धारण करना

ही सार्थक हो जाता है। परन्तु यह जैसा सबसे उत्कृष्ट है, वैसा ही कठिन और गुरुतर व्यापार भी है। सर्वसाधारणकी शक्तिसे बाहर का काम है। इसीलिये सिद्ध योगीगणने इस मूल अष्टाङ्ग योगमें न्यूनाधिकता करके सहज और सुख-साध्य योगका कौशल-निर्माण किया है। मैंने भी इसी कारणसे पहले बताये हुए अष्टाङ्ग योगका विशेष विवरण विस्तृत भावसे न बतला कर थोड़े ही में सुना दिया है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इन तीनों देवताओंने भी योग-साधन का अनुष्ठान किया था। इनमें परमयोगी सदाशिवके पञ्चम आम्नाय पर दश प्रकारकी योगकी विधियाँ लिखी मिलती हैं। जिनमें प्रधानतः

चार प्रकारके योग

प्रचलित हैं। यथा—

मन्त्रयोगोहठश्चैव लययोगस्तृतीयकम्।
चतुर्थो राजयोगः स्यात् स द्विधाभाव वर्जितः॥

शिवसंहिता, ५।१७

मन्त्रयोग, हठयोग लययोग और राजयोग—इन्हीं चार प्रकारके योगकी व्याख्या योगशास्त्रमें लिखी हुई है। किन्तु आजकल

मन्त्र योग

की साधना करके सिद्धिलाभ करना एक प्रकारसे असम्भव बात है।

मन्त्रजपान्मनोलयो मन्त्रयोगः ।

मन्त्र जप करते करते जो मनका लय हो जाता है, उसे **मन्त्रयोग** कहते हैं। मन्त्रजप-रहस्य और जप-समर्पणके अतिरिक्त मन्त्रजप सिद्ध नहीं होता है। विशेषतः उपयुक्त उपदेष्टाका भी अभाव है। गुरु या उपदेशकका अभाव न होने पर भी, अनेक जन्म तक चेष्टा न करते रहनेसे मन्त्रयोगकी सिद्धि नहीं हो सकती। इसीसे सब प्रकारकी साधनाके बीचमें मन्त्रयोग अधम बताया गया है। यथा—

मन्त्रयोगश्च यः प्रोक्तो योगानामधमः स्मृतः
अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः ॥

दत्तात्रेय-संहिता ।

योग मन्त्रयोग सबसे अधम है; अधम अधिकारी और अल्प-बुद्धिवाला व्यक्ति ही मन्त्रयोगकी साधना करता है। दूसरा

हठयोग

साधन भी आजकल एक प्रकारसे साधनाके बाहर है। हठयोगके लक्षणमें कहा है—

हकारः कीर्त्तितः सूर्य्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्य्याचन्द्रमसोर्योगाद्धठयोगी निगद्यते ॥

सिद्ध सिद्धान्तपद्धति ।

"ह" शब्दसे सूर्य्य एवं "ठ" शब्दसे चन्द्र समझा जाता है। हठ-शब्दमें चन्द्र-सूर्य्यको एक जगह मिलाना है। अपान वायुका नाम

चन्द्र एवं प्राण वायुका नाम सूर्य्य है। अतएव प्राण और अपान वायु को एकमें मिलानेका नाम हठयोग है। हठ योगादि साधनकी उपयुक्त अवस्था और शरीर आज कलके जमानेमें बहुत कम हैं। और

राजयोग

द्वैतभावका त्याग करने पर भी संसारी लोगोंके लिये कष्ट साध्य है, इसमें सन्देह नहीं। विशेपतः राजयोगकी क्रियादि ठीक ठीक न समझ लेने पर केवल पुस्तक पढ़ कर उसको हृदयंगम कर लेना एक प्रकारसे असम्भव बात है। इसीलिये स्वल्पजीवी (कम जीनेवाले) निरन्न कलिकालके मनुष्योंके लिये सहज और सुख-साध्य

लययोग

बतलाया गया है। दूसरे सब योगोंको छोड़कर केवलमात्र लययोगका अनुष्ठान करके कितनों-हीने सहजमें और शीघ्र सिद्धिलाभ कर लिया है तथा कर रहे हैं। मैंने भी उसी सद्यः प्रत्यक्ष फलप्रद लययोगका सर्व-साधारणमें प्रचार करनेकी इच्छासे इस ग्रन्थका आरम्भ किया है।

लययोग अनन्त प्रकारका है। बाहरी और भीतरीके भेदसे जितनी प्रकारकी चीजोंका होना सम्भव हो सकता है, उन सबमें ही लययोगका साधन हो सकता है। अर्थात् चित्तको किसी भी एक

चीजमें निविष्ट करके (लगाकर) उसमें एकतान हो जाने (डूबजाने) से ही लययोग सिद्ध होता है।

सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि वसन्ति लोके।

योगतारावली।

जगत्‌में सदाशिवका बनाया हुआ एक लाख पचीस हजार प्रकारका लययोग विद्यमान है। किन्तु साधारणतः योगिगण चार प्रकारके लययोगका अभ्यास करते हैं। वह यह है—

शाम्भव्या चैव भ्रामर्य्या खेचर्य्या योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लयसिद्धिश्चतुर्विधा॥

घेरण्ड संहिता॥

शाम्भवी मुद्रासे ध्यान लगाना, खेचरी मुद्रासे रसास्वादन करना, भ्रामरी-कुम्भकसे नादको सुनना और योनि-मुद्रासे आनन्द भोग करना—इन चार प्रकारके उपायसे ही लययोगकी सिद्धि होती है।

इन चार प्रकारके लय योगका और भी सहज कौशल सिद्ध योगिगण द्वारा प्रकट किया गया है। उन्होंने लययोगके बीचमें नादानुसन्धान, आत्मज्योतिः-दर्शन और कुण्डलिनी उत्थापन—इन्हीं तीन प्रकारकी प्रक्रियाओंको श्रेष्ठ और सुख साध्य बतलाया है। इनमें कुण्डलिनी उत्थापन कुछ कठिन है। क्रिया विशेषका अवलम्बन करके मूलाधारको भिकोड़ कर जागती हुई कुण्डलिनी शक्तिको उत्थापन करना होता है। तालावमें जोंक जैसे एक तृणको छोड़ करके दूसरे तृणको पकड़ती है, वैसे ही कुण्डलिनीको मूलाधारसे

धीरे धीरे क्रमानुसार सारे चक्रमें उठाकर अन्तमें सहस्रारमें ले जाकर परमशिवके साथ संयोग कराना होता है। किन्तु मूलाधारको संकुचित कैसे किया जाता है एवं अत्यन्त कठिन क्रिया जो ग्रन्थित्रय भेद करना है, वह कैसे किया जाता है, यह सामने करके न दिखा देने तक लिखनेकी ऐसी कोई भाषा नहीं, जिससे लोग समझ सकें। सुतरां अकारण कुण्डलिनीके उत्थापनकी क्रियाको लिखकर पुस्तकका कलेवर बढ़ाना मैं ठीक नहीं समझता हूँ। यदि किसीको इसका क्रम जाननेकी इच्छा हो तो, मेरे पास आनेसे संकेत बता सकता हूँ।* किन्तु अनुपयुक्त व्यक्तिको मैं वह रहस्य कभी नहीं बताऊँगा।

लययोगमें नादानुसन्धान और आत्मज्योतिः दर्शनका काम बहुत सीधा और आरामसे होनेवाला है। इन दोनों कामोंका साधन-कौशल प्रकाश करके पाठकगणका उपकार करना ही इस पुस्तकका उद्देश्य है ।

साधुसंन्यासी अथवा गृहस्थोंमें पश्चादुक्त संकेत थोड़ेसे लोग भी जानते हैं या नहीं इसमें सन्देह है। नादानुसन्धान और आत्म-ज्योतिः-दर्शन, इन दो कामोंमें एक-एकका दो-तीन प्रकारका कौशल लिखता हूँ। जो जिसे अच्छा, सीधा और अपने करने योग्य जान पड़े, वह उसीका अनुष्ठान करें। जिससे मैंने फल प्राप्त किया है, वैसा सद्यः प्रत्यक्ष फल देनेवाला साधनका संकेत "साधन कल्प"

---

* मत् प्रणीत "ज्ञानीगुरु" ग्रन्थमें कुण्डलिनीके उत्थापनका साधनोपाय वर्णन किया गया है ।

में वर्णन किया है। इसकी किसी भी क्रियाके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होनेपर क्रमशः मनमें अपार आनन्द और तृप्ति लाभ होगी एवं आत्माकी भी मुक्ति होगी।

वर्त्तमान समयमें हमारे देशके लोगोंकी जैसी अवस्था है, उसमें पूर्वोक्त क्रियाका अभ्यास भी अनेकके लिये कठिन हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं; इसीलिये उनके निमित्त साधन-कल्पके पहले ही लय-संकेत लिखे हैं। जो कई एक लयसंकेत लिखे हैं, उनमेंसे किसी भी एक प्रकारके संकेतका अनुष्ठान करने पर चित्तका लय हो जाता है। साधकगणमें जिसे जैसी सुविधा हो, वह वैसी ही क्रिया करके मनोलय कर लेवे।

जपाच्छतगुणं ध्यानं ध्यानाच्छतगुणं लयः।

जपसे ध्यानमें सौगुणा अधिक फल होता है। ध्यानकी अपेक्षा सौगुणा अधिक फल लाभ होता है—लययोगसे। अतएव जपादिकी अपेक्षा सबको किसी भी प्रकारके लययोगका साधन करना चाहिये।

योगाभ्याससे आत्माकी मुक्तिके सिवा अनेक आश्चर्य्य-जनक और अमानुषी क्षमता (शक्ति) प्राप्त हो जाती है। किन्तु विभूति लाभ करना योग-साधनका प्रकृत उद्देश्य नहीं है; इसीलिये मैंने भी इस ग्रन्थमें उस विषयकी आलोचना नहीं की है। इच्छाके बिना भी विभूति आपसे आप फूट पड़ती है, किन्तु उसकी ओर लक्ष्य न करके मुक्तिकी राहमे आगे बढ़ना चाहिये। विभूति पर मुग्ध होनेसे मुक्तिकी आशा बहुत दूरकी बात हो जाती है।

आज युरोपखण्डमें इसी योग-साधना पर विशेष आन्दोलन और आलोचना चल रही है। पाश्चात्य नरनारिगण आर्य्य-शास्त्रोक्त योगसाधनकी शिक्षा लेकर थियासफिष्ट बन गये हैं। मेसमेरिज़म्, हिपनोटिज़म्, क्लेयारवेन्स, सायिकोपेथी और मेण्टल-टेलिग्राफ़ी प्रभृति विद्याओंका प्रचार करके वे जगतके नरनारियोंको मुग्ध और अचम्भेमें डाल रहे हैं। हम अपने घरकी पोथी धूपमें सुखाकर बस्तेमें बांध देते और घरके चूहों, आरशुलाओं (छिपकली) और कीड़ोंके आहारकी सुव्यवस्था करते हैं एवं फिर दूसरोंके सामने "हमारे अनेक ग्रंथ हैं" कहकर गौरव करते हैं। किन्तु क्या उनमें कुछ सार भी है? यदि कुछ है, तो उसे न ढूंढकर या साधन करके क्यों नहीं देखते? यह दोष नितान्त हमारा ही नहीं है। शास्त्रमें योग-योगाङ्गके जो सब विषय और नियम लिखे हैं, वे अत्यन्त संक्षिप्त और जटिल (पेचीदा) हैं। कोई जानने पर भी, उसे प्रकाशित नहीं करता। वह यही कहता है, कि यह अति—

गुह्य विषय

है। किन्तु योग जटिल वा गुह्य-विषय नहीं है। तारसे संवाद भेजना, आकाशके चन्द्र वा सूर्य्यका ग्रहण देखना, फोनोग्राफ़से गाना सुनना जैसे बाहरी विज्ञानका काम है, योग भी वैसे ही अध्यात्म विज्ञानका काम है। परन्तु वे जान बूझकर भी प्रकाशित क्यों नहीं करते? इसीलिये कि शास्त्रमें मना किया गया है, यथा :—

वेदान्तशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
इयन्तु शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव ॥

वेद और पुराणादि सब शास्त्र बाजारमें बैठी हुई साधारण वेश्या जैसे हैं ; किन्तु शिवोक्त शाम्भवी विद्या घरकी कुलवती वधूके समान है। अतएव यत्नके साथ इसे छिपा कर रखना चाहिये—ये सर्व-साधारणके सामने प्रकाशित करनेकी चीजें नहीं हैं ।

न देयं परशिष्येभ्योऽप्यभक्तेभ्यो विशेषतः ।

शिववाक्यम् ।

परशिष्य, विशेषतः अभक्त लोगोंके सामने यह शास्त्र कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये । और भी लिखा है, कि—

इदं योगरहस्यञ्च न वाच्यं मूर्खसन्निधौ ।

योगस्वरोदय ।

योग रहस्य मूर्खसे कभी न कहना चाहिये। निन्दक, वंचक, धूर्त्त, खल, दुराचारी और तामसिक व्यक्तियोंके सामने भी योग रहस्य प्रकाशित नहीं करना चाहिये—

अभक्ते वञ्चके धूर्त्ते पाषण्डे नास्तिके नरे ।
मनसापि न वक्तव्यं गुरुगुह्यं कदाचन ॥

भक्तिहीन, वञ्चक, धूर्त्त, पाषण्डी और नास्तिक—इन सब हेतुवादियोंसे गुरुका कहा हुआ गुह्य-विषय कभी प्रकट नहीं करना चाहिये। इन्हीं सब कारणोंसे शास्त्रज्ञ योगिगण सर्व-साधारणके सम्मुख आत्मतत्त्व-विद्या प्रकाशित न करके "गुह्य विषय" कहकर

छिपा देते हैं। किसीको भी सिखानेके पहले सर्वसाधारणके सामने प्रकाशित न करनेका विशेषरूपसे आदेश भी कर देते हैं। इस प्रकार निषेध होनेके कारण ही मैं समस्त विषय प्रकाशित नहीं कर सका। जो बातें साधारणमें प्रकाशित करनेके योग्य हैं एवं सभी व्यक्ति कर सकते हैं, वेही इसमें सन्निवेशित की गई हैं। इसके अनुसार काम करने पर प्रत्यक्ष फल मिलेगा। अब सुधी साधकगण !

क्षन्तव्यो मेऽपराधः।

ॐ शान्तिः।

द्वितीय अंश

साधन-कल्प

योगीगुरु
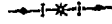
द्वितीय-अंश ।

साधन-कल्प ।

साधकोंके प्रति उपदेश ।

दुर्गादेवि जगन्मात जगदानन्ददायिनि ।
महिषासुरसंहन्त्रि प्रणमामि निरन्तरम् ॥

मदन-मद-दमन-मनोमोहिनी, महिषासुरमर्दिनी भवानीके मृत्युपति-लाञ्छित और मरामर-वाञ्छित पदपङ्कजमें प्रणाम करते हुवे साधन-कल्पका लिखना शुरू करता हूँ ।

योगाभ्यासके समय साधकगणको कितने ही नियम संयमके अधीन रहना पड़ता है । साधारण लोगोंकी भाँति चलनेसे साधन नहीं बनता । योग-कल्पमें अष्टाङ्ग योग बताते समय यम तथा नियम पर भी थोड़ा सा वर्णन किया गया है । लेकिन गृह-संसारमें रहनेसे उस नियम का पालन नहीं किया जा सकता । इसी प्रकार

नियम पालन कर सकने पर भी कभी-कभी गुणी ग्रामवासियोंके कौशलसे हारकर सारे विषय-सम्पत्ति व विद्याबुद्धिको भूलते हुए पेड़के नीचे आश्रय लेना पड़ता है। सुतरां घर-संसार करना हो तो शिवत्वको छोड़कर बाहरमें सोलह आना जीवत्व कायम न रखने पर साधन नहीं बनता। ऐसी अवस्थामें क्या उपाय हो सकता है? यही कि, पूर्वज्ञानी सर्पकी तरह "फुसकारते रहो, किन्तु किसीको काटो मत।"

किसी एक राहकी बगलमें एक कालाकराल-चक्रधारी भयानक विषाक्त साँप रहता था। लोगोंको राह चलते देख कर तत्काल ही वह फुसकारके साथ तर्जन-गर्जन करते हुए जोरसे दौड़कर काट खाता और जिसे काटता वह उसी जगह गिरकर मर जाता था। धीरे-धीरे साँपकी यह बात सब जगह फैल गई। फिर तो कोई भी भयके मारे उस राहसे न चलने लगा। इस तरह कुछ ही दिनोंमें उस राहसे लोगोंका आना जाना एकदम बन्द हो गया।

एक दिन कोई एक महापुरुष उसी राहसे होकर जाने लगे; अतः साँपकी बात बताकर अनेक लोगोंने उन्हें उस रास्ते जानेसे रोका; लेकिन वे किसीकी बात न सुन चलते बने। साँपके पास पहुँचते ही वह फुसकारते हुए काटनेको दौड़ा। यह देख वे महापुरुष वहीं खड़े हो गये और साँपके पास आते ही उन्होंने एक मुट्ठी धूल उसकी देहपर डाल दी। तत्काल ही वह शिर झुकाकर शान्त भावसे जहांका तहां ठहर गया। इसके बाद महापुरुषने जलद-गम्भीर स्वरमें उससे कहां,—"बेटा! पूर्वजन्मकी हिंसाके कारण

तो तूने यह सर्पयोनि पायी है और फिर भी तू हिंसा छोड़ नहीं सका ?"

इस बातको सुनते ही साँपके मनमें दिव्य ज्ञानका उदय हुआ और उसने नम्रताके साथ शिर झुकाकर कहा,—"प्रभो ! मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातका तो स्मरण हो आया, किन्तु अब मेरे उद्धारका उपाय क्या है ?"

"सर्वतोभावसे हिंसाका परित्याग करो" इतना कहकर वे महापुरुष चल दिये। उस दिनसे साँपने एकदम शान्तभाव धारण कर लिया। दो-दो एक-एक करके सबने ही यह बात सुनी और पहले-पहल डरते-डरते सावधानीके साथ लोग फिर उधरसे आने जाने लगे। यथार्थमें ही अब वह साँप किसीकी हिंसा नहीं करता और राहमें ही चुपचाप पड़ा रहता था। बगलसे होकर किसीके आने जाने पर भी वह शिरतक उठाकर न देखता था। उसकी यह दशा देखकर सबका साहस बढ़ गया। फिर तो कोई उसे मारता तो कोई डण्डेसे उठाकर दूर फैंक देता। बालक-बालिकाएँ भी पूंछ पकड़कर उसे खींचते हुए घूमते फिरते थे। किन्तु फिर भी साँप किसीको काटना तो दूरकी बात, उस पर झपटता तक नहीं था। लेकिन लोगोंके इस तरहके अत्याचारसे कुछ ही दिनोंमें वह अत्यन्त दुर्बल और अधमरा हो गया।

कुछ दिन बाद पूर्वोक्त महापुरुष फिर उसी मार्गसे लौटे और साँपको मुर्दे जैसा पड़ा देखकर बोले,—"तेरी ऐसी अवस्था क्यों हो गई ?"

साँपने जवाब दिया,—"आपके उपदेशसे हिंसा छोड़ देनेके कारण ही यह अवस्था हुई है।"

तब महापुरुषने हँस कर कहा,—"मैंने तुझे हिंसा छोड़नेको कहा था, लेकिन फुसकारनेसे तो नहीं रोका था। अगर अब कोई अत्याचार करने आवे तो साँपके स्वभावानुसार तुझे फुसकारना अवश्य चाहिये ; लेकिन किसीको काट न खाना चाहिये।"

यह उपदेश देकर जैसे ही महापुरुष आगे बढ़े, कि फिर उसी दिनसे लोगोंको नज़दीक देखने पर साँपने पहलेका स्वभाव दिखलाना आरम्भ कर दिया। अर्थात् वह फुसकारता तो था ; लेकिन किसी को काटता न था। इस प्रकार फिरसे उसमें पहले जैसा तेज देखकर कोई भी उसके पास नहीं पहुँच पाता और वह अपनी रक्षा करने में समर्थ हो गया।

मेरी बात भी ठीक इसी कहानी जैसी ही है, कि बाहरसे सोलह आने जीवत्व (जीवका स्वभाव) बनाये रखो, लेकिन मनमें दृढ़ निश्चय कर लो, कि किसीका अनिष्ट न करेंगे। क्योंकि मन पवित्र रहने पर बाहरके कामोंसे क्या बनता बिगड़ता है ?

मनः करोति पापानि मनो लिप्येत पातकैः।
मनश्च तन्मना भूत्वा न पुण्यै र्न च पातकैः॥

ज्ञान संकलिनी तन्त्र। ४५

अतएव मनको दृढ़ रखकर सब काम करना चाहिये। किन्तु यह स्मरण रहे, कि जैसे कोई मुझपर अत्याचार—उत्-पीड़न करे या कोई मेरी किसी वस्तुको चुरा ले, या कोई बुरे अभिप्रायसे मेरे

घरमें प्रवेश करे तो, इससे जैसा मुझे कष्ट होता है, ठीक वैसे ही किसीके प्रति मेरे द्वारा भी वे सब काम होनेपर वह व्यक्ति भी मेरी ही तरह कष्ट पाता है। अतः अपने हृदयकी वेदना (दर्द) का अनुभव करके दूसरेके साथ व्यवहार करना चाहिये। जब सड़े हुये पत्ते और वन्यजात कड़ुए कसैले कन्द-मूल-फल खाकर भी मानव जीते रह सकते हैं, तब दूसरेके प्राणोंको कष्ट पहुँचाकर एवं दुर्बलके ऊपर अत्याचार करके पेट भरनेमें कौनसा बड़प्पन है ? प्रतिदिन समय पर जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये। धनीके साथ अपनी अवस्थाका मिलान कर क्यों कष्ट उठाते हो ? दुराकांक्षा-परायण (बुरी इच्छाओंमें फँसा हुआ) व्यक्ति कभी भी सुखी नहीं हो सकता। निर्धन व्यक्ति अनाहारी (भूखों मरने वाले) की बातका विचार करके दिनान्तमें शाक-पत्रादि खाकर सुखी रहे, निराश्रय लोगोको देखकर टूटे-फूटे झोंपड़ेमें बिछी हुई फटेला चटाई पर शान्तिलाभ करे, जाड़ेमें जूता पहननेके लिये असमर्थ होनेपर अपनेको न धिक्कारते हुए लंगड़े मनुष्यकी बात स्मरण कर अपने सबल पैरोंकी ओर दृष्टि-पात करते हुए अपनेको महान् भाग्यशाली समझना चाहिये। पुत्रहीन व्यक्ति असत् पुत्रके पिताकी अवस्थाका विचार कर खुश रहे। क्योंकि मंगलमय परमेश्वर सभी कुछ जीवके मंगलके लिये ही किया करते हैं। पुत्र मर जानेसे शोकमे न घबड़ाकर, घर जल जानेसे ज्ञानशून्य न होकर तथा धन-दौलत नष्ट हो जानेसे कायरता न दिखाकर यह सोचना चाहिये, कि वह पुत्र जीता तो शायद उसके असद् व्यवहारसे जीवन भरके लिये

हृदय पर आघात सहन करना पड़ता ; घर रहता तो शायद उसमे रहनेवाले साँपके काटनेसे जीवन त्याग करना पड़ता ; धन-दौलतके रहनेसे शायद कोई उसके लोभमें मुझे मार ही डालता ; इसलिये जब जिस अवस्थामें रहना पड़े, उसीमें परमेश्वरको धन्यवाद देकर सन्तुष्ट-चित्तसे कालक्षेप करना चाहिये। भला, यह संसारका वैभव कितने दिनके लिये है ? जब शैशवकी विमल ज्योत्स्ना देखते देखते छिप जाती है, यौवनका बल-विक्रम (पुरुषार्थ और शक्ति) ज्वारके जलकी तरह उतर जाता है, प्रौढ़ावस्था (बुढ़ापा) तीन दिनका खेल—संसार करते न करते अन्त हो जाता है ; "अबतक उचित रूपसे जीवन नहीं बीताया" या "अमुकके मनको कष्ट दिया" अथवा "अमुकके साथ ऐसा अनुचित्त व्यवहार करना अच्छा नहीं हुआ," इत्यादि पश्चात्ताप करते करते जब वार्द्धक्य (बुढ़ापा) चला जाता है, तब थोड़ेसे समयके लिये आसक्ति क्यों ? दूसरे पर बल-प्रकाश करनेकी क्या आवश्यकता ? दुर्बल पर अत्याचार क्यों किया जाय ? पर-निन्दा करनेमें इतनी स्फूर्त्ति क्यों ? पार्थिव पदार्थों (पृथ्वीकी चीजों) के लिये इतना पछतावा क्यों ? किन्तु मैं क्या कह रहा था, भूल गया !

हाँ, तो सिवाय मनके बाहरी काम देख कर कोई भी सदसद् विवेक नहीं कर सकता। कोई व्यंक्ति बड़ी ही धूम-धामसे दोल-यात्रा, रामलीला या दुर्गादेवीकी पूजा कराता है और कङ्गाल—गरीबोंको भोजन भी देता है ; किन्तु यदि उसके हृदयमें इसके लिये अहंकार यानी अहंता भी उत्पन्न हो जाय तो सारा प्रयत्न मिट्टीमें

मिलकर नरकका दरवाजा उसे खुला मिलेगा। एक ही काममें मनकी विभिन्न गतिसे भिन्न-भिन्न फल प्राप्त होते हैं। सभी प्रकारके व्यक्ति ही देहको धोते हैं; लेकिन असत्-चित्त तथा मैलसे पूर्ण नर-नारिगण देह धोते समय अपनी देहके प्रति दृष्टिपात करते हुए इस बातको अधिक सोचते हैं, कि "मेरा सुनहरा रङ्ग देख कर कितने ही नर-नारिगण मुग्ध हो जायँगे, कितने ही मुझसे मिलनेके लिये प्रार्थना करेंगे।" इसी विचारसे वे विशेष कोशिशके साथ देहका यत्न करते हैं। इसके फलस्वरूप निश्चय ही उनके लिये एकमात्र नरकका द्वार खुला मिल सकेगा, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु सत्‌ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति उसी देहको भगवान्‌का भोगमन्दिर समझकर साफ़ रखते हुवे हरि-मन्दिरके मार्ज्जनका फल प्राप्त करते हैं। साथ ही विवेक-शील व्यक्तियोंको अपनी देह धोते-धोते उसके प्रति एक प्रकारकी घृणा पैदा हो जाती है। जब यह नवद्वार विशिष्ट देह, जो रक्त-क्लेद-मलमूत्र—फेनादिसे दुर्गन्धित हो जाती है और इसे यदि नियमितरूप से साफ़ न रखा जाय तो बहुत मैली हो जाती है, इतना ही नहीं, वल्कि इससे वहुत वदवू तक आने लगती है, तब इसके प्रति इतनी आसक्ति क्यों ? इस पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करनेसे फिर रमणी विषयक कवि-कल्पना-सम्भूत-स्वर्णकान्ति, आकर्ण-विश्रान्त हरिणी-सदृश नयन, रक्ताभ गण्ड, तरुण-अरुण भाँति अधरोष्ठ और क्षीण कटिकी ओर चित्त कभी आकर्षित न होगा। अथवा व्यवहारमें धर्म्म और अधर्म्मके विषयमें कोई खास नियम निर्दिष्ट नहीं है। एक अवस्थामें जो काम पापजनक है, अवस्थान्तरमें वही

काम पुण्यमय समझा जा सकता है। किसी पुराणमें लिखा है, कि—"बलाक नामक व्याधने प्राणि-हिंसा करके भी स्वर्गलाभ किया था और कौशिक नामक ब्राह्मणको सच बात कहने पर भी नरकमें जाना पड़ा था।" सुतरां बाहरी कामोंसे कुछ भी भला-बुरा नहीं हो सकता और मनके संलिप्त न होनेसे उसका फलाफल भी भोगना नहीं पड़ता। क्योंकि मनुष्यका मन ही उसके लिए बन्धनका कारण होता है। यथाः—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तौ निर्विषयं स्मृतम्॥
अन्यमनस्क गीता। ५५

मन ही मानवके बन्धन और मोक्षका कारण है, क्योंकि विषयमें आसक्त होने पर ही मन बन्धनका कारण होता है एवं विषयोंसे वैराग्य पैदा होने पर ही मुक्ति हो जाती है; शङ्करावतार श्री शङ्कराचार्य्यने कहा है, किः—

बन्धो हि को ? यो विषयानुरागः।
को वा विमुक्ति ? विषये विरक्तिः॥

मणिरत्नमाला।

बन्धन किसे कहते हैं ?—विषयके भोगमें मनका जो अनुराग बढ़ता है, वही बन्धन कहाता है। तब फिर मुक्ति किसे कहते हैं ?—विषय वासनासे रहित होना या विषयमें विरक्ति हो जानेका नाम ही मुक्ति है। सुतरां आसक्तिसे अलग रह सकने पर किसी काममें भी कोई दोष नहीं है। कामकी आसक्ति ही दोष है,—

न मद्यभक्षणे दोषो न मांसे न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला:॥

मनुसंहिता।

मद्य-पान, मांस-भक्षण या मैथुनमें कोई दोष नहीं है, ये सब जीवोंकी प्रवृत्तियाँ है, इनकी निवृत्ति ही महाफल-दायक है। अर्थात् जिस काममे आसक्ति नहीं है, वही सबसे श्रेष्ठ है। सत् पथमें रहकर कितने ही रुपये कमा लो, लेकिन रुपयोंके लिये व्याकुलता न दिखलाओ ; क्योंकि व्याकुलता (बेचैनी-हायतोबा) ही आसक्ति है। इसलिये निरन्तर यह स्मरण रखना चाहिये, कि सब कुछ भगवान्‌का है ; हम तो केवल अनिर्दिष्ट समयके लिए उसके चौकीदार बने हुए हैं। इसीलिये पुत्र, कलत्र (स्त्री), भाई बन्धु, आत्मीय-स्वजन, रुपये-पैसे, घर-द्वार, विषय-सम्पत्ति—आदि सब पर "मेरा है" की छाप ज़ोरसे न मारना चाहिये। हमारे शिरपर कराल-मृत्यु नाच रही है। कर्म्मसूत्रके फलसे ही यह संसार हैं ; यह विषय-सम्पत्ति पड़ी रहेगी—अनादि अनन्त कालसे ही यह पड़ी हुई है—हम जैसे कितने ही लोग—हमारे ही पिता, पितामह, प्रपितामह प्रभृतिने इस स्थान पर—इस खेती-बाड़ीकी ओर—इस तालाब या बागके प्रति दो दिनके लिये दानव जैसी दृष्टि डालकर अपनेको विषय-वासनासे बांधनेकी बहुतेरी कोशिश की थी; लेकिन कालमें या कालकी लहरोंमें वे न जाने कहाँ बह गये ; जिसका अक्षय भंडार वस्तुओंसे भरा हुआ है, उनके ही अक्षय भंडारमें पड़े रहेंगे, वह तो कुछ भी साथमें न ले जा सकेगा। क्योंकि हम तो उनके केवल मात्र नौकर

हैं, इस संसारसे मौतका परवाना आते ही सब कुछ यहीं छोड़-छाड़ कर चल देना पड़ेगा। 'नौकर जैसे मालिकके घर पर काम करके मालिकका रुपया-पैसा, धन-दौलत आदि सब चीज ठीक रखनेका समधिक यत्न करता है, लेकिन वह इस बातको अवश्य ही जानता और समझता है, कि "मैं नौकरी करनेको आया हूँ, यह सब धन-दौलत तो मेरे नहीं है, मालिकके जवाब देते ही मुझे यहाँसे चल देना पड़ेगा।" ठीक इसी तरह हमलोगोंको भी सदैव स्मरण रखना चाहिये। नहीं तो, धन-दौलतमें आसक्ति हो जाने पर इस पृथ्वीके राज्यमें प्रेतयोनि धारण करके कितने ही दीर्घकाल तक घूम-घूम कर चक्कर खाना होगा।

स्त्री-पुत्र, कन्यादिके प्रति जो माया है, उसमें भी इसी ज्ञानको आगे रखकर अपना सम्बन्ध रखना चाहिये, कि भगवान्‌ने मुझ पर उनके देखने भालने और खिलाने-पिलानेका बोझ लाद दिया है, इसीलिये मैं प्रेमपूर्वक उन लोगोंका लालन-पालन कर रहा हूँ। किन्तु उनके द्वारा आगे मुझे सुख मिलेगा, ऐसी आशा मनमें उठते ही मुझे आसक्तिकी आगमें जलना पड़ेगा। इसी प्रकार पुत्र वा कन्याकी मृत्युसे शोकमें न घबड़ा कर, यह सोचते हुए आनन्द करना चाहिये, कि "भगवान्‌के भारी भारसे छुटकारा मिल रहा है।" अपने सुखके लिये जो कुछ किया जाता है, वह बन्धनका कारण होता है, और ईश्वरके प्रेममें मतवाला होकर उसके प्रसन्न करनेके लिये जो कुछ किया जाता है, उससे पद्मपत्र परके जलकी भाँति आसक्ति वा पापमें लिप्त नहीं होना पड़ता। भक्तियोगके श्रेष्ठाधिकारी कविराज गोस्वामीजीने लिखा है, कि:—

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥
कामेर तात्पर्य्य निज सम्भोग केवल।
कृष्णसुख तात्पर्य्य मात्र प्रेमत प्रबल॥

चैतन्य चरितामृत।

इसका तात्पर्य्य यह है, कि "अपनी इन्द्रियोंकी परितृप्तिके लिये जो काम किया जाता है, उसे काम कहते हैं एवं कृष्ण यानी ईश्वरेन्द्रियकी परितृप्तिके लिये जो कुछ किया जाता है, उसे प्रेम कहते हैं।" सब काम अपने सम्भोगमें न लाकर कृष्ण-सुख-तात्पर्य्यमें उसको प्रयोग करनेसे उसके लिये फिर फल भोग न करना पड़ेगा। किसीको दूसरेका उपकार करनेसे आनन्द होता है, इसलिये वह परोपकारी कहलाता है; किसीको गरीबोंको भोजन करानेसे सुख होता है, इसलिये वह दाता बन जाता है; इसी प्रकार किसीको खूब नाम और यश मिलनेसे ही सुख होता है, इसीलिये वह याग-यज्ञ व्रत-उपवासादि किया करता है; किन्तु इनमेंसे किसीका भी कार्य्य मतलबसे खाली नहीं है; सभीकी जड़में अपनी इन्द्रिय वाली प्रीतिकी इच्छा भरी हुई है। क्योंकि ऐसा करनेसे हमें सुख होता है, इसलिये हम ये सब काम करते हैं। किन्तु भगवान् तो सर्व भूतोंके हृदयमें अधिष्ठित हैं; उन्हींकी प्रीतिके लिये हम सब काम करते एवं उनकी सेवामें आनन्द पाते हैं, इसीसे मानों हम उन्हें सुख देनेके लिये सब काम करते हैं। वे जब रूप (सौन्दर्य्य) को पसन्द करते हैं, तो हम रूपका ही उन्हें साधन क्यों न करें? उन्हें चन्दन या चोया

अच्छा लगता है, तो हम लेवेण्डर या युडीकोलन व्यवहार क्यों न करें ? वे फूलोंकी माला पसन्द करते हैं, तो हमारे चेन (जञ्जीर) और अंगूठी पहननेमें दोष क्या है ? उनका आनन्द ही तो हमारा आनन्द है ! धनी, दरिद्र, पण्डित, मूर्ख, काने, कुबड़े, रोगी, भोगी— इनका उपकार करनेसे उन्हें जो आनन्द होता है, उस आनन्दका प्रतिघात ही तो हमारा भी आनन्द है ! तब फिर अलग आनन्द और क्या हो सकता है ? इसीका नाम ही तो ईश्वरानन्द है ! भगवान् को सौन्दर्य्य उपभोग कराके, भगवान्‌की सेवा करके, आनन्दका जो पूर्णतम भाव है, उसे ही प्रेम कहते हैं। धर्म्मजगत्‌के एक श्रेष्ट महाजनने लिखा है, कि:—

आर एक अद्भुत गोपी-भावेर स्वभाव ।
बुद्धिर गोचर नहे याहार प्रभाव ॥
गोपीगण करे यबे कृष्ण दरशन् ।
सुख वाञ्छा नाहीं सुख हय कोटि गुण ॥
गोपिका दर्शने कृष्णेर ये आनन्द हय ।
ताहा हते कोटि गुण गोपी आस्वादय ॥
ताँ सवार नाहि निज-सुख अनुरोध ।
तथापि बाड़ये सुख पड़िल विरोध ॥
ए विरोधेर एक एइ देखि समाधान ।
गोपिकार सुख कृष्ण सुखे पर्य्यवसान ॥

चैतन्य चरित्रामृत ।

इसका तात्पर्य्य यह है, कि "गोपियाँ कृष्णके दर्शनसे सुख नहीं चाहतीं, किन्तु फिर भी उनके हृदयमें कोटि गुण सुखका उदय होता है। बड़ी ही मुश्किलकी बात है ! इसका भाव अनुभव करना पण्डितोंकी बुद्धिके वशकी वात नहीं है। गोपिगणको देखकर कृष्णको जो आनन्द होता है, उससे गोपियोंको करोड़ गुणा ज्यादा आनन्द होता है। क्यों ?—गोपियोंका सुख कृष्णके सुखमें समाया हुआ है। कृष्णको सुखी हुवा देख कर गोपियोंको सुख होता है ; अर्थात् उन लोगोंका अपनी इन्द्रियोंका सुख नहीं है, कृष्णका सुख ही उनका सुख है।" आह ! हा !! क्या ही मधुर भाव है !!! इसीलिये तो गोपी-भाव श्रेष्ठ है ! कितने ही अल्पमति, ज्ञान-शून्य व्यक्ति इस निर्म्मल भावको अनुभव करनेमें असमर्थ हो, बुरे तौरसे इसकी आलोचना किया करते हैं।

इसीसे कहता हूँ, कि हमें कृष्णमय सर्वभूतोंके सुखसे ही सुखी होना पड़ेगा। मैंने अच्छा काम किया है, केवल इसीसे आनन्दित होनेसे काम न चलेगा ; वल्कि यह सोचना होगा, कि मेरे कामसे विश्वरूप भगवानको सुख हुआ है, इसीमें मेरा भी सुख है। स्त्री—पुत्रकी, वंशकी या देशकी और समाजकी सेवा करनेसे उन्हें जो आनन्द पहुँचता है ; वही हमारा भी आनन्द है। सारे भूतकी—सारे विश्वकी प्रीतिवाली इच्छाका साधन ही प्रेम है। भोजन, वल-संग्रह, सौन्दर्य्य-संरक्षण, वसन-भूषण परिधान, सभी विश्वके सर्वभूतके प्रयोजनके लिये है। जव जिस काममे जो लगेगा, तव उसको उसी काममें लगाना पड़ेगा। हमें वे सभी काम करने होंगे,

नहीं तो सब भूतोंका काम कैसे होगा? विश्वके काममें उपयोग करनेके लिये ही तो देहका इतना यत्न करना पड़ता है। लेकिन, यदि आसक्तिकी छाया छू गई, तो फिर प्रेम दुर्लभ हो जायगा। क्योंकि आसक्ति ही काम है।

अतएव फलकी आशा परित्याग करके भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये जो काम किया जाता है, वही श्रेष्ठ है। पुत्र-कलत्र कहिये, या विषय विभव कहिये अथवा दान-ध्यान या याग-यज्ञ कहिये, सभी भगवान्‌का है, मेरा तो कुछ भी नहीं है। जैसे नौकर मालिकके संसारमें रह कर सब कुछ काम करता है, किन्तु उसका फल उसके लिये कुछ भी नहीं है, यह सब उसके स्वामीके लिये है; ठीक वैसे ही हम लोग भी भगवान्‌के इस विराट घरके किसी एक कोनेमें रह कर उनका ही काम कर रहे हैं। इसमें हमारे लिये शोक-दुःख, अच्छे या बुरे अथवा आनन्द या निरानन्दकी क्या बात है?

इस तरह निर्लिप्त भावसे काम करना सीखनेसे फिर आसक्तिका धब्बा न लगेगा। किन्तु एक तृणमें भी यदि आसक्ति रही तो, उसके लिये फिर कितने जन्म चक्कर खाना पड़ेगा—इसे कौन जानता है? सर्वस्वत्यागी परमयोगी राजा भरतकोससागरा वसुन्धराकी माया छोड़कर भी तुच्छ हरिणके बच्चेकी आसक्तिमें कितनी बार जन्म लेना पड़ा था! इसीसे तो कहता हूँ कि इन्द्रिय द्वारा काम करो, किन्तु उनसे व्याकुलता पैदा न होने पावे—प्राणमें वासना-कामनाका दाग न लगे। पहले ही सोच विचार कर, व्याकुल न होकर, जब जो काम आ जावे, धैर्य्यके साथ उसे सम्पन्न करना

चाहिये। जीवकी चिन्ता निष्फल है, सुतरां वृथा चिन्ता या आशाका हार (माला) न पिरो कर परमपिताके चरणकमलोंमें चित्त समर्पण-पूर्वक सामने आया हुआ काम करते जाओ।

या चिन्ता भुवि पुत्र-पौत्र-भरण-व्यापार-सम्भाषणे।
या चिन्ता धन-धान्य-भोग-यशसां लाभे सदा जायते।
मा चिन्ता यदि-नन्द-नन्दन-पद-द्वन्दारविन्दे क्षणं।
का चिन्ता यमराज-भीम-सदन-द्वारप्रयाणे प्रभो॥

अर्थात्—इस संसारमें आकर अपनेको भूल, पुत्र-पौत्रादिके भरण, पोषण और सम्भाषणकी हम जितनी चिन्ता करते हैं, धन-धान्य-भोग-यश प्रभृति पानेके लिये जितने चिन्तातुर होते हैं, उतनी ही चिन्ता यदि क्षणकालके लिये भी नन्द-नन्दन श्रीकृष्णके पद-युगलारविन्दके चिन्तनकी करें, तो यमराजके भीम भवनके द्वारपर पहुँचनेमें क्या कुछ भी डर मालूम पड़ सकता है? अतएव वृथा चिन्ता या दुराशाके दास न बन कर फलाफल भगवान्‌को अर्पण करके अवश्य कर्तव्य करते जाओ। साधकाग्रगण्य श्रीतुलसीदासजी अपने मनको सम्बोधन कर कहते हैं, कि:—

तुलसी ऐसो ध्यान धर, जैसे ब्यानी गाय।
मुखतें तृण चारा चुगे, चित् बछराके मायँ॥

अर्थात्—"हे तुलसी! ऐसा ध्यान धरो, जैसा ब्याई हुई गाय, मुंहसे तृण, दाना खाती है, किन्तु चित्त बछड़ेकी ओर लगाये रखती है; ठीक वैसे ही संसारका काम करो, किन्तु चित्त भगवान्‌को अर्पण करके रखो।"

और भी एक बात यह है कि हमें सदा-सर्वदा सब अवस्थामें यह स्मरण रखना चाहिये, कि "मुझे मरना होगा।" हमारे मस्तक पर यमका भीमदण्ड बराबर घूम रहा है। किस पलमें मौतकी दुन्दुभि बज उठेगी इसका कोई निश्चय नहीं है। कब किस अज्ञात प्रदेशसे अचानक आकर वह हमे ग्रास करेगा—कौन जानता है? अतः कोई भी भला बुरा काम करनेसे पहले "मुझे एक दिन मरना पड़ेगा," यह सोचकर उसमें हाथ डालना चाहिये। मौतकी बात मनमें दृढ़ होजानेसे फिर मर्त्यजगत्में मदन-मरणके अभिनयपर मन आगे नहीं बढ़ने पावेगा।

मृत्यु ही जगत्पिता जगदीश्वरकी परम कारुणिक व्यवस्था है। मृत्युका नियम ठीक न रहनेसे निःसन्देह संसार अत्यन्त अशान्तिका घर बन जाता और धर्म्म-कर्म्मका मर्म्म कोई भी हृदयमें नहीं लाता। सतीके सतीत्व, दुर्बलके धन और निर्धनके मानकी रक्षा करना कठिन होजाता। मानव मृत्युके डरसे परकालकी बात सोच कर ही धर्म्मका अनुष्ठान करता है। नहीं तो वह स्वेच्छाचारी बनकर अपने अपने बलवीर्य्य एवं धन-सम्पदके गौरवसे निराश्रित दुर्बलोंको पैर तले कुचल डालता। दुर्बल और दरिद्र लोग प्रबलके अत्याचार-उत्पीड़नसे अस्तव्यस्त होकर आँखोंके आंसुओंसे गण्ड धोते हुए अपना दुःख हल्का करते और तब गालपर प्रचण्ड चपेटा-घात (थप्पड़) लगा कर अदृष्टको धिक्कार या अदृष्ट-पूर्वविधिके विषम विधानकी निन्दा करते। मृत्यु है, इसीलिये तो हमारा मनुष्यत्व कायम रहा है। इस परिवर्त्तनशील (बदल जाने वाले) जगत्में तो

सभी अनिश्चित है, किसी विषयकी स्थिरता और निश्चित दशा नहीं है ; लेकिन मृत्यु निश्चित है। छाया जैसे चीज़ोंके पीछे चलती है, ठीक वैसे ही मृत्यु भी देहकी साथी बनी रहती है। श्रीश्रीमद्भागवत्में लिखा है, कि:—

अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः।

आज हो वा कल हो या दो, दस अथवा सौ वर्ष पीछे हो, किन्तु एक दिन सभीको उस सर्वग्रासी (सबको खानेवाले) शमन-सदनमें जाना अवश्य पड़ेगा। अगणित सैन्यसे घिरे हुए एवं शस्त्रादिसे भूषित लोक-संहार-कारी सम्राट (राजाधिराज) से लेकर वृक्षतलवासी फटी कंथा बिछानेवाले भिक्षुक तक सभीको एकदिन मौतके मुंहमें जाना होगा। मृत्यु अनिवार्य्य है। मृत्यु उम्रकी राह नहीं देखता, सांसारिक कार्यसम्पादनकी असम्पूर्णता भी नहीं सोचता; मौतको कोई माया या ममता (आदर-यत्न) नहीं है, कालाकालका विचार भी नहीं है; मौत किसीका भी अनुरोध-उपरोध नहीं सुनती है—वह किसीकी भी सुविधा या असुविधा नहीं देखती है ; किसीका भी सुख-दुःख नहीं समझती है, किसीका भला-बुरा भी वह नहीं सोचती है, किसीकी पूजा-अर्चना भी नहीं मानती है ; किसीके संतोष या रोष अथवा प्रलोभन पर भी नहीं भूलती है, किसीके रूप-गुण या कुल-मानको भी नहीं मानती और न किसीके धन-दौलत या गौरव पर ही दृष्टि डालती है। कितने ही दौर्दण्ड और प्रतापशाली महारथियोंने इस भारतमें जन्म लेकर अपने-अपने बल वीर्य्यसे ससागरा वसुन्धराको हिला दिया, किन्तु आज उनमेंसे कोई भी

जीता नहीं है, सबके सब कराल मृत्युके मुंहमें चले गये हैं। वास्तव में मानवकी ऐसी कोई शक्ति ही नहीं है, कि जिससे भयानक मौतकी राह रोकी जा सकती है। शारीरिक बलवीर्य्य, धन, जन, सम्पद, मान, गौरव, दौर्दण्ड-प्रताप, प्रभुत्व प्रभृति सर्व गर्व मृत्युके सामने हट जायेंगे। इस मौतकी बात समझकर ही महादस्यु (बड़े भारी डाकू) रत्नाकरजी सब कुछ छोड़-छाड़ धर्म्म जगतमें महाजन (बाल्मीक) बन गये थे। श्मशानमें शव जलाने जाकर इस नश्वर देहका परिणाम देख, क्षण कालके लिये अनेकोंके मनमें श्मशान-वैराग्य उदय हो जाता है।

इसीलिये कहता हूँ, कि सदा सर्वदा मृत्युकी चिन्ता जाग्रत रख कर काम करनेसे हृदयमें पापकी इच्छाका उदय ही नहीं होगा और न दुर्बल पर अत्याचार करनेके लिये ही चित्त छट-पटायगा; विषय-विभव (धन दौलत), आत्मीय स्वजनकी माया सैकड़ों हाथ बना करके भी आसक्तिकी जञ्जीरमें न बाँध सकेगी। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये, कि हमारे जैसे कितने ही महाशय इस संसारमें आये और उन्होंने इन धन-ऐश्वर्य्य, इस घर-द्वारको "हमारा" "हमारा" कहकर पुकारा था; हमारी तरह स्त्री-पुत्र, कन्याओंको स्नेहके हजारों बाहु-सृजन करके छातीमें चिपटा लिया था—किन्तु अब वे कहाँ हैं? जिस अज्ञात देशसे वे आये थे, उसी अज्ञात देशमें वे फिर चले गये। इसलिये स्मरण रखना चाहिये, कि धन-सम्पदका अहंकार, बल-विक्रमका अहंकार, रूप-यौवनका अहंकार, विद्या बुद्धिका अहंकार, कुल-मानका अहंकार सब वृथा है। एक दिन सारे अहंकार—यहाँ

तक कि अहंकारका अहंकार भी चूर चूर हो जायगा। अतः स्मरण रखना चाहिये, कि भले ही आज मैं पार्थिव (दुनियाका) पदार्थके (विषय) अहंकारमें मतवाला होकर एक निराश्रय दुर्बलपर पदाघात कर रहा हूँ; किन्तु एक दिन ऐसा अवश्य आवेगा, कि जब मुझे श्मशानमें शवाकारमें सोना होगा और तब शृगाल-कुत्ते मेरे शव पर पदाघात (ठोकर लगाना) करेंगे, भूत-प्रेत उसकी छातीपर चढ़कर छमाछम नाचेंगे और उस दिन चुपचाप ये सब बातें सहन करनी पड़ेंगी। इस तरह सोच-विचार करनेसे ही धीरे धीरे पार्थिव (दुनिया) विषयोंकी असारता हृदयङ्गम होगी और तब आसक्तिकी गांठें ढीली हो जायेंगी।

आजकल कितने ही लोग शिक्षाके दोष या संसर्गके गुणसे अथवा उम्रकी चञ्चलताके कारण परकाल और कर्म्मगुणके विषयमें जन्म-कर्म्म-अदृष्ट (भाग्य) को स्वीकार नहीं करते; लेकिन अन्तमें किसी दिन उन्हें यह बात अवश्य ही स्वीकार करनी होगी। स्वीकार न करने पर भी जीवन चिरकालके लिये नहीं है; एक दिन मरना तो होगा ही, धन-जन-गृह-राजत्व परित्याग कर चल देना पड़ेगा ही। तब, भला दो दिनके लिये इतनी माया क्यों ? वृथा आसक्ति क्यों ? मृत्युकी चिन्तासे, उसी सुदूर अतीतकी सुस्थूल-यवनिकाके अन्तराल में यानी सुदूर अतीतके मोटे परदेके पीछे दृष्टि डालने पर तत्त्वज्ञानका उदय होगा। पाठक ! मैं भी जबतक मृत्युकी गोदमें न गिरूंगा, तबतक मृत्युकी चिन्ता सदा जाग्रत रखूंगा; इसीलिये मौतके महाक्षेत्र-महाश्मशानमें मेरा वास स्थान है, मानवास्थिकी दग्धावशेष

चिताभस्म मेरे अंगका भूषण है, नरकपाल (मानवकी खोपड़ी) मेरा जलपात्र है, मैं मरणपथका पथिक हूँ; रात दिन मरणकी गोदमें बैठा हुआ हूँ।

सिद्ध योगिगण उपदेश देते हैं, कि दूसरेका सुख, दुःख, पाप और पुण्य देखनेसे यथाक्रम मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा करना चाहिये। अर्थात् दूसरेको सुखी देखनेसे सुखी होना और ईर्षा नहीं करना चाहिये। दूसरेके सुखमें सुखी होनेका अभ्यास डालनेसे तुम्हारा ईर्षानल (हिंसारूप अग्नि) शीघ्र बुझ जायगा। तुम जैसे सदा आत्म-दुःख हटानेकी इच्छा रखते हो, ठीक वैसी ही इच्छा तुम्हें दूसरेको दुखी देखने पर भी करनी चाहिये। अपने पुण्य या शुभानुष्ठानसे जैसे तुम्हें संतोष होता है, दूसरेके पुण्य या शुभानुष्ठानसे भी वैसे ही प्रसन्न होना चाहिये। दूसरेके पाप देखकर झगड़ा या घृणा न करना और भला या बुरा किसी भी प्रकारका आन्दोलन न करना चाहिये। सर्वतोभावसे उदासीन रहना चाहिये। इस तरह चलनेसे हमारे चित्तका अमर्पमल (गाढ़ा-मैल) दूर हो जायगा। इसी प्रकार चित्तकी सारी वृत्तिका भी अनुशीलन करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें हरएक असत्-वृत्तिके बदले सद्वृत्तिका अनुशीलन करनेसे धीरे धीरे चित्तका मैल दूर हो जायगा। क्रोधके बदले दया, कामके बदले भक्ति,- इसी तरह हरएक राजस और तामस वृत्तिके बदले सात्त्विक वृत्तियोंका उदय करते करते चित्त धीरे धीरे निर्म्मल (मैलशून्य) होकर अच्छी तरहसे एकाग्रता-शक्ति-सम्पन्न होगा। जिसका चित्त जितना निर्म्मल है, भगवान् भी उसके उतने ही

नजदीक है ; इसी प्रकार जिसका चित्त जितना ही पाप-तमसाच्छन्न है, वह भगवान्से उतना ही दूर है। और भी एक बात यह है, कि पोष्यवर्ग (बालबच्चे आदि) को पालनेके लिये उद्योगी बनो। जहां तक हो सके, यत्न और चेष्टा करो ; लेकिन, इसीलिये हमें कभी भी पापमें लिप्त नहीं होना चाहिये। असत् पथमें रहकर रुपये कमानेसे उसका फल भी हमें ही भोगना पड़ेगा, दूसरा कोई भी उस पापमें हिस्सा नहीं बटावेगा। पोष्यवर्ग समाजके योग्य उपयोगी भोजन या परिच्छद (धोती कपड़ा आदि) प्रभृति न पानेसे अवश्य ही मुंह विगाड़ेंगे, यह बात सत्य है, किन्तु इसके लिये हम क्या कर सकते हैं ?

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाशुभम्। स्मृति।

कृत-कर्म्म शुभ या अशुभ जैसा भी हो,अवश्य ही उसका फल हमें भोगना पड़ेगा। इसी प्रकार पोष्यवर्गमें जो जैसा भाग्य ले आया है, वह भी वैसा ही फल भोग करेगा—और हजार कोशिश करने पर भी हम उसे पलट न सकेंगे। तब व्यर्थके लिये क्यों अहंकारकी आग छाती पर रख दौड़ धूप करते हुए जन्मभर परिताप का संग्रह किया करते हैं ? असत् उपायसे रुपया कमाकर वासनाकी आगमें हम क्यों जलें ? थोड़े दिनके लिये जन्म-जन्मान्तरके कष्टोंकी आग सुलगाकर आसक्तिके दानवी निःश्वासमें हम क्यों जलें ? इसी प्रकार यदि हम पुत्र या कान्याके मलिन मुख न देख सकें, तो फिर त्यागी कैसे होंगे ? लेकिन किसी प्रकारका काम न करते हुए भी काममें संसिद्धि लाभकी आशा करना केवल जड़का

लक्षण है ! इसी प्रकार हमें इस प्रतिज्ञा पर भी दृढ़ रहना चाहिये कि, मैं भूलकर भी असत् पथमें नहीं जाऊंगा—न किसीके चित्तको कष्ट ही पहुँचाऊंगा। सत्पथमें रहकर जिस भावसे चले सो चलने दो। वृक्षके फल और नदीके जल—इन दोनोंका तो फिर अभाव ही न होगा। इसीलिए सबको ही भगवान् पर आत्मनिर्भर करनेकी शिक्षा लेनी चाहिये। क्योंकि, वे किसीको भूखा नहीं रखते हैं। हमारे जन्म लेनेसे कितने ही पहले भगवान् माँकी छातीमें स्तन बना रखते हैं, जन्मसे ही उसी स्तनको पीकर हम मोटे-ताजे होते हैं। जिनकी ऐसी सुन्दर व्यवस्था है और जिनकी ऐसी सुन्दर शृङ्खला (कायदा) है, जिनकी ऐसी अहैतुकी दया है, हम उन्हींको तथा उनके कामके नियमादि भूलकर क्यों छटपटाएँ और दौड़ धूप करके मरें ?

अन्तमें एक बात और कहकर मैं इस विषयका उपसंहार (अन्त) करता हूं। वह यह कि, जिससे जगज्जीव अत्यन्त आकृष्ट (खिंच) हो रहे हैं, वह रमणीका मोहिनी मोह है। इसलिए योग-साधन करते समय सबको ही—

ऊर्ध्वरेता

होना उचित है। योगाभ्यासके समय स्त्री-संगमादि किसी भी कारणसे शुक्र (वीर्य्य) नष्ट होनेपर आत्मक्षय होता है।

यथा :—

यदि सङ्गं करोत्येव विन्दुस्तस्य विनश्यति ।
आत्मक्षयो बिन्दुहीनादसामर्थ्यञ्च जायते ॥

दत्तात्रेय ।

. यदि स्त्री-संग करे तो विन्दु (वीर्य्य) नष्ट होता है ; और विन्दुनाश होनेसे आत्मक्षय होता है एवं शक्ति भी चली जाती है । अतएव—

तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन रक्ष्यो बिन्दुर्हि योगिना ।

दत्तात्रेय ,

योगाभ्यास करने वालोंको यत्नके साथ विन्दु (वीर्य्य) की रक्षा करनी चाहिये । शुक्र (वीर्य्य) नष्ट होनेसे ओजः धातु बिगड़ जाता है, क्योंकि वीर्य्य ही ओजः स्वरूप अष्टम धातुके आश्रयका स्थान है । वीर्य्य ही ब्रह्मतेज कहकर कथित होता है । इसका अभाव होनेपर मानवका सौन्दर्य, शारीरिक बल, इन्द्रियोंकी स्फूर्त्ति, स्मरण शक्ति, बुद्धि, धारणा-शक्ति आदि सभी कुछ नष्ट हो जाते हैं । वीर्य्य नष्ट होनेसे यक्ष्मा, प्रमेह, अशक्ति (कमजोरी) आदि नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होकर अकालमें ही कालके गालमें चला जाना पड़ता है । अथवा जब अस्वाभाविक आलस्य पैदा होकर सब कामोंमें उदासीनता उत्पन्न कर देगा, तब जड़की तरह जीवन व्यतीत करना पड़ेगा । इसीलिये सबको ही अत्यन्त यत्नके साथ वीर्य्यरक्षा करना चाहिये । लेकिन यह बड़ी ही कठिन बात है, कि :—

पीत्वा मोहमयीं प्रमोदमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ।

भर्त्तृहरि ।

मोहमयी प्रमोदरूप मदिरा पीकर यह अनन्त जगत् उन्मत्त (पागल-सा) हो रहा है। कोई भी जीव हो, उसके पुरुषवर्गको उसकी स्त्रीजातिने अपने मोहाकर्षणसे खींच रखा है। सभी रिपु (इन्द्रियों) की उत्तेजनाके कारण अज्ञानताके दबावसे नरककी आगमें कूद रहे हैं। विद्यालयके बालकसे लेकर बुड्ढे व्यक्ति तक सभी मानव मुहुर्त्तमात्र सुखके लिये वीर्य्य-क्षय करके जीवनका सुख नाश करते हुए वज्रदग्ध (बिजलीसे जले हुए) पेड़की भाँति विचरण कर रहे हैं! उनकी पैदा की हुई सन्तानें उनसे भी अधिक निर्वीर्य्य होकर जन्म-ग्रहण करके दुर्ज्जय (भयंकर) बीमारियोंसे आक्रान्त हो संसारको अशान्तिका घर बनाती जा रही हैं। इसी तरह निकृष्ट (खराब) वृत्तिके वशमें होनेसे नरनारियोंके हृदयकी वृत्ति भी एकदम ही बिगड़ जाती है; किसी भी वस्तुका वास्तविक ज्ञान भी उन्हें नहीं रहता है। सिर्फ हमलोग ही ऐसे नहीं हैं, देवतागण भी प्रमोदकी मदिरामें उन्मत्त (पागल) हो रहे हैं; जैसा कि महामुनि दत्तात्रेयजीने प्रकाश किया है :—

भगेन चर्म्मकुण्डेन दुर्गन्धेन व्रणेन च।
खण्डितं हि जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥

अवधूतगीता ८।१६।

तब इस आकर्षणसे उद्धार (छुटकारा) पा लेनेका उपाय क्या है? यही कि, अभ्यास और संयमसे सब कुछ सिद्ध हो सकता है। तत्त्वज्ञान एवं संयमके अभ्याससे हृदयमें यह धारणा दृढ़ करनी होगी, कि जो नरकका कारण है—जो रोगोंका कारण है—जो

आत्माकी अवनतिका कारण है—उस कामको हम क्यों करें? जिसके लिए कर्त्तव्य-पथसे विचलित होना पड़े, वह स्त्री क्या है!

कौटिल्यदम्भसंयुक्ता सत्यशौचविवर्जिता।
केनापि निर्म्मिता नारी बन्धनं सर्वदेहिनाम्।

अवधूत गीता ८।१४

अतएव विचार करना चाहिये, कि—क्या देखकर हम प्यारके मारे छटपटाते हैं और किसके लिये ऐसी पाशव-वासनाकी आग सुलगाते हैं?—केवल दैहिक सौन्दर्य्यके लिये! किन्तु देह क्या है? केवल पञ्चमहाभूतकी एकीभूत (इकट्ठा) अवस्थाके अतिरिक्त और क्या है? तब जिसका विकाश (प्रकाश) समस्त जगत्में फैला हुआ है—जो विश्वकी समस्त वस्तुओंमें विद्यमान है, उसके लिये एक निर्द्दिष्ट स्थानपर ही आकर्षण क्यों? विशेषतः रूप-यौवन कितने मुहुर्त्तके लिये है? वह बाल्यावस्थामें क्या था—यौवनमें क्या हुआ और फिर प्रौढ़वार्द्धक्यमें ही क्या हो जायगा?—ऐसे परिवर्त्तनशील देहका परिणाम क्या है, इस बातका विचार करके देखना चाहिये। वह वृद्धा जो जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें मौतकी खाटपर सो रही है, किसी दिन वह अवश्य ही युवती थी; किन्तु अब किस दशामें है? इसी प्रकार यौवनमें भी जब रोग उत्पन्न होकर इस सुन्दर देहको सड़ा-गला कर प्रेतसे भी खराब बना सकते हैं, तब इसके लिये इतनी आसक्ति क्यों? इसलिये सदैव स्मरण रखो कि:—

भगादि कुच पर्य्यंतं संविद्धि नरकार्णवम्।
ये रमन्ते पुनस्तत्र तरन्ति नरकं कथम्॥ *

अवधूत गीता ८।१७

दूसरी और भी एक बात यह है, कि—स्त्री-सहवाससे आनन्द मिलता है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ; लेकिन तत्त्व विचार करके देखना चाहिये, कि वह आनन्द किसके पास रहता है? ब्रह्मवस्तु वीर्य्य जब हमारे पास है, तभी तो आनन्द प्राप्त होता है, नहीं तो रमणीके देहमें तो कुछ भी नहीं है। बालकगण रमणीके रमणीय देहको देखकर मुग्ध न होते हुए माताकी गोदमें रहनेकी क्यों इच्छा

---

* इन कई श्लोकोंके लिये ब्रह्मज्ञानमें प्रतिष्ठित महात्मागण और जगन्माता की अशभूता भारतीय माताएँ लेखकको क्षमा करें। गुरुकी कृपासे इस तरहका ज्ञान मेरे हृदयमें संबद्ध नहीं है। मैं जानता हूँ, कि स्त्री और पुरुष चैतन्यका ही विकाश है—आधार और गुणके भेदसे ये भिन्न-भिन्न देख पड़ते हैं। सुतरां, इस तरहका विचार मैं अन्याय समझता हूँ। मैं जानता हूँ कि :—

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स लक्ष्यते॥

श्वेताश्वतरोपनिषत्।५ अः।

अतएव हि योगीन्द्रः स्त्रीपुंभेदं न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मन् शश्वत् पश्यति नारद॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, प्रकृतिखण्ड।१ अः।

सारांश: मैं स्त्री और पुरुषके बीच कोई भिन्न भाव नहीं समझता।

रखते हैं ? हिजड़ों (नपुंसक) के लिये तो बाला, युवती, वृद्धा सभी समान हैं। एक दृष्टान्त देकर इस बातको समझाये देता हूँ।

गांवके रहनेवाले सम्भवतः इस बातको देखते रहे होंगे, कि गांवके पालतू कुत्ते गांवमें खानेको न पाने पर चमढ़ौघेमें जाकर बहुत पुरानी गायकी हड्डी संग्रह कर लाते हैं और किसी निर्ज्जन स्थानमें बैठ कर वही सूखी और निरस हड्डियाँ भूखके मारे चबाते रहते हैं। लेकिन उन हड्डियोंमें क्या रखा है ? फलतः जब उन सूखी और कठोर (कड़ी) हड्डियोंकी चोटसे कुत्तेका मुंह चिथड़ा हो जाने पर खून निकलने लगता है और अपना खून जिह्वामें लगनेसे उसे स्वाद मालूम होता है, तब वह और भी यत्न एवं आग्रहके साथ उसी सूखी हड्डीको चबाने लगता है। इसके बाद जब उसके मुंहमें जलन पैदा होती है, तब वह समझता है कि मैं अपने खूनसे अपनी जिह्वाको तृप्त कर रहा हूँ। सुतरां तब हड्डीको फेंक कर वह दूसरी वस्तुकी प्राप्तिके लिये चल देता है। हम लोग भी ठीक इसी तरह वास्तविक आनन्द देने वाली वस्तुको जो कि अपने देहके भीतर भरी हुई है; उसे समझ न सकनेके कारण रमणीके सौन्दर्य्य पर मतवाले होकर मुहुर्त्त भरके आनन्दके लिये उस आनन्द-प्रद वस्तुका नाश कर रहे हैं। सुखकी आशासे दौड़ कर अन्तमें प्राणभरा अनुताप लेकर लौट आते हैं। किन्तु सुख जो कि हमारे ही पास है, उसे उपलब्ध नहीं कर सकते ! पतङ्गकी तरह रूपकी आगमें फांद कर हम जल रहे हैं। किन्तु जो चीज़ देहसे निकलते समय क्षणकालके लिये अनिर्वचनीय (अनोखा) आनन्द दे जाती है, हम नहीं जानते कि उसकी विशेष यत्नके साथ

देहमें रक्षा करनेसे कितने अनुभवनीय आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है। अर्थात् हम ऐसे अज्ञ हैं, कि उसी पदार्थको वृथा नाश करनेके लिये अपने जीवन और मन दोनोंका उत्सर्ग कर रहे हैं।

इस तरह तत्त्वज्ञानसे मनको दृढ़ करके जो ऊर्ध्वरेता हो गये हैं, वही असलमें मानवके नामसे देवता हैं। भगवान् महादेवने कहा है—

न तपस्तप इत्याहु र्ब्रह्मचर्य्यं तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

ब्रह्मचर्य्य अर्थात् वीर्य्य धारण ही सबसे बड़ी और उत्कृष्ट तपस्या है। जो लोग इस तपस्यामें सिद्धिलाभ करके ऊर्ध्वरेता बन गये हैं, वही मनुष्यके रूपमें असली देवता हैं। जो ऊर्ध्वरेता हैं, मृत्यु उनके लिये इच्छाधीन है, वीरत्व उनके हाथका खेल है। वीर्य्यके ऊर्द्धगमनसे अतुल आनन्द लाभ करता है। *

वीर्य्य धारण न करनेसे योग साधन करना केवल विड़म्बना मात्र होता है। सुतरां योगाभ्यास करने वालेको यत्नके साथ वीर्य्य-रक्षा करनी चाहिये।

* योगमें ऐसी भी क्रियाएँ हैं, जिनसे काम प्रवृत्तिकी निवृत्ति की जा सकती है और फिर वीर्य्य क्षय नहीं होने पाता। योग-शास्त्रमें वह कार्य अत्यन्त गोपनीय है। क्योंकि आनन्द देनेवाला कार्य होने पर भी उससे आसक्ति बढ़ती है। मैंने "ज्ञानीगुरु" पुस्तकमें उसका वर्णन किया है एवं मत्प्रणीत "ब्रह्मचर्य्य साधन" नामकी पुस्तकमें भी वीर्य्य धारणकी साधना और नियमावली प्रकाशित की गई है। मत्प्रणीत "प्रेमिक गुरु" पुस्तकमें इस विषयको और भी अधिक गम्भीर आलोचना की गई है।

योगिनस्तस्य सिद्धिः स्यात सततं बिन्दु धारणात्।

अर्थात् सतत बिन्दु यानी वीर्य्य धारण करनेसे ही योगियोंको सिद्धिलाभ होता है। वीर्य्य संचित होनेसे मस्तिष्कमें प्रबल शक्ति आ जाती है और इस महती शक्तिके सहारे एकाग्रताका साधन करना सहज हो जाता है। जिन्होंने विवाह कर लिया है, वह पूरे तौरसे ऊर्ध्वरेता नहीं बन सकेंगे। क्योंकि ऋतुरक्षा न करनेसे यानी रजस्वला होनेपर गर्भाधान न करनेसे शास्त्रके अनुसार पाप होता है। सुतरां पुत्रकी कामनासे, वंशकी रक्षाके लिये एवं भगवान्‌का सृष्टि-प्रवाह कायम रखनेके लिये योगकी राहमें चलनेवाला साधक, संयत चित्तसे हरेक महीनेमें केवल मात्र एक दिन अपनी स्त्री की ऋतु-रक्षा करे।

पहले कहे हुए नियमसे चित्त सुसयंत करके जो जिस किसी साधनमें लग जायगा, उसमें ही वह जल्दी सफलता प्राप्त कर सकेगा। अन्यथा पार्थिव (दुनियाकी) वस्तुओंकी आसक्तिसे हृदय पूर्ण करके आँख मूंदते हुए ईश्वरके ध्यानमें नियुक्त होनेसे उसे अंधेरेके सिवाय दूसरा कुछ भी न देख पड़ेगा। ब्रह्मज्ञान लाभ करना कोई सीधी बात नहीं है। जहाँ तहाँ बैठ कर ईश्वरचिन्तन तो कर सकते हो, किन्तु ब्रह्मज्ञान उससे भिन्न वस्तु है। त्याग ही इसका प्रधान कार्य्य है। त्यागकी साधना न करने पर ब्रह्म-चिन्तन निष्फल है।

इसलिये पहले कहे हुए तत्त्वके विचारसे आसक्ति न छोड़ सकने पर, केवल केश बढ़ाने एवं नाना प्रकारके रंगीन कपड़े पहनकर देश-

देशमें घूमनेसे कुछ फल नहीं निकलेगा। भवके (संसारके) भावमें न रहकर भावके भावमें डूबनेसे यानी संसारकी बातोंमें न फँसकर ईश्वरका ध्यान लगानेसे सभी कार्य सफल होते हैं। इस प्रकारकी भावनासे युक्त हो, घरमें बैठकर भी वनिता (स्त्री) और बेटाबेटी, साज-सामान, लोटा-लोटी (कटोरा) घरद्वार एवं विषयकी मायामें युक्त रहकर भी सच्चे तौरपर अगर कोई परिश्रम करे, तो उसका फल भी अच्छा ही निकलेगा। इस तीर्थसे उस तीर्थमें दौड़ने या संन्यासियोंके झुण्डमें मिलने अथवा ढोंगी साधुओंके चक्करमें भी न पड़ना होगा। प्रत्युत भस्म या मिट्टी लगानेसे—जटाजूट रखनेसे—रंगीन कपड़े पहननेसे—उपवास कर भूखों मरनेसे—संसारका धर्म्म छोड़नेसे—अनेक कर्म्म करनेसे—अनेक पथमें चलनेसे—अनेक शास्त्र ढूंढनेसे—अनेक बातें समझनेसे भी अन्तमें रम्भा (केला) न चूसना पड़ेगा।

केवल माला-झोला लेकर हरिबोला होनेसे—मिट्टी लगाकर चैतन-चोटी रख गोपी-वल्लभ बोल कर चिल्लानेसे—जटाजूट बांधे तथा भस्म लगा कर बम्-बम् बोलते हुए हमेशा गांजेकी चिलमका दम लगानेसे—काली काली कहकर गंगाकी रेतमें पड़ शराब पीनेसे—मदन-मोहनके चरण नहीं मिलते। निश्चय जानिये, कि ईश्वरका भजन केवल वनमें रहनेसे ही नहीं होता—किन्तु मनको वश करनेसे होता है, तीर्थवाससे नहीं होता, किन्तु घरमें रहनेसे भी हो सकता है, रोष (क्रोध) से रस नहीं मिलता है—काम रहनेसे राम नहीं मिलता है—लोभ रहनेसे क्षोभ (दुःख) होता है, अभिमान

रहनेसे अपरिमाण पाप होता है—पाप रहनेसे ताप होता है—कपट (छल) रहनेसे अपटुता होती है—माया रहनेसे काया नहीं छूटती है—वासना रहनेसे साधना नहीं होती—आशा रहनेसे प्यास (लालच) बढ़ती है—गौरवके ज्ञानसे रौरव नरक मिलता है—प्रतिष्ठाकी इच्छा रखनेसे इष्ट-चिन्तन नहीं होता है—गुरुत्व (अपने को बड़ा समझना) ज्ञानसे गुरु कृपा नहीं करते—गुरुको न पकड़नेसे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है—वान्छा (इच्छा) रहनेसे वान्छा-कल्पतरु (भगवान्) को चाहना वृथा है—अहंके ज्ञानसे सोहं नहीं मिलता है। केवल भण्डामि (पाखंड-रचना) से सब पण्ड (नाश) हो जाता है अन्तमें दण्डधारीके प्रचण्ड प्रतापसे लण्ड-भण्ड (विताड़ित) होकर दण्डभोग करते करते आँखके आंसुओंसे गण्ड (गाल) धोना पड़ता है। अतएव यदि सच्चे मानव होनेकी इच्छा हो तो, मिट्टीकी इस देहका अभिमान मिट्टीमें मिलाकर—मिट्टी होकर—मिट्टी खाकर—मिट्टीमें मिलकर—काम करना चाहिये। ऐसा करनेसे ही सब सच्चा हो जायगा—मिट्टीकी देह भी सच्ची सोना हो जायगी। अन्ततः सीधे-साधे भावसे सब मिट्टी करके यदि मिट्टीके मानव नहीं हो सके तो साधन-भजन सब मिट्टी—मिट्टीका देह भी मिट्टी और सारा मानव-जीवन भी मिट्टी ही हो जायगा।

कितने ही ऐसे व्यक्ति हैं जो कहते हैं, कि संसारमें रह कर साधन-भजन नहीं बनता। क्यों?—संसारी लोग धर्म्म वा साधन किंवा सद्गति लाभ नहीं कर सकते इसका कारण क्या है? संसार तो भगवान्का ही है, तुम संसारका "सं" छोड़कर "सार" को ग्रहण

करो ; यानी "सार" को पकड़ो। दुराशाकी (दुश्चिन्ताके) असारमें डूब, असार रूपमें "सं" न सज़कर "सार" बनकर, असार संसारमें आशाका सुसार करो एवं संसारमें "सार" का प्रसार (विस्तार) कर उसीका पसार (दूकान) करो। केवल सांसारिक गोलमाल (झगड़ा) के बीच फँसकर घोर रोल (शब्द) से गण्ड-गोल (झगड़ा) न करके, गोलमालका "गोल" छोड़कर "माल" चुन लेनेसे सर्वदा सामाल-सामाल (हुसियार-हुसियार) करके भी सारे मानव-जीवनको पायमाल (नाश) करनेसे बचा लोगे। यही नहीं प्रत्युत, सारा-सारके सार भगवान्के सृष्ट संसारके सारमें सारी बन कर आशाका अधिक सुसार और अपार आनन्द भोग करोगे। इसी तरह कर्त्तव्यके ज्ञानमें कर्त्तव्य-कर्म्म सम्पादन-पूर्वक निष्कपट मनके साथ भगवान्को पुकारनेकी तरह पुकारनेसे एवं उसीकी तरह चिन्तन की तरह चिन्तन कर सकनेसे संसार-धर्म्म कायम रखकर भी हम परम गति लाभ कर, सकते हैं।

कोई-कोई व्यक्ति फिर समयका भी बहाना किया करते हैं। उनका कहना कि "परिवारादिके पालनके लिये रुपया कमानेमें ही जब सारा दिन बीत जाता है, तब साधन-भजन कब कर सकते हैं?" किन्तु यदि अर्थ कमाने और सांसारिक कार्य सम्पादन करनेमें ही सारा दिन बीत जाता है, प्रतिदिन रातमें जितनी देर तक हम निद्रा-सुखका उपभोग करते हैं, उसमेंसे एक घण्टा निद्रा कम करके, उसी घण्टे भर निश्चिन्त चित्तसे नित्य निरञ्जनकी अराधना करने पर भी आशातीत फल लाभ हो सकेगा। किसी-किसीको तो अर्थके

अभावके कारण परमार्थकी चिन्ता नहीं होती है। क्योंकि, अर्थ होनेसे वे सम्भवतः खूब चावल-केला, चीनी मिठाईका संग्रह कर रसमें डूबते ; रस द्वारा रोशनाई करते तथा रङ्ग चढ़ाकर बकरे या भैंसेका बलि देकर खूब धूमधामके साथ ताशा, ढोल बजाकर लोगों को रूआब दिखा सकते हैं ; यद्यपि अर्थके अभावसे सिर्फ ये सब नहीं बन पड़ते हैं ; किन्तु पूजाका जितना सामान है, वह तो सभी उस भगवान्‌का ही है। सुतरां उसकी चीजें उसे ही देनेमें हमारी बहादुरी ही क्या है? अतएव हमारे अर्थका प्रयोजन क्या है? हम सर्वान्तःकरण-पूर्वक सर्व प्रकारसे चिन्मय चिन्तामणिके श्रीचरण-कमलोंमें चित्त समर्पण करके उसके भक्तकी-सी भाषामें—उसके भक्त जैसे प्रेम-करुण कण्ठसे पुकारकर कहते हैं :—

"रत्नाकर स्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
देयं किमस्ति भवते पुरुपोत्तमाय।
आभीर-वाम-नयनाहृतमानसाय
दत्तं मनो यदुपते त्वमिदं गृहाण ॥"

हे यदुपति! सब रत्नोंकी खानि समुद्र तुम्हारे रहनेका घर है, निखिल सम्पदकी अधिष्ठात्री देवी कमला तुम्हारी स्त्री है, तुम स्वयं ही पुरुषोत्तम हो, अतएव तुमको देनेके लिये मेरे पास क्या है? सुन रहा हूँ, कि आभीर-तनया, वामनयना प्रेममयि रमणियोंने तुम्हारा मन हरणकर लिया है, यदि यथार्थमें ऐसा हुवा है, तो केवल तुम्हारे पास मनका अभाव है। अतएव मैं अपना मन तुमको समर्पण कर रहा हूँ—हे प्रेमवश्य गोपीवल्लभ! तुम कृपा करके इसे ग्रहण

करो ! अब तो आपका झगड़ा-झंझट यानी सारी आपत्तियाँ निवृत्त हो गई। फल-स्वरूप—यह सब कुछ भी नहीं। क्योंकि मेरा विश्वास है कि, जिसका प्राण प्रेममयके श्रीचरणकमलको प्राप्त करनेके लिये व्याकुल होता है, उसे कोई भी सांसारिक झगड़े फँसा नहीं सकते हैं। देखिये, बालक प्रह्लाद विष्णुद्वेषी पिताके पुत्र थे, वे पागल हाथीके पैरके नीचे दबे, गहरे समुद्रमें डूबे, हुताशनके तीव्र तेजमें जले एवं काले साँपके तीक्ष्ण दंशनसे पीड़ित होकर भी हरिनाम लेते रहे—कभी हरिनामको नहीं छोड़ते ; किन्तु कितने ही पाखण्डी धर्म्म-समाजमें लालित-पालित एवं उपदेश प्राप्त होकर भी भगवान्‌के नाम उच्चारण करनेमें वृश्चिकदंशन (बिच्छू काटने) की तरह कष्ट अनुभव करते हैं। बुद्धदेवने तो अतुल साम्राज्य, अगणित वैभव, वृद्ध पितामाताका विमल-स्नेह, प्रेममयि पतिव्रता प्रणयिनी (स्त्री) का अनन्त प्रेम और शिशु-संतानके सुललित कण्ठकी तोतली बोली आदि समस्त धनोंकी उपेक्षा करके भी संन्यास ग्रहण किया था ; किन्तु हम तो अनन्त प्रकारकी निराशाओंमें सड़कर भी टूटे-फूटे झोपड़ेकी मायाका परित्याग नहीं कर सकते ! कोई कोई ईश्वर-सृष्ट जगत्‌में केवल वाक्छल और अर्थ विन्यासका उपादान ढूंढ़ते हैं ; कोई उसी जगत्‌में चिन्मयी महाशक्तिकी वैचित्रमयी लीलाएँ देखते हैं। कोलरिज साहब काव्य-ग्रन्थ पढ़कर कहते थे, कि—"Poetry has given me the habit of wishing to discover the **good** and the **beautiful** in all that meets and surrounds me." ऐसे ही दूसरे किसी एक प्रतिमा परायण

साहबने भी उसी काव्य-ग्रन्थको पढ़ करके कहा है, कि—"The end of Poetry is the elevation of the soul * * * the improvement and elevation of the moral and spiritual nature of man." इसका कारण क्या है ? कहना वृथा है, कि इन्द्रिय-शक्तिके भिन्नाभिन्न फलसे ऐसा हो जाता है। जिसने जितनी प्रतिभा और चिन्ताशक्तिके साथ जन्म ग्रहण किया है, उसके चित्तकी गति भी वैसी ही होगी। यह स्वतःसिद्ध बात है। अतएव नाना प्रकारके उज्र, वहाने निकालकर अपने अपने स्वभावको छिपाते हुए सर्वसाधारणकी आँखोंमें धूल झोंकनेसे अन्तमें आक्षेप ही सहन करने पड़ेंगे—इसमें कोई संदेह नहीं है।

अनेक फूलष्टाकिङ्ग धारी फेशनेवल फूल-बाबू यह कहा करते हैं, कि "धर्म्म कर्म्म करनेकी जब उम्र होगी, तभी वह किया जायगा," और फिर शास्त्रकी बातोंमें अपनी वात मिलाते हुए मुक्तिके विषयमें विशेष पंडिताई प्रकाशित करते हैं। क्योंकि उन्हें विश्वास है, कि जबतक शक्ति रहे, तबतक संसारमें मदन-मरणका अभिनय करो यानि संसारका खूब आनन्द लूट लो, पीछे जब इन्द्रियोंके ढीली पड़ जाने पर ईश्वर भजनमें शरीर असमर्थ हो जायेगा, तब अक्षमता के लिये हरिनाममें मतवाले हो जायेंगे। किन्तु धर्म्मकी क्या कोई अवस्था बँधी हुई है ? अथवा क्या मर्त्यजगतमें आते समय यम राजासे मौरूसी हकका पट्टा प्राप्त हो जानेसे "पञ्चाशोर्द्धे वनं व्रजेत" के वचन पर विश्वास रखकर निश्चिन्त हो सकते हो ? अरे ! जबकि क्षणभरके बाद ही क्या होनेवाला है यह तक समझना लोक-

लोचनकी दृष्टिके बाहर है, तब पचास वर्षकी आशा तो सर्वथा ही दुराशा मात्र होनी चाहिये। इन्द्रियोंके ढीली पड़ जाने पर जब हम मामूली सांसारिक काम करनेमें भी असमर्थ हो जायँगे तब भला, उस अनन्तके अनन्त भावको कैसे धारण कर सकेंगे? सद्यो विकशित (ताजी खिली हुई) फूलकी कली जैसी सुगन्धि (खुशबू) देती है, बासी फूलमें वैसी खुशबू पाना बहुत दूरकी बात है। विशेषतः यौवनके न रुकनेवाले प्रभावसे चित्तके एक बार यथेच्छाचारी (मन-मानी) हो जाने पर, तो फिर उसे अपने वशमें लाना साध्यातीत (न बन सकने योग्य) हो जाता है। इस विषयमें एक कहानी यहाँ दी जाती है—

किसी एक व्यक्तिने आजीवन चोरी करके जीवन-यात्रा सम्पन्न की ; लेकिन उसका लड़का अपने कर्म्मफलसे डिपुटि मजिष्ट्रेट बन गया। इस प्रकार जो भी लड़केकी यथेष्ट वेतनवाली नौकरी होनेसे उसके लिये संसारमें किसी भी बातका अभाव तो नहीं रह गया था ; तथापि वह (चोर) अपनी वृत्तिको छोड़ न सका! फलतः सर्वसाधारण लोग सर्वदा इस विषयमें नाना प्रकारके आन्दोलन— आलोचना करने लगे। तब एक दिन चोरको उसके पुत्रने कहा, कि "पिताजी! आप क्या खाने-पहननेको नहीं पाते, जो आज भी चोरी करते हैं? आपके सबबसे मैं शर्मके मारे लोक समाजमें मुंह नहीं दिखा सकता।"

पुत्रकी इस धमकीसे उसके सामने चोरने स्वीकार किया, कि "अब मैं फिर कभी चोरी न करूँगा।"

उस दिनसे वह दूसरेकी कोई चीज चोरी करके अपने घर तो न लाता, किन्तु फिर भी एक व्यक्तिकी चीज दूसरेके घर, दूसरेकी चीज तीसरेके घर अवश्य रख आता था। कुछ दिन पीछे यह बात भी सब जगह फैल गई। उसके लड़केने जब यह सुना तो पिताको खूब धमकाकर पूछा, कि "इस तरह उलट-फेर करनेका क्या मतलब है?"

तब चोरने जवाब दिया—"मैं अब चोरी तो नहीं करता, किन्तु चोरी न करनेसे मुझे रातको नींद ही नहीं आती और न किसी तरह शान्ति ही मिलती है; इसीलिये चोरी न करके एक व्यक्तिकी चीज दूसरेके घर डाल आनेसे ही मेरा जी थोड़ा बहुत खुश हो जाता है।" इस उत्तरको सुनकर बेचारा पुत्र लाचार हो गया। अस्तु

अतएव यौवनके आरम्भ-कालमें जबकि चित्तकी वृत्ति भली-भाँति खिलती है, तब दृढ़ अभ्यास द्वारा उसका संयम न करनेसे अन्तमें उसकी उच्छृङ्खल (शृङ्खल-रहित) गतिको रोकनेका प्रयत्न करना विडम्बना मात्र होता है। फिर भी, तुलसीदास और बिल्व-मङ्गलकी प्रतिभा तो सामान्य कर्म्मके आवरण (पर्दे) से ढँकी हुई थी, अतः उससे छुटकारा पाते ही तत्काल दौड़ कर वे धर्म्म-जगत्‌में महाजन (महात्मा) के पदपर अभिषिक्त हो गये। किन्तु कितने व्यक्ति ऐसे भाग्य लेकर संसारमें जन्म लेते हैं? अतएवः—

अशक्तस्तस्करः साधुः कुरूपा चेत् पतिव्रता।
रोगी च देवभक्तः स्यात् वृद्धवेश्या तपस्विनि॥

की तरह न बनकर समय पर सावधान होना मुख्य कर्त्तव्य है। अन्यथा अन्तस्तलको विषय-चिन्ता, कपट-भाव, कुटिलता, स्वार्थपरता, द्वेष एवं अहंभावसे परिपूर्ण करके इन्द्रियोंकी अक्षमता निवन्ध (प्रयोजन) के लिए माला-झोला लेकर लोक-समाजमें वैड़ालिक व्रत (विल्लीचाल) का अवलम्बन करनेसे हम कभी अन्तरके घन अन्तर्य्यामी पुरुषका साक्षात् लाभ नहीं कर सकते हैं।

पहले बताये हुए निर्लिप्त भावसे संसार-धर्म्मका पालन करके भगवान्‌को चित्त समर्पण कर सकने पर तो घर छोड़ने वाले साधु संन्यासीसे भी अधिक फल प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु हम दोनों ओर एक साथ संभाल नहीं सकते, क्योंकि संसार-धर्म्म छोड़ कर आत्मिय-स्वजनको शोक-सागरमें डुबा हमने एक किनारेका अवलम्बन किया है। जो इस तरह नियम पालन करके एवं सांसारिक कामोंमें रहकर भी सर्वदा इष्ट देवताका नाम स्मरण और उनके श्रीचरणोंका ध्यान कर सकते हैं, उनके लिये तो निःसंदेह सोनेमें सोहागा है। लेकिन लिखने-पढ़ने एवं बोलने और सुननेमें ये बातें जितनी सीधी जान पड़ती हैं, नियम पालन करना असलमें उतना सहज नहीं है। जो हो, योग-साधन करते करते दृढ़ अभ्यासके साथ अनुशीलन करनेसे सांसारिक-आसक्ति अवश्य मिट जायगी। तथापि योगाभ्यास आरंभ करना हो तो मामूली तौरसे कई एक—

विशेष नियमों

का पालन करना होगा ; नहीं तो योग साधन नहीं हो सकता। उनमें सबसे पहला विषय भोजनका है। क्योंकि भोजनकी चीजोंके साथ शरीरका विशेष सम्बन्ध है। फिर शरीर स्वस्थ न रहनेसे साधन-भजन नहीं बन पाता। इसीलिये शास्त्रमें कहा है, कि—

धर्म्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः।

योगशास्त्र।

धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों वस्तुओंको प्राप्त करना हो तो सर्वतोभावसे शरीर-रक्षा करना अत्यावश्यक कर्त्तव्य है। शरीर रोगग्रस्त या अकर्म्मण्य (निकम्मा) होनेसे साधन नहीं होने पाता ; किन्तु शरीर स्वस्थ रखना हो तो आहार के विषयमें विशेष सावधान होना चाहिए। जो चीज देह और मनको उन्नत करने वाली एवं मङ्गल-जनक है, वही चीज अच्छी और खाने योग्य है। जिस चीजके उदरस्थ होने पर देहमें कोई रोग पैदा नहीं होता और शरीर बलिष्ठ होता है, चित्तकी प्रसन्नता संसाधित होती है, धर्म्म-प्रवृत्तिका सम्प्रसारण (विस्तार) होता है, शौर्य्य, वीर्य्य, दया दाक्षिण्य प्रभृतिकी वृद्धि होती है, उसीको भोजनमें उपयोग करना चाहिये। केवल-मात्र इन्द्रिय-प्रीतिकर (इन्द्रियोंको तृप्त करने वाली) भोजनकी चीजोंका उपयोग करना, भोजनका श्रेष्ठ उद्देश्य नहीं है। जिससे इहकाल-परकालमें सुख मिलता है, इहकालमें रोग नहीं सताते एवं धर्म्मकी प्रवृत्तिका विकाश होता है, उन्हीं चीजोंका

भोजनमें उपयोग करनेसे पर-जीवनमें हम सुखी वन सकेंगे। असल वात तो यह है, कि खाने योग्य चीजोंके गुणके अनुसार मनुष्यका गुण वनना विगड़ता है। अतएव भोजनके विषयमें विशेप सावधान होना चाहिए। भोजनके सम्वन्धमें शास्त्रोंने यही कहा है, कि :—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

छान्दोग्योपनिषत्।

भोजनकी शुद्धिसे सत्त्वकी शुद्धि होती है, सत्त्वशुद्धि होने पर निश्चय स्मृति-लाभ होता है एवं स्मृतिलाभ होनेसे मुक्ति वहुत ही सुलभ हो जाती है। अतएव सभी तरहके यत्न और चेष्टा द्वारा आहार-शुद्धिके विषयमें विशेप सावधानी रखना चाहिए। सत्त्वगुण ही सवका श्रेष्ठ लक्ष्य होना चाहिए, सुतरां साधकगणको रजः तमोगुण विशिष्ट खाद्य-पदार्थ (भोजनकी चीज) कदापि भोजन नहीं करना चाहिये। चावल, पक्का केला, ईखकी शक्कर, दुग्ध और घी योगियोंका प्रधान खाद्य है।

वहुत ज्यादा नमकीन, वहुत ज्यादा कड़वा, वहुत ज्यादा खट्टा, वहुत ज्यादा गर्म, वहुत ज्यादा तीक्ष्ण, वहुत ज्यादा रूखी और जलन पैदा करनेवाली चीजें—प्याज, लहसुन, हींग, साग पात, दही, छांछ प्रभृतिका त्याग करना चाहिये। परिष्कृत (साफ), सुरस, स्नेह-युक्त (जैसा मक्खन आदि) और कोमल (मुलायम) चीजोंसे उदरका पौन हिस्सा पूर्ण कर चौथाई हिस्सा वायु आने जानेके लिये खाली रखना चाहिये।

सागमें वालशाक, कालशाक, परवरकी पत्ती, वथुआ और हिञ्चा (हरहुल)—इन पाँच किस्मका शाक योगीके खाने योग्य होता है। लाल मिर्च खाना ठीक नहीं है। रोज परिमित परिमाणसे (हिसाबसे) दूध और घी आदि तेजको वढ़ाने वाली चीजें भोजन करना चाहिये।

योग साधते समय अग्निसेवा, स्त्री-संग, ज्यादा घूमने फिरने, सूर्य्य-दर्शन, प्रातःस्नान, उपवास, गुरुभोजन एवं बोझ ढोने आदि किसी भी तरहसे शरीरको तकलीफ न पहुंचाना चाहिये।

. शराब पीना या कोई भी नशेकी चीज खाना ठीक नहीं है। भोजन करके या भूखे होकर, मलमूत्रका जोर रोक कर परिश्रान्त (थके-मांदे) या चिन्ता-युक्त होकर योगाभ्यास न करना चाहिये। योग क्रियाके पीछे मेहनतसे निकले हुये पसीनेसे हाथ पैर मल डालना चाहिये; नहीं तो शरीरका सारा धातु नष्ट हो जायगा।

पहले वायु-धारणा यानी वायु रोकनेका अभ्यास करते समय खूब थोड़ा थोड़ा वायु धारण करो, जिससे रोकनेके वाद दम न फूल चले। योग-साधन करते समय मन्त्र-जपादि ठीक नहीं है। उत्साह धैर्य्य, निश्चिन्त-विश्वास, तत्त्वज्ञान, साहस और लोकसङ्गका परित्याग—यही छः योग-सिद्धिके प्रधान कारण हैं।

आलस्य (सुस्ती) योग साधनमें एक वड़ा भारी विघ्न है; आलस्य छोड़कर साधन-कार्य्य करना आवश्यक है। योगशास्त्रका पाठ किंवा योगकी वातका अनुशीलन करनेसे योगमें सिद्धिलाभ नहीं होता। क्रिया ही सिद्धिका कारण है। मेहनत न करनेसे किसी

भी काममें सफलता नहीं मिलती है। महाजनों (महात्मा) की यही बात है, कि :—

"उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः ॥"

मनुष्य कोशिश न करनेसे कुछ भी लाभ नहीं कर सकता है। एक एक विषयमें सिद्धिलाभ करनेके लिये मानवको कितना यत्न, कितना क्लेश, कितना अनुष्ठान करना पड़ता है, कितने प्रकारका उपाय अवलम्बन करना पड़ता है ; वह सब केवल काम करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको ही मालूम है। अतएव सर्वदा आलस्य छोड़कर काम करना चाहिए ; साधन कार्य्यमें मेहनत न करनेसे फलका लाभ नहीं होता। एकाग्र चित्तसे नित्य नियमित रूपसे आगे कही जाने वाली किसी भी क्रियाका यथानियम अभ्यास करने पर प्रत्यक्ष फल लाभ करोगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।

योगाभ्यास करते समय अन्याय-पूर्वक दूसरेका धन उठा लेना, जीवोंके ऊपर हिंसा करना तथा उन्हें कष्ट देना, लोगोंसे द्वेष करना, अहंकार, कौटिल्य (कुटिलता), असत्य-भाषण एवं संसारमें अत्यासक्तिका अवश्य परित्याग करना चाहिए। दूसरे धर्म्मकी निन्दा भी न करना चाहिये। अपने ही धर्मका पक्षपात करना अच्छा नहीं है—धर्म्मके नाम पर गोँड़ामि* करनेसे महापातक लगता है। धर्म्मकी निन्दा नरकका कारण बनती है। सबको सोचना चाहिये, कि ईश्वरको कोई किसी भी नामसे पुकारे, या कोई

* गोड़ांमि उसे कहते हैं, जिसके चित्तमें ऐसा भाव हो कि सिर्फ अपना धर्म्म ही अच्छा है, दूसरेका धर्म्म खराब है।

किसी भी भावसे पुकारे अथवा किसी भी प्रकारका क्रियानुष्ठान करे, किन्तु उसका उद्देश्य क्या है ? कोई भी भगवान्‌के सिवाय मेरी या तुम्हारी उपासना तो नहीं करता है—इस बातको तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा। धर्म्ममें कोई श्रेष्ठता या नीचता यानी छोटा-बड़ापन नहीं है ; जो अपने धर्म्ममें रहकर अपने धर्म्मके नियमानुसार क्रियाका अनुष्ठान करता है, वही श्रेष्ठ है। इसीलिए गीताकी भगवदुक्ति है, कि :—

श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः परधर्म्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्म्मो भयावहः ॥

इस वाक्य पर दृढ़ रहो, किन्तु कभी तुम्हें दूसरे धर्म्मकी निन्दा नहीं करना चाहिये। महात्मा तुलसीदास बता गये हैं, कि :—

सबसे बसिये सबसे रसिये, सबका लीजे नाम।
हाँजी हाँजी करते रहिये बैठिये अपने ठाम ॥

सबके साथ बैठो, सबके साथ आनन्द करो, सबका नाम लो, सबको ही हाँजी, हाँजी कहो, लेकिन अपनी जगह पर बराबर डटे रहो यानी अपने धर्म्मके भावमें दृढ़ रहो।

योगियोंका शास्त्रपर वादानुवाद करना उचित नहीं है। इस शास्त्र या उस शास्त्रके नामपर अनेक पुस्तकें पढ़ना भी अच्छा नहीं है। क्योंकि शास्त्र अनन्त हैं, हमारी स्थूल बुद्धिसे शास्त्रोंकी आलोचना करने पर शास्त्रकी बात एक दूसरेसे अलग देख पड़ती है। किन्तु असलमें समझो तो सब शास्त्र और सर्व प्रकारकी साधनाका मुख्य उद्देश्य एक है एवं फल भी एक ही है। गुरुकी कृपाके बिना

प्रकृत ज्ञान न होनेपर केवल शास्त्रको पढ़नेसे वह समझमें नहीं आता है। शास्त्र पढ़कर केवल विराट तर्कजाल फैलाकर लोग व्यर्थ ही झक बाँधा करते हैं। किन्तु ऐसे पल्लव-ग्राही (थोड़े ज्ञानवाले) कभी सच्चा ज्ञान लाभ नहीं कर सकते। योगशास्त्रमें कहा है, कि :—

सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत् कार्य्यसाधनम्।
ज्ञानानां वहुता सेयं योगविघ्नकरी हि सा ॥

साधनके पथका सारभूत और कार्य-साधन करनेयोग्य उपयोगी ज्ञानलाभ करनेके लिये कोशिश करना चाहिये। इससे सिवाय ज्ञानियोंमें विज्ञ (ज्ञानी) वननेका छिछलापन योगमें विघ्न वढ़ाता है। अतएव—

अनन्तशास्त्रं वहुवेदितव्यं स्वल्पश्च कालो वहवश्च विघ्नाः।
यत्सारभूतं तदुपासितव्यं हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

इस महाजनके वाक्यानुसार ही लोगोंको काम करना चाहिये। इसीसे कहते हैं, कि हिन्दू शास्त्र अनन्त हैं, मुनि-ऋषि भी अनन्त हैं, लेकिन हमारी उम्र बहुत थोड़ी है ; सर्वदा सांसारिक कामोंकी झंझट वरावर लगी रहती है ; सुतरां एक व्यक्तिके जीवनमें समस्त शास्त्र पढ़ना एवं प्रकृत भाव ग्रहण करना असम्भव है। अतएव नाना शास्त्रों की आलोचनारूप खिचड़ी न पकाकर सव लोगोंके आदरणीय मानव-जीवनके उपदेष्टा एकमात्र धर्म्मज्ञानकी शेष शिक्षास्थल श्रीश्रीमद्भगवद्-गीताको पढ़ना चाहिये। यद्यपि गीताका प्रकृत अर्थ वतलानेवाले लोगोंका मिलना समाजमें सुलभ नहीं है, तथापि वारम्वार गीता पढ़ना एवं भक्तिशास्त्र पढ़ना सवका ही कर्त्तव्य है। लोकदिखावेके

लिये पाखण्ड करना एवं लोगोंको धोखा देनेके लिये छल कपट न करके पहले बताये हुये नियमोंका पालन करते हुए योगाभ्यासमें नियुक्त होनेसे धीरे-धीरे संसारासक्तिसे निवृत्त होकर चित्त लय होगा। मनोलय हो जाने पर फिर दूसरी किस चीजकी जरूरत है? अतुलज्ञानी तुलसीदासजीने कहा है :—

"राजा करले राज्यवश, युद्धकरे जय वीर।
आपन मनको वश करे, सोई जानो मीर॥"

वास्तवमें अपने मनको जय करके, उसे वशीभूत रखना बड़ी ही कठिन बात है ; जिन्होंने मनोजय किया है, उनका ही मानव-जीवन सार्थक समझना चाहिये। महात्मा कबीरजीने कहा है :—

तनथिर मनथिर वचनथिर, सुरत निरत थिर होय।
कहे कबीर इस पलकको, कलप न पावे कोय॥

अतएव साधकगणको योग साधते समय इन समस्त नियमोंका पालन करनेमें उपेक्षा न करनी चाहिये। दूसरी भी एक बात है, कि जो जिस भावसे साधन कार्यमें प्रवृत हो, वह उसे सर्वतोभावसे गुप्त रखे। कितने ही लोगोंका ऐसा स्वभाव है, कि वे अपनी बहादुरी बताकर लोक-समाजमें वाहवाही (शाबाशी) पाने एवं नाम-यश और मान-लाभके लिये अपने साधनकी बात सर्वसाधारणके सामने सुनाया करते हैं। और यदि किसी साधनका फल जरा-सामी समझ सके, कि तत्काल लोगोंके सामने उसे प्रकट कर देते हैं। बेशक, यह बड़ी ही बेवकूफी है। क्योंकि इससे साधकका ही विशेष नुकसान होता है। योगेश्वर महादेवने कहा है :—

योगविद्या परा गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम् ।
देवी वीर्य्यवती गुप्ता निर्वीर्य्या च प्रकाशिता ॥

योगशास्त्र ।

जो योगी योग सिद्धिकी वासना रखता है, वह अत्यन्त गुप्त भावसे साधन कार्य्य सम्पादन करे। यह बात किसीके सामने प्रकट न करके गुप्त भावमें रखनेसे वीर्य्यवती (शक्तिशालिनी) होती है, किन्तु प्रकट कर देनेसे यही निर्वीर्य्य और निष्फल हो जाती है। इसीलिये जो जिस भावसे साधन करे, किम्वा साधन-फलका उसे जो-कुछ अनुभव होता रहे, कदापि प्राणका अन्त होनेपर भी उसे प्रकाशित न करना चाहिये। बल्कि फलाफल भगवान्को अर्पण करके उसके श्रीचरणकमलोंपर पूरा भरोसा रखते हुए आत्मसमर्पण करके साधनकार्यमें लगे रहना चाहिये। भगवान्ने अपनी गीतामें कहा है :—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

गीता १८।६६ ।

अतएव सर्वतोभावसे उन्हीं कृष्ण-चरणोंमें * शरणापन्न

---

* कृष्णका नाम लिखा है, इससे कोई किसी साम्प्रदायिकताका भाव लेकर किसी प्रकारके कुसंस्कारके वशीभूत न होवे। मैंने नीचे लिखे हुवे अर्थपर कृष्णशब्द प्रयोग किया है। जैसे :—

कृषिर्भू वाचकः शब्दो नश्च निर्वृत्तिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ किम्वा कर्षयेत सर्वं जगत् कालरूपेण यः स कृष्णः। किम्वा

(शरणमें जाकर) होकर भक्ति और विश्वासके साथ साधनमें प्रवृत्त होनेसे शीघ्र ही सफलता लाभ होती है। क्योंकि उसके चिन्तनसे उसकी भास्कर ज्योतिः हृदयमें पड़ते हुवे दिव्यज्ञानका उदय होकर मुक्तिका पथ सुगम (सरल) हो जायगा। यह वात स्मरण रहे, इसलिये फिर कहता हूं, कि :—

ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः।
अब्दादूर्द्ध भवेत् सिद्धो नात्र कार्य्या विचारणा॥
गोरक्ष संहिता॥ ४६॥

योगिगण ब्रह्मचारी वनें यानी उन्हें स्त्री-संगका परित्याग करना चाहिये। मिताहारी यानी उन्हें ज्यादा भोजन न करना चाहिये, त्यागी यानी वे किसी चीजके लिये लालच न रखें। ऐसी अवस्थामें रहकर योगाभ्यास करनेसे एक वर्षमें सिद्धि लाभ होता है।

कृषिश्च परमानन्दो नश्च तद्दास्य कर्म्मणि इति कृष्णः। दूसरी वात यह भी मनमें याद रखो—

काली वलो कृष्ण वलो किछुतेई क्षति नाई।
चित्त परिष्कार रेखे एकमने डाका चाई॥

यानि तुम काली वोलकर पुकारो या कृष्ण वोलकर पुकारो इसमें कुछ भी नुकसान नहीं है, किन्तु चित्त निर्म्मल रखकर एक मनसे पुकारना चाहिये। अथवा—

राम चहे रव ही कहो, काहूमें क्षति नाहिं।
निर्म्मल चित्त बनायके, भक्ति दिखावहु ताहि॥

केशभस्मतुषाङ्गारकीकसादिप्रदूषिते
नाभ्यसेत् पूतिगन्धादौ न स्थाने जनसंकुले ।
न तोयवह्निसामीप्ये न जीर्णारण्यगोष्ठयोः
न दंशमशकाकीर्णे न चैत्ये न च चत्वरे ॥

स्कन्दपुराण ।

अतएव ऐसे योगविघ्नके स्थान परित्याग करके जहाँतक हो सके गुप्त (निर्जन) स्थानमें एवं समस्त इन्द्रिय सुखी रहें तथा अन्तःकरण प्रसन्न रहे, ऐसे स्थानको ताजे गोबरसे लीपलाप करके कुशासन या कम्बलासन किम्वा व्याघ्र-मृगादिके चर्म्म (खालपर) उत्तर या पूर्वमुख बैठ पुष्प, चन्दन और धूपादि सुगन्धसे आमोदित (सौरभ युक्त) करके अनन्य मनसे निश्चिन्त चित्त होकर योगाभ्यास करे।

आसन साधन ।

स्थिर भावसे बैठनेका नाम आसन है। योगशास्त्रमें चौरासी लाख आसन बताये गये हैं ; उनमें पद्मासन श्रेष्ठ है। यथा :—

आसनं पद्मकाद्युत्तमम् । गारुड़ ।४१ ।

पद्मासन—

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामन्तथा ।
दक्षोरूपरि चैव बन्धनविधिं कृत्वा कराभ्यां दृढं ॥

तत्पृष्ठे हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत् ।
एतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥
गोरक्ष-संहिता ।

बायीं जांघपर दाहना पैर एवं दाहनी जांघपर बायां पैर रखकर, दोनों हाथ पीठकी ओर घुमा बायें हाथसे बायें पैरका अंगूठा एवं दाहिने हाथसे दाहने पैरका अंगूठा पकड़ना चाहिये और छातीमें ठोढ़ी टिकाकर नाककी नोकपर दृष्टि-स्थापन पूर्वक बैठनेका नाम पद्मासन है ।

पद्मासन दो प्रकारके हैं ; यथा—मुक्त और बद्ध । उपर्युक्त नियमसे बैठनेको बद्ध-पद्मासन कहते हैं एवं हाथसे पीठकी ओर पैरका अंगूठा न पकड़ दोनों जांघोंपर दोनों हाथ चित् रखकर बैठनेका नाम मुक्त-पद्मासन है ।

पद्मासन लगानेसे निद्रा, आलस्य, जड़ता प्रभृति देहकी ग्लानि निकल जाती है । पद्मासनके प्रभावसे कुण्डलिनी चैतन्य हो जाती है एवं दिव्य ज्ञान मिलता है । पद्मासनमें बैठकर दाँतकी जड़में जीभकी नोक जमानेसे सब बीमारी छूट जाती है ।

सिद्धासन —

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसेत्
मेढ्रे पादमथैकमेव हृदये धृत्वा समं विग्रहम् ।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन् भ्रुवोरन्तरं
चैतन्याख्यकपाटभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥
गोरक्ष संहिता ।

योनि स्थानको वाम-पदके मूलदेशसे दबा और एक चरण मेढ्रदेशमें दृढ़ रूपसे आबद्ध कर एवं हृदयमें ठोढ़ी जमाते हुए देहको बराबर रख दोनों भौंहोंके मध्यदेशमें दृष्टि स्थापन-पूर्वक यानी शिवनेत्र होकर निश्चल भावसे बैठनेका नाम **सिद्धासन** है।

सिद्धासन सिद्धिलाभके लिये सहज और सरल आसन है। सिद्धासनका अभ्यास करनेसे अति शीघ्र योगकी निष्पत्ति मिलती है। इसका कारण यही है, कि लिङ्गमूलमें जीव और कुण्डलिनी शक्ति अवस्थित है। सिद्धासनके द्वारा वायुका पथ सरल और सहजगम्य हो जाता है। इससे स्नायुके विकाश और समस्त शरीरकी बिजलीके लिये चलने-फिरनेका सुभीता होता है। योग-शास्त्रमें कहा है, कि सिद्धासन मुक्तिवाले दरवाजेके किवाड़ खोलता है एवं सिद्धासनसे आनन्दकारी उन्मनी-दशा मिलती है।

स्वस्तिकासन—

> जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे।
> समकायः सुखासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते॥
>
> शिव संहिता।

जानु और ऊरु—इन दोनोंके बीच दोनों पैरके तलवोंको अच्छी तरह संस्थापन पूर्वक समकायविशिष्ट होकर सुखसे बैठनेका नाम **स्वस्तिकासन** है। स्वस्तिकासन लगाकर वायु साधन करनेसे साधकको थोड़े समयमें ही वायुकी सिद्धिलाभ होती है एवं वायुके साधनसे उत्पन्न व्यभिचारमें भी किसी प्रकारकी बीमारी आक्रमण नहीं कर सकती।

इन तीन प्रकारके आसनोंके सिवाय भद्रासन, उग्रासन, वीरासन, मण्डूकासन, कूर्म्मासन, कुक्कुटासन, गुप्तासन, योगासन, शवासन, सिंहासन, मयूरासन आदि अनेक प्रकारके आसन प्रचलित हैं। किन्तु अनेक प्रकारके आसनोंका अभ्यास करके समय नष्ट करनेका कोई प्रयोजन नहीं है; उपर्युक्त तीन आसनोंमें जिसे जिस आसनका सुभीता हो, उसे उसी आसनका अवलम्बन करके योगाभ्यास करना चाहिये।

आजकल पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे चौंधियाए हुए लोगोंमेंसे कितने ही आसनके नामपर हँस कर डवाँडोल हो जाते हैं। वे कहते हैं, कि "इस तरह न बैठनेसे क्या साधन नहीं बनता? हम अपनी इच्छाके अनुसार बैठकर साधन करेंगे, इतने बखेड़ेकी क्या जरूरत है?" किन्तु इसमें भी कुछ रहस्य है, क्योंकि भिन्न-भिन्न भावसे बैठनेसे ही भिन्न भिन्न चिन्ता-वृत्तिकी ऐकान्तिकता उत्पन्न होती है। ऐसे अनेक लोग देखे होंगे, कि जो दुःखकी चिन्ता या निराशामें गाल पर हाथ रखकर बैठते हैं। उस समय वैसी अवस्थामें बैठना मानो स्वाभाविक एवं वैसी चिन्ताके उपयोगी ही होता है। सिद्ध योगीगण कहते हैं, कि "विभिन्न साधनामें विभिन्न आसनसे शरीर और मनका विशेष लगाव रहता है।" फिर दूसरी बात यह है कि योग साधन करते समय दीर्घकाल तक एक ही भावसे बैठे रहना योगाभ्यासका एक प्रधान-तम (सबसे बड़ा) काम है; लेकिन वह ऐसा बन नहीं पड़ता, इसीलिये आसनकी जरूरत होती है। योगाभ्यासके समय योगीकी देहमें नई क्रिया उत्पन्न होती हैं

एवं स्नायुप्रवाह भी नये पथमें चलता है ; और वह सारा मेरुदण्ड या रीढ़के बीचमें ही होता है। सुतरां मेरुदण्डको जिस भावसे एवं जिस अवस्थामें रखनेसे वह क्रिया उत्तमरूपसे सम्पन्न होती है, वह सभी आसन प्रणालीमें विधिसे वतया गया है। मेरुदण्ड, वक्षोदेश यानी छाती, ग्रीवा यानी गला, मस्तक और पञ्जरास्थि—ये सब जिस भावमें रखनेकी आवश्यकता है, वह सब इन आसनों पर वैठनेके नियमोंमें ही ठीकसे वर्णन किया गया है। इसीलिये आसन करने पर उसके लिये दूसरी और किसी भी प्रकारकी शिक्षा लेनेका प्रयोजन नहीं होता है। विशेपतः आसन-सिद्धि करना ऐसा कोई कठिन काम भी नहीं है। यत्न-पूर्वक केवल मात्र थोड़े दिन अभ्यास करनेसे ही साधक उसमें सिद्धिलाभ कर सकते हैं।

उपर्युक्त तीन प्रकारके आसनोंमेंसे जिसे जैसा आसन लगानेमें किसी प्रकारका कष्ट अनुभव न हो, उसे उसी प्रकारके आसनका ही अभ्यास करना चाहिये। आसन लगाकर वैठनेसे जव शरीरमें वेदना (दर्द) वा किसी प्रकारका कष्ट अनुभव न होकर एक प्रकारके आनन्दका उदय होगा, तभी समझना चाहिये, कि आसनकी सिद्धि मिली है। अच्छी तरह आसनका अभ्यास होने पर ही योगसाधन शुरू करना चाहिये।

तत्व-विज्ञान

एकमात्र देवदेव महेश्वर निराकार तथा निरञ्जन है। उसीसे ही आकाश उत्पन्न हुवा है। इसके वाद उस आकाशसे वायु, वायुसे

तेज, तेजसे जल और जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है। ये पाँच महाभूत पञ्चतत्त्वके नामसे कहे जाते हैं। उक्त पञ्चतत्त्वसे ही ब्रह्माण्ड परिवर्तित और विलयको प्राप्त होता है एवं उससे ही फिर उत्पन्न हुवा करता है ; यथा—

पञ्चतत्त्वाद् भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं विलीयते।
पञ्चतत्त्वं परं तत्त्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥

ब्रह्मज्ञान-तन्त्र।

पञ्चतत्त्वसे ही ब्रह्माण्ड-मण्डलकी सृष्टि हुई है एवं इस तत्त्वमें ही वह लय (नाश) को प्राप्त होगा। पञ्चतत्त्वके आगे जो परम-तत्त्व है, उसीको तत्त्वातीत निरञ्जन कहते हैं। मानवशरीर पञ्चतत्त्वसे ही उत्पन्न हुवा है। मिट्टीसे अस्थि, मांस नाखून, त्वक (खाल) और रोआँ—इन पाँचकी उत्पत्ति हुई है ; जलसे शुक्र (वीर्य्य) रक्त, मज्जा, मल, मूत्र—ये पाँच ; वायुसे धारण करना, चलना, फेंकना, सिकोड़ना और फैलाना—ये पाँच ; अग्निसे निद्रा, भूख, प्यास, क्लान्ति (थकावट) और आलस्य (सुस्ती)—ये पाँच एवं आकाशसे काम, क्रोध, लोभ, मोह और लज्जा उत्पन्न हुए हैं।

आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श (छूना), अग्निका गुण रूप, जलका गुण रस एवं पृथ्वीका गुण गन्ध है। इसमें भी फिर आकाशमें शब्द सिर्फ एक ही गुण विशिष्ट है ; वायुमें शब्द, और स्पर्श—ये दोनों गुण विशिष्ट हैं ; अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन गुण विशिष्ट हैं ; जलमें—शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण विशिष्ट हैं ; एवं पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन

पञ्चगुणोंसे संयुक्त है। आकाशका गुण कानसे, वायुका गुण त्वचासे अग्निका गुण आँखसे, जलका गुण जिह्वासे (जीभसे) एवं पृथ्वीका गुण नाकसे मालूम पड़ता है।

पञ्चतत्त्वमये देहे पञ्चतत्त्वानि सुन्दरि।
सूक्ष्मरूपेण वर्त्तन्ते ज्ञायन्ते तत्त्वयोगिभिः ॥

पवन-विजय स्वरोदय।

इस पंचतत्त्वमय देहमें पंचतत्त्व सूक्ष्मरूपमें विराजित हैं। तत्त्ववित् (तत्त्व समझनेवाले) योगीगण उनके सम्बन्धमें समस्त बातें जानते हैं। गुह्यदेशमें मूलाधार-चक्र पृथ्वी तत्त्वका स्थान है, लिङ्गमूलमें स्वाधिष्ठान-चक्र जल तत्त्वका स्थान है, नाभिमूलमें (तोन्दीकी जड़में) मणिपुर-चक्र अग्नितत्त्वका स्थान है ; हृद्देशमें (छातीमें) अनाहत-चक्र वायु तत्त्वका स्थान है एवं कण्ठदेशमें विशुद्ध-चक्र आकाश-तत्त्वका स्थान है। सूर्य्योदयके समयसे लेकर यथाक्रम अढ़ाई घड़ी यानी एक घंटेके हिसाबसे एक एक नथनेसे प्राणवायु चलता है। वायें या दाहिने नथनेसे साँस चलते समय यथाक्रम (सिलसिलेसे) इन पञ्चतत्त्वोंका उदय होता है। तत्त्ववित् योगीगण उसे प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

तत्त्व-लक्षण

पञ्चतत्त्वके आठ प्रकारके लक्षण स्वरशास्त्रमें लिखे गये हैं। पहला तत्त्व-संख्या, दूसरा श्वास-सन्धि, तीसरा स्वरचिह्न, चौथा स्थान,

पाँचवां तत्त्वका वर्ण, छठां परिमाण (माप), सातवां स्वाद एवं आठवा गति।

मध्ये पृथ्वी ह्यधश्चापश्चोर्ध्वं वहति चानलः।
तिर्य्यग् वायुप्रचारश्च नभो वहति संक्रमे॥

स्वरोदय शास्त्र।

यदि नथनेके वीचसे श्वास-प्रश्वास आय-जाय, तो पृथ्वी तत्त्वका उदय हुवा समझना चाहिये। इसी तरह नथनेके नीचेसे निःश्वास चलनेसे जल-तत्त्वका, ऊपरसे चलनेसे अग्नि तत्त्वका, बगलसे चलनेसे वायु-तत्त्वका एवं नथनेकी सब जगह छूते हुये घूमकर निःश्वास वायु चलनेके आकाश-तत्त्वका उदय हुवा समझना चाहिये।

माहेयं मधुरं स्वादु कषायं जलमेव च।
तिक्तं तेजो वायुरम्ल आकाशः कटुकस्तथा॥

स्वरोदय शास्त्र।

यदि मुहमें मीठा स्वाद अनुभव हो, तो पृथ्वी-तत्त्वका, कषाय (कसैले) स्वादसे जल-तत्त्वका, तिक्त (तीते) स्वादसे अग्नि-तत्त्वका, अम्ल (खट्टे) स्वादसे वायु-तत्त्वका एवं कटु (कड़वे) स्वाद मालूम होने पर अकाश-तत्त्वका उदय हुवा समझना चाहिये।

अष्टांगुलं वहेद्वायुरनलश्चतुरंगुलम्।
द्वादशांगुल माहेयं षोड़शांगुल वारुणम्॥

स्वरोदय शास्त्र।

जब वायु-तत्त्वका उदय होता है, तब निःश्वास वायुका परिमाण (माप) आठ अंगुल होता है। अग्नितत्त्वमें चार अंगुल, पृथिवी-

तत्त्वमें बारह अंगुल, जल-तत्त्वमें सोलह अंगुल एवं आकाश तत्त्वमें बीस अंगुल सांसकी वायुका परिमाण होता है।

आपः श्वेतः क्षितिः पीता रक्तवर्णो हुताशनः।
मारुतो नीलजीमूत आकाशो भूरिवर्णकः॥

स्वरोदय शास्त्र।

पृथिवी-तत्त्व पीत यानी पीले रङ्गका, जल-तत्त्व श्वेत वर्ण, अग्नि-तत्त्व रक्त यानी लाल वर्ण, वायु-तत्त्व नीले बादल जैसा और आकाश-तत्त्व नाना प्रकारके वर्णयुक्त होता है।

चतुरस्रं चार्द्धचन्द्रं त्रिकोणं वर्त्तुलं स्मृतम्॥
विन्दुभिस्तु नभो ज्ञेयमाकारैस्तत्त्व लक्षणम्॥

स्वरोदय शास्त्र।

दर्पण यानी आईनेके ऊपर सांस छोड़नेसे जो भाफ निकलती है, उसका आकार (स्वरूप) चौकोना होनेसे पृथिवी-तत्त्वका, आधे चन्द्रमा-जैसी होनेसे जल-तत्त्वका, तिकोना होनेसे अग्नि-तत्त्वका, गोल होनेसे वायु-तत्त्वका एवं बूंद-बूंद जैसा देख पड़नेसे आकाश-तत्त्वका उदय हुवा है, ऐसा समझना चाहिये।

मानवकी देहमें जब जिस नाकसे सांस चलती है, तब उसी क्रमसे उपर्युक्त पञ्चतत्त्वोंका उदय हुआ करता है। कब किस तत्त्वका उदय होता है, इसका ज्ञान प्राप्त कर एवं तत्त्वके गुणादि समझ कर उस तत्त्वके अनुकूल गमन (यात्रा), मुकद्दमा व्यवसायादि जिस किसी प्रकारके काममें हाथ बटावेंगे, उसमें सिद्धिलाभ अवश्य होगा। किन्तु भगवान्‌के दिये हुवे, ऐसे सहज उपाय हम नहीं जानते

हैं, इसीलिये तो हमारे काम नष्ट हो जाते हैं, आशा टूट जाती है एवं मनस्ताप (मनमें जलन) भोग करना पड़ता है। किस तत्त्वके उदयमें किस तरह हाथ बढानेसे उसमे सफलता मिलती है, इस विषयका प्रकाश करना इस पुस्तकका प्रतिपाद्य (वास्तविक) विषय नहीं है ; अतएव विषय बढ़ जानेके डरसे कुछ नहीं लिखा है।

इन पञ्चतत्त्वोंका साधन कर लेनेसे सब तरहके साधन कार्यों में सिद्धिलाभ होता है एवं साधक बीमार नहीं होता और बहुत दिन जीता रहता है। मोटी बात यह है, कि तत्त्वसाधनमें कृतकार्य्य होनेसे शारीरिक, वैषयिक और पारमार्थिक सभी कामोंमें सुख और सिद्धिलाभ होता है।

तत्त्व-साधन

दोनों हाथके दोनों अंगूठेसे कानके दोनों छेद, बीचकी दोनों अंगुलियोंसे दोनों नथने, दोनों अनामिका और दोनों कनिष्ठा अंगुलियोंसे मुंह एवं दोनों तर्ज्जनीसे दोनों आँख बन्द करने पर, यदि पीला रंग देख पड़े, तो पृथिवी-तत्त्वका, सफेद रङ्ग देख पड़नेसे जल तत्त्वका, लाल रङ्ग देख पड़नेसे अग्नि-तत्त्वका, श्याम (सांवला) रङ्ग देख पड़नेसे वायु-तत्त्वका एवं बूंद-बूंद नाना प्रकारका रङ्ग देख पड़नेसे आकाश-तत्त्वका उदय हुवा है, ऐसा समझना चाहिये।

एक पहर रात रह जाने पर जमीन पर दोनों पैर पीछेको घुमाओ और उसको दबा कर बैठ जाओ। पीछे दोनों हाथ उलटा

कर दोनों ऊरूपर रखो ; अर्थात् ऊरूपर दोना हाथ ऐसे चित् रखने होंगे, जिसमें उङ्गलीकी नोक पेटकी ओर रहे। इस तरह बैठ कर नाककी नोकपर दृष्टि जमाने और श्वास-प्रश्वासका लक्ष्य रख एक मनसे (स्थिर मनसे) क्रमशः पञ्च-तत्त्वका ध्यान करना चाहिये। ध्यान यथा—

पृथ्वी-तत्त्वका ध्यान—

लं बीजां धरणीं ध्यायेत् चतुरस्रां सुपीतभाम्।
सुगन्धां स्वर्णवर्णत्वमारोग्यं देहलाघवम्॥

'लं' बीज पृथ्वी-तत्त्वके ध्यानका मंत्र है। इस बीजको उच्चारण करते हुवे इस तरह पृथ्वीका ध्यान करना होगा ; यथा—यह तत्त्व खूब पीले रङ्गका, सोने—जैसा लावण्य-संयुक्त (सुन्दरतासे भरा हुआ), चौकोन विशिष्ट, उत्तम् गन्ध-युक्त (खुशबूदार) एवं आरोग्य तथा देहको हलका बनाने वाला है।

जल-तत्त्वका ध्यान —

वं बीजं वारुणं ध्यायेदर्द्धचन्द्रं शशिप्रभम्।
क्षुत् पिपासासहिष्णुत्वं जलमध्येषु मज्जनम्॥

'वं' बीज जल-तत्त्वके ध्यानका मन्त्र है। इस बीजको उच्चारण करते हुवे इस तरह जलतत्त्वका ध्यान करना चाहिये ; यथा—इस तत्त्वकी आधे चन्द्रमा जैसी आकृति विशिष्टा है, और चन्द्रमाकी भाँति उज्ज्वल प्रभा-युक्त एवं भूख-प्यासको सहन करनेवाला और जलमें डूबनेकी शक्तिसे भरा हुआ है।

रोज पहर भर रात रहते उठकर जमीन पर बैठ प्रातःकाल पर्य्यन्त अच्छी तरहसे ध्यान लगाने पर छः महीनेमें अवश्य ही तत्त्वकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। तब दिन रातके बीचमें अपने शरीर पर कब किस तत्त्वका उदय होता है, वह जब चाहोगे, बड़ी आसानीसे प्रत्यक्ष देख सकोगे ; एवं शरीर स्वस्थ रखकर सांसारिक, वैषयिक कामोंमें भी सफलता प्राप्त कर सकोगे। तत्त्वमें सिद्धिलाभ होनेसे लययोग एवं अन्याय योग-साधन विशेष सहज और सुगम आसान हो जाते हैं। आकाश तत्त्वके उदयमें सांसारिक कार्य्यादि न करके योगाभ्यास करना चाहिये।

तत्त्व साधन करते समय किसी प्रकारका योग साधन भी कर सकते हैं। अतएव तत्त्वका साधन साधते समय चुपचाप न बैठकर किसी प्रकारका योग साधन करना भी कर्त्तव्य है।

तस्य रूपं गतिः स्वादो मण्डलं लक्षणन्त्विदम्।
यो वेत्ति वै नरो लोके स तु शूद्रोऽपि योगवित्॥
पवन-विजय-स्वरोदय।

इस तरह जो व्यक्ति सब तत्त्वके रूप, गति, स्वाद, मण्डल और सारे लक्षण जानता है, वह शूद्र होनेपर भी योगी नामसे पुकारा जा सकता है।

नाड़ी-शोधन।
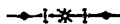
शरीरमें रहनेवाली सब नाड़ियाँ मलादिसे खराब रहती हैं, और नाड़ीका शोधन (साफ) न करनेसे वायु नहीं रुक सकता। सुतरां

योग साधन आरम्भ करनेसे पहले नाड़ी-शोधन करना चाहिये। हठयोगमें षट्कर्म्म द्वारा (छः कामसे) शरीर शोधन करनेकी व्यवस्था है। यथा—

> धौतिर्वस्तिस्तथा नेति लौलिकिस्त्राटकस्तथा।
> कपालभातिश्चैतानिषट्कर्म्माणि समाचरेत्॥
>
> गोरक्ष संहिता। ४अः

धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति—इन छः तरहकी बाह्य (ऊपरी) क्रियाओंसे शरीर शोधन करनेकी व्यवस्था है, लेकिन ये सब गृहत्यागी साधु संन्यासीसे ही बन पड़ती हैं, सर्वसाधारणके लिये ये बहुत ही मुशकिल हैं। विशेषतः ये उपर्युक्त रूपसे अनुष्ठित न होने पर नाना प्रकारके दुःसाध्य (कठिनाईसे) दूर होनेवाले रोगकी उत्पत्ति होनेकी सम्भावना है। परमयोगी शङ्कराचार्यने भीतरी प्रयोगसे जैसी नाड़ी-शोधनकी व्यवस्था बताई है, उसी नियमको मैं भी यहाँ लिखता हूँ। वही सबके लिये सुलभ और सुगम है।

पहले आसनका अभ्यास करना पड़ता है, आसनमें सिद्धिलाभ हो जाने पर नाड़ी-शोधन शुरू करना चाहिये।

स्थिरभावसे सुखासनमें बैठ सीधे हाथके अंगूठेसे दाहने नथनेको कुछ दबा बायें नथनेसे जहाँतक हो सके वायुको खींचे एवं जरा-सी देर भी न ठहर कर अनामिका और कनिष्ठा उङ्गलीसे बायें नथनेको बन्द कर दाहिने नथनेसे वायुका रेचन करे यानी वायुको निकाल दे; फिर दाहिने नथनेसे वायु खींचकर यथाशक्ति बायें नथनेसे

निकाल दे, लेकिन खींचनेका काम पूरा होते ही उसी वक्त वायुको निकाल देना चाहिये, जरा-देर भी न रोकना चाहिये। पहले अभ्यास करते समय उपर्युक्त क्रिया एक वार हिसावसे तीन वार करनी चाहिये। इसके वाद तीन वार अच्छी तरहसे अभ्यास हो जाने पर पाँचवार, फिर सातवार इस प्रकार वढ़ाना चाहिये।

सारे दिन रातके वीचमें इसी तरह एकवार उषःकाल एकवार दोपहरमें एकवार सन्ध्याको और एक वार अर्द्ध रात्रिके समय—कुल चार वार यह काम करना चाहिये। रोज नियमसे चार वार यत्नके साथ अभ्यास कर सकने पर एक महीनेके भीतर ही सिद्धि मिलेगी, किसी-किसीको डेढ़ या दो महीने भी लग सकते हैं।

नाड़ी-शोधनमें सिद्धि लाभ हो जानेसे देह खूव हल्की मालूम पड़ेगी; आलस्य, काहिली प्रभृति सव दूर हो जायेंगे। कभी कभी आनन्दसे मन उभर उठेगा एवं समय समय पर खुशवूसे नाक भर जायेगी। यह सव लक्षण प्रकट होनेपर समझना चाहिये, कि नाड़ी-शोधनमें सिद्धि मिल गई है। इसके वाद आगे वताये किसी भी साधनमें नियुक्त होना चाहिये।

मन स्थिर करनेका उपाय।

मन स्थिर न होनेसे कोई काम ही नहीं वनता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम और भूचरी, खेचरी मुद्रादि जो कुछ अनुष्ठान हैं,

समीका उद्देश्य यह है, कि चित्त वृत्तिको रोककर मनको वशमें किया जाय। मतवाले पागल हाथी जैसे प्रमत्त (पागल-सा) मनको वशीभूत करना भी बहुत ही मुशकिल काम है ; लेकिन इसके लिये उपाय अवश्य हैं।

जिसे जिस आसनका अभ्यास हो वह उसी आसनको लगाकर मस्तक, गर्दन, पीठ और उदर बराबर सीधे रख अपने शरीरको सीधा करके बैठे। इसके बाद नाभिमण्डलमें (तोंदीकी जगह) दृष्टि जमाकर कुछ देर तक पलक न मारे। नाभिस्थानमें दृष्टि और मन रखनेसे निःश्वास धीरे धीरे जितना कम पड़ता जायगा, मन भी उतना ही स्थिर होता जायगा। इसी भावसे नाभिके ऊपर दृष्टि और मन लगाकर बैठनेसे कुछ दिन बाद मन स्थिर होगा। मन स्थिर करनेका ऐसा सरल उपाय दूसरा और नहीं है। अपिच—

यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्तत्र दर्शनात्।
मनसो धारणञ्चैव धारणा सा परा मता॥

त्रिपञ्चांग योग।

इष्टदेवकी चिन्ता या किसी ध्यान-धारणामें मन नियुक्त करते समय यदि नाना विषयोंमें विक्षिप्त (चंचल) होनेके कारण चित्त स्थिर न कर सको, तो मन जिस विषयमें दौड़े, उसी विषयको आत्मानुभावमें समरस (बराबर-रस) ज्ञान करते हुए सर्वत्र इष्टदेव या ब्रह्ममय विचारकर चित्तमें धारणा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे विषय और इष्टदेवता किम्वा विषय और ब्रह्म अभिन्न हैं—ऐसा मालूम होनेपर चित्तकी धारणा बढ़कर बहुत ही जल्दी काम निकल

सकता है। इस उपायके अतिरिक्त चित्तको जय करनेकी सीधी राह एवं सीधा उपाय और कुछ भी नहीं है। जो व्यक्ति अपनेको और जगत्‌की सब चीजको इष्टदेवसे भिन्न नहीं देखता एवं उसीको ही अद्वितीय ब्रह्म-स्वरूप समझता है, मुक्ति उसके हाथ आ जाती है। इन दो उपायके अतिरिक्त—

त्राटक योग

का अभ्यास करनेसे भी सहजमें ही मन स्थिर होता है एवं नानाप्रकारकी शक्तिका लाभ होता है; इसका अभ्यास करना भी सीधा ही है। यथा—

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
यावदश्रुनिपातश्च त्राटकं प्रोच्यते बुधैः॥

स्थिर भावसे सुखासनमें बैठकर धातु या पत्थरकी बनी हुई किसी सूक्ष्म चीजपर लक्ष्य करके निर्निमेष यानी बिना पलक मारे देखता रहे। इस तरह टकटकी बाँधते समय शरीर न हिले, मन किसी प्रकार चञ्चल न होवे—इस तरह जब तक आँखसे आँसू न गिरे, तब तक बराबर देखता रहे। अभ्यास करने पर बहुत देर तक इस तरह टकटकी बाँधनेकी शक्ति पैदा होगी।

दोनों भौंहोंके बीचवाले बिन्दु-केन्द्रमें दृष्टि-पूर्वक एकाग्र बन जबतक आँखसे जल न आवे, तबतक दृष्टि लगाकर वहाँ देखनेसे

धीरे धीरे दृष्टि (नजर) उसी स्थान पर जम जायगी। ऐसा होनेपर त्राटक सिद्ध हो जाता है।

त्राटकमें सिद्धि मिलनेसे आँखके दोष (बुराइयाँ) मिटते हैं; निद्रा, तन्द्रा आदि काबूमें आती है एवं आँखकी रोशनी निकालनेकी राह विशुद्ध हो जाती है। पाश्चात्य विज्ञानमें जो मेस्मेरीजम् (mesmerism) है, वह त्राटक योगकी ही सिर्फ एक झलक मात्र है। त्राटक-योगमें सिद्धि लाभ होनेसे, मेस्मेराइज़ बड़ी आसानीसे कर सकते हैं। फिर भी पाश्चात्य मेस्मेरिजम् और त्राटक-योगमें बहुत कुछ अन्तर है। क्योंकि, मेस्मेराइज़ करने वाला नहीं जानता कि किससे क्या होता है; किन्तु त्राटक-योगी मोहिष्णु (जिसको मेस्मेराईज़ किया जाता है) की एवं अपनी, दोनोंकी सारी खबर रखता है। त्राटक-सिद्ध होनेसे हिंस्र जानवर तक वशमें आ जाते हैं।

एक दिन अपने योग-शिक्षादाता महापुरुषके साथ मैं पार्वत्य वनभूमिमें भ्रमण कर रहा था, कि एकाएक एक शेर हमारे सामने आ खड़ा हुआ। मैं तो शेरके आक्रमण (झपटने) के भयसे विशेष डरा और घबराया, किन्तु महापुरुषने मुझे पीछे हटाकर अपनी दोनों आँखें शेरकी दोनों आँखके सामने ठीक बराबर जमाकर अपनी आँखोंकी रोशनीको इकट्ठा किया। फिर तो शेरमें एक पैर भी आगे बढ़नेकी शक्ति न रही; वह कागजकी तस्वीर-जैसा खड़ा होकर पूंछ हिलाने लगा। महापुरुषने जबतक नजर न हटाई, शेर तबतक स्थिर भावसे खड़ा रहा; उसकी आँखों परसे महापुरुषके अपनी नजर हटाते ही वह तत्काल जङ्गलमें भाग गया। हमारी ओर उसने घूमकर देखा

भी नहीं। तब महापुरुषने मुझे त्राटक-योगकी शक्तिके सम्बन्धमें उपदेश प्रदान किया। त्राटक-योगका अभ्यास कर सकनेसे हम सहज ही में लोगोंको निद्रित, वशीभूत और इच्छानुसार (मनमाने) काममें लगा सकते हैं।

कुण्डलिनी चैतन्यका कौशल।

कुण्डलिनी तत्त्वमें ही कहा गया है, कि कुण्डलिनी चैतन्य न होनेसे तप-जप और साधन-भजन वृथा है। कुण्डलिनीके अचैतन्य रहनेसे मानवका प्रकृत ज्ञान कभी उदय नहीं हो सकता है। मानव-जीवनका प्रधान काम और योगमें सिद्धि-लाभका उपाय—कुण्डलिनी को चैतन्य करना ही है। जितने प्रकारकी साधनाएँ हैं, सभी कुण्डलिनीको चैतन्य करनेके लिये हैं। सुतरां सबसे पहले चक्रके साथ कुण्डलिनीको जगाना चाहिये। मूलाधार-पद्ममें कुण्डलिनी-शक्ति स्वयम्भू लिङ्गको साढ़े तीन फेरसे लपेटे साँपके आकारमें नींद ले रही है। जबतक वह देहमें नींद लेती है, तबतक मानव पशुकी तरह अज्ञानमें मग्न रहता है, तब तक कोटि-कोटि योगाभ्याससे भी उसे ज्ञान नहीं मिलता। जैसे कोई चाभीसे ताला खोलकर दरवाजा खोल देता है,—वैसे ही कुण्डलिनी शक्तिको जगाकर मूढ़ादेशसे सहस्रार पद्मपर पहुँचा सकनेसे ही ब्रह्मद्वार का भेद होकर ब्रह्मरन्ध्रकी राह खुल जाती है। इसीसे मानवको दिव्य-ज्ञानका लाभ होता है।

बायें पैरकी एड़ीसे योनिदेशको मजबूतीसे दबाकर दाहिने पैरको बिलकुल सीधा और सरल भावसे सामने रखकर बैठे, उसके बाद दाहिने पैरको दोनों हाथोंसे जोरसे दबाये रखे एवं कण्ठ (गले) में ठुड्डी लगाकर कुम्भकसे वायु रोके। पीछे प्राणायामकी चालसे धीरे-धीरे उस वायुको निकाल दे। डण्डाहत (डण्डेसे मारा गया) साँप जैसे सरल भाव धारण करता है, वैसे ही इस क्रियाको करने पर कुण्डलिनी-शक्ति ऋजु (सीधा) आकार धारण कर लेती है।

वित्तेके बराबर लम्बे, चार अंगुल चौड़े, कोमल, श्वेतवर्ण सूक्ष्म कपड़ेसे नाभिदेश (तोंदीकी जगह) को लपेटकर कमरके डोरेसे बाँध दे। पीछे भस्म द्वारा देह लेपन करके गोपनीय (छिपे) घरमें सिद्धासन पर बैठे, दोनों नथनेसे प्राण-वायुको आकर्षण करके, बल-पूर्वक अपान वायुमें मिलावे एवं जबतक सुषुम्णा विवरमें (गड्ढेमें) वायु पहुँचकर प्रकाश न पावे, तब तक अश्विनी-मुद्रासे धीरे धीरे गुह्यदेशको सिकोड़े और फैलाये। इसी तरह साँस रोककर कुम्भक योगसे वायु रोध करनेसे कुण्डलिनी-शक्ति जागकर सुषुम्ना पथसे ऊपरकी तरफ चढ़ती है।

इस तरह साधन करनेसे कुण्डलिनीके जागनेपर योनिमुद्रा योगसे उठायी जाती है। मूलाधारसे क्रमानुसार समस्त चक्रोंको भेद करते हुए सहस्र दलको पद्ममें उठा कर परमशिवके साथ संयुक्त करने एवं दोनोंको एक बनानेसे उन दोनोंके संयोगसे निकले हुये सामरस्य-सम्भूत अमृत द्वारा शरीर उमड़ने लगता है। उस समय साधक समस्त जगत्को भूल जाता है एवं बाह्य-ज्ञान शून्य होकर

जिस अनिर्वचनीय अपार आनन्दमें डूब जाता है, वह स्वतः अनुभवकी वस्तु है, लिख कर मैं उसे प्रकाश नहीं कर सकता। स्त्री-संसर्गसे शरीर और मनमें जैसा अनिर्देश्य (जो कहा न जा सके) आनन्द अनुभव होता है, उसकी अपेक्षा कोटि-कोटि गुण अधिक आनन्द इसमें प्राप्त होता है। उस अव्यक्त भावको व्यक्त (प्रकाश) करनेकी शक्ति भाषामें नहीं है। *

कुण्डलिनी-शक्ति किस तरह उठायी जाती है, वह केवल मुंहसे बतानेसे नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष दिखाये बिना किसीकी भी समझमें नहीं आ सकती। सुतरां वह गुह्य (गुप्त) विषय अकारण सर्व साधारणके सामने प्रकाशित करना वृथा है। साधकको केवल मात्र कुण्डलिनी शक्तिको चैतन्य करनेके लिये ऊपर कही हुई क्रियाओंका अनुष्ठान करना चाहिये। कुण्डलिनी चैतन्य करनेका और भी एक सहज उपाय है। वह इस प्रकार है :—

सिद्धासनसे बैठ कर हृदयपर मजबूतीसे ठुड्ढी रखे, पीछे दोनों हाथसे मुठ्ठी बांधकर दोनों हाथकी कुहनी हृदय पर दृढ़रूपसे रख नाभि देशमें वायु धारण करे एवं गुह्य-देशको अश्विनी मुद्रासे सिकोड़ता और फैलाता रहे। ऐसा नित्य अभ्यास करनेसे भी कुण्डलिनी शीघ्र ही चैतन्य होगी।

---

* कुण्डलिनीको कैसे जगाकर उत्थापन करना होता है, इसकी क्रिया मत्प्रणीत "ज्ञानीगुरु" ग्रन्थमें वर्णन की गई है।

कुण्डलिनीके चैतन्य होकर सुषुम्णा-नाड़ीमें प्रवेश करनेसे साधक स्पष्ट अनुभव कर सकता है। उसी समय पीठकी रीढ़के बीचमें चींटी रेंगने जैसी सरसराहट होने लगती है।

लययोग साधन।

जिनके पास समय थोड़ा है एवं जो योगके नियमोंका पालन करनेमें असमर्थ हैं, वे पहले बतायी हुई विधिसे कुण्डलिनीको चैतन्य करके यदि किसी भी प्रकारके आगे बताए लययोगका साधन करेंगे तो अवश्य चित्त लय होगा। विषय बढ़ जानेके डरसे मैं विस्तार-पूर्वक यहाँ न लिख सका। फिर भी जो कई-एक लय-संकेत मैंने लिखे हैं, उनमेंसे किसीकी भी क्रियाका अनुष्ठान करके मनोलय किया जा सकता है। यह बहुत सीधा और थोड़ी मेहनतसे सिद्ध होनेवाला एवं शीघ्र फल देनेवाला साधन है।

(१) मूलाधार-चक्र भगाकृति है; इस चक्रमें स्वयम्भूलिङ्गमें तेजोरूपा कुण्डलिनी-शक्ति साढ़े तीन फेरे लपेटे हुए अधिष्ठिता है। इस ज्योतिर्म्मयी-शक्तिका जीवरूपमें ध्यान करनेसे चित्त लय होता है एवं मुक्ति मिल जाती है।

(२) स्वाधिष्ठान-चक्रमें प्रवालांकुर जैसे उड्डीयान नामक पीठ (आसन) पर कुण्डलिनी-शक्तिका चिन्तन करनेसे भी मनोलय होगा एवं जगत्‌के आकर्षणकी शक्ति आवेगी।

(३) मणिपुर-चक्रमें पाँच फेरे लगाये बिजली जैसे रङ्गकी चित्स्वरूपा भुजंगी-शक्तिका ध्यान करनेसे अवश्य ही साधक सर्व-सिद्धि पाता है।

(४) अनाहत-चक्रमें ज्योतिः-स्वरूप हंसका ध्यान करनेसे भी चित्त लय हो जाता है एवं जगत् वशीभूत होता है।

(५) विशुद्ध-चक्रमें निर्म्मल-ज्योतिःका ध्यान करनेसे सर्व सिद्धियाँ मिलती हैं।

(६) तालुमूलके ललना-चक्रको घण्टिका स्थान और दशम द्वार-मार्ग कहते हैं। इस चक्रपर ध्यान लगानेसे मुक्ति मिलती है।

(७) आज्ञा-चक्रमें वर्त्तुलाकार ज्योतिःका ध्यान करनेसे साधक मोक्ष पद पाते हैं।

(८) ब्रह्मरन्ध्रमें अष्टम-चक्रस्थित सुईकी नोक-जैसे धूम्राकार जालन्धर नामक स्थानपर ध्यान द्वारा चित्त लय करनेसे निर्वाण-पद मिलता है।

(९) सोम-चक्रमें पूर्णा सच्चिद्रूपा अर्द्धशक्तिका ध्यान करनेसे मनोलय होता है एवं मोक्षपद लाभ होता है।

इन नवचक्रके बीचमें एक एक चक्रके ध्यान करनेवाले साधक-गणको सिद्धि और मुक्ति हाथों हाथ मिलती है। क्योंकि, वे ज्ञानकी आँखसे दोनों कोदण्डके बीच कदम्ब जैसे गोलाकार ब्रह्मलोकके दर्शन करते एवं अन्तमें ब्रह्मलोकमें भी पहुँच जाते हैं। कृष्णद्वैपायनादि ऋषिगण नवचक्रमें लययोगका साधन करके यम-दण्डको तोड़कर ब्रह्मलोकमें जा पहुँचे थे। यथा—

कृष्णद्वैपायनाद्यैस्तु साधितो लय संज्ञितः ।
नवस्वेव हि चक्रेषु लयं कृत्वा महात्मभिः ॥
योगशास्त्र ।

अर्थात् वेदव्यासादि महात्माओंने नवचक्रमें मनोलय करके लययोग साधन किया था। सिवा इसके और भी बहुत तरहका लय और लक्ष्ययोग संकेत शास्त्रमें लिखा है। यथा—

(१०) परम आनन्दके साथ अपने हृदयके बीचमें इष्ट देवताकी मूर्तिका ध्यान करनेसे साधक आत्मलीन हो जाता है।

(११) एकान्तमें शववत् (मुरदे जैसा) चित्त लेटकर एकाग्र चित्तसे अपने दाहिने पैरके अंगूठे पर दृष्टि स्थिर करके ध्यान करनेसे शीघ्र ही चित्त लय होता है। यह चित्त लय करनेका प्रधान और सहज उपाय है।

चित्ते लेटकर नींद लेनेसे कितने ही लोगोंको अपने घिग्घी बँध जाने जैसा मुंह पर दबाव-सा मालूम पड़ता है। उस वक्त उसको यह भी मालूम होता है, मानो कोई आदमी छातीको जोरसे दबा कर बैठा है,—शरीर भारी हो जाता है, डरसे चिल्लानेकी कोशिश करने पर भी साफ बात मुंहसे न निकल कर घें-घें शब्द उच्चारण होता है। इसी दशामें लययोगकी झलक देख पड़ती है।

(१२) जीभको तालुमूलमें लगा ऊपर उठाये रखे; इससे चित्त एकाग्र होकर परमपदमें लीन हो जाता है।

(१३) नाकके ऊपर दृष्टि रख कर बारह अंगुल पीली या आठ अंगुल लाल वर्णकी ज्योतिःका ध्यान करनेसे चित्त लय हो जाता एवं वायु स्थिर हो जाता है।

(१४) ललाटके ऊपर शरत्‌के चन्द्र-जैसी श्वेतवर्ण ज्योतिः का ध्यान करनेसे मनोलय हो जाता है एवं आयु बढ़ती है।

(१५) देहके बीचमें निर्वात् निष्कम्प दीपकलिका जैसी अष्टांगुल ज्योतिःका ध्यान करनेसे जीव मुक्त हो जाता है।

(१६) दोनों भौहोंके बीच सूर्य्य जैसे तेजः-पुञ्जका ध्यान करनेसे ईश्वरका सन्दर्शन मिलता है।

इनमेंसे जिसे जो क्रिया सुभीतेकी जँचे, वह उसीसे मनोलय कर सकता है।

शब्दशक्ति और नाद साधन।

शब्द ही ब्रह्म है। सृष्टिके पहले प्रकृति-पुरुष मूर्त्तिहीन केवल एक ज्योतिः मात्र था। सृष्टिके आरम्भ-कालमें वही सर्वव्यापी ज्योतिः आत्मा अभेद भावसे नादविन्दुरूपमें प्रकाशमान हुई थी। विन्दु परम शिव और कुण्डलिनी निर्वाण कलारूपा, भगवती त्रिपुरा-देवी स्वयं नादरूपा है। यथा :—

आसीद्विन्दु स्ततो नादो नादाच्छक्तिः समुद्भवः।
नादरूपा महेशानि चिद्रूपा परमा कला॥
वायवी संहिता।

आदि प्रकृति देवीका नाम परा प्रकृति है; सुतरां परा प्रकृति आद्याशक्ति ही नादरूपा होती है। इसी प्रकृतिसे पञ्च महाभूतकी सृष्टि हुई है। पहले आकाश उत्पन्न हुवा है। आकाशका गुण शब्द

है, अतएव सृष्टिके पहले शब्द उत्पन्न हुवा है। शब्दसे सिलसिलेवार अन्य दूसरे महाभूत एवं यह चराचर विश्व उत्पन्न हुवा। इसीलिये शास्त्रकारोंने "नादात्मकं जगत्" कहकर वताया है। तभी तो देखिये, कि शब्द कैसा क्षमताशाली होता है। योगवलशाली ऋषिगणके हृदयसे यही शब्द गुंथ एवं मन्त्रके रूपमें निकल कर एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न एवं वीर्य्यशाली वना है। शब्दसे क्या नहीं होता? कोई व्यक्ति अपने मित्रोंके साथ मौजें मार रहा है, ठीक उसी समय यदि अदूरमें (पासमें) करुण क्रन्दन-ध्वनि (फूट-फूट कर रोनेका शब्द) सुनाई दे तो वह कभी उस तरह हँस खेल न सकेगा। मान लो कि मैं किसी व्यक्तिसे प्रेम नहीं करता, किन्तु वह यदि गिड़-गिड़ाकर करुण एवं समुचित शब्दोंसे मेरी स्तुति करने लगे तो अवश्य ही मेरा कठिन हृदय पिघल जायगा। सारांश, शब्दसे ही सव परस्पर आवद्ध हैं। कोयलकी कूक (शब्द) सुननेसे या भौंरेका भन् भन् शब्द कानमें आनेसे मनमें न जाने क्यों एक अजीव आकांक्षा पैदा होती है, न जाने किस जन्म-जन्मान्तरकी पुरानी वात याद आ जाती है। इसी प्रकार मेघ (वादल) की गड़गड़ाहट गर्ज्जन या मोरका के-का शब्द सुननेसे दूसरे ही प्रकारके भावका उदय होता है; मनमें किसी अमूर्त्त प्रतिमाकी मूर्त्ति स्थापित हो जाती है। शब्द ही सङ्गीतका प्राण है; इसीलिये गाना सुनकर लोग आत्माको खो देते और पागल जैसे वन जाते हैं। शब्दसे जीव मुग्ध हो जाता है; शब्दसे विश्व-ब्रह्माण्ड संगठित हुआ है; हरि एवं हर भी नादसे अभिन्न नहीं हैं।

न नादेन विना ज्ञानं न नादेन विना शिवः ।
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपी परो हरिः ॥

नादका अन्त नहीं है, नाद असीम और अपार है। इसीलिये हिन्दू शास्त्र-कर्त्ताओंने लिखा है—

नादाब्धेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती ।
अद्यापि मज्जनभयात् तुम्बं वहति वक्षसि ॥

बात सच्ची है। नादका अनुसन्धान करनेवाला तत्त्वज्ञानी योगी ही इस बातकी सचाई उपलब्ध कर सकता है। नादरूप समुद्रका परपार (दूसरा किनारा) जब सरस्वतीको भी मालूम नहीं है, तब मुझ-सदृश सामान्य व्यक्तिका नादके स्वरूपको समझाने जाना विड़म्बना मात्र ही है।

नादका दूसरा नाम परा है ; यही मूलाधारमें परा, स्वाधिष्ठानमें पश्यन्ति, हृदयमें मध्यमा और मुखमें वैखरी कहाती है।

आखेदमान्तरं ज्ञानं सूक्ष्मवागात्मना स्थितम् ।
व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन निवर्त्तते ॥

वाक्यप्रदीप ।

सूक्ष्म वागात्मामें स्थित अन्तरज्ञान, अपने रूपको दिखानेके लिये शब्द-रूपसे वैखरी अवस्थामें चला जाता है। अर्थात् हमारे सूक्ष्म वागात्मामें जो भीतरी ज्ञान अव्यक्त (छिपी) अवस्थामें रहता है, मनमें किसी भावका उदय होनेपर, वही अव्यक्त भीतरी ज्ञान प्रव्यक्त (खुला) होकर वैखरी अवस्थामें मुखसे प्रकाश पाता है।

मूलाधार पद्मसे पहले निकले हुवे नाद-रूप वर्ण उठकर हृदयमे पहुँच जाते हैं। यथा—

स्वयं प्रकाश्या पश्यन्ती सुषुम्णासाश्रिता भवेत्।
सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी॥

हृदयमें रहनेवाले अनाहत पद्ममें यही नाद आप ही आप ध्वनित (शब्द) हो रहा है। अन+आहत=अनाहत ; अर्थात् बिना आघातसे (चोटसे) ध्वनि (शब्द) होती है, इसीलिये हृदयस्थ जीवाधार पद्मका नाम अनाहत हुवा है। सद्गुरुके अभावसे एवं हमारा मन विषय चिन्तामें विभोर होकर अज्ञान-तमसाच्छन्न (अज्ञानके अन्धेरेसे घिरा हुआ) होनेके कारण नाद-ध्वनि उपलब्ध नहीं कर सकता है। सुकृतिवान साधकगण लिखे हुए कौशलका अनुष्ठान करने पर आपसे आप निकली हुई अश्रुतपूर्व (पहले न सुनी हुई) अनोखी अनाहत-ध्वनि सुनते सुनते अपार्थिव परमानन्दका उपभोग कर सकते हैं। इस प्रक्रियासे बहुत आसानीके साथ और बहुत जल्दी ही मनोलय किया जा सकता है एवं मुक्ति-पद भी लाभ होता है।

जितने प्रकारके लययोग हैं, उनमेंसे यह नाद-साधन सबसे श्रेष्ठ है। क्रिया भी बहुत सीधी एवं सुखसाध्य (सुखसे करने योग्य) होती है। शिवावतार शङ्कराचार्य्यने कहा है—

"नादानुसन्धानसमाधिमेकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।"

नियमके अनुसार साधन करनेसे नादध्वनि साधकको सुन पड़ती है एवं समाधिभावसे वे परमानन्दका उपभोग कर सकते है। यह नाद-तत्त्व जिसे मालूम है, वही प्रकृत योगीगुरु होता है। यथा—

यो वा पराञ्च पश्यन्ति मध्यमामपि वैखरीम् ।
चतुष्टयीं विजानाति स गुरुः परिकीर्त्तितः ॥

नवचक्रेश्वर ॥

अर्थात् जो व्यक्ति परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी आदि नाद तत्त्वको अच्छी तरह समझ चुका है, वही प्रकृत गुरु है। ऐसे ही गुरुके पाससे योगके उपदेश लेकर साधना करना चाहिये ; नहीं तो तड़क-भड़क देख एवं बात-चीत सुनकर भूल जानेसे अवश्य ही धोखा खाना पड़ेगा।

यहाँ नाद-तत्त्वकी जितनी झलक दिखायी गई है, उससे पाठकगण अवश्य ही समझ सकेंगे कि नाद ही आद्याशक्ति है। पहले भी कई जगह बता चुके हैं, कि तप-जप, साधन-भजनका मुख्य उद्देश्य कुण्डलिनी-शक्तिका चैतन्य सम्पादन करना है। अतएव शैव, वैष्णव, गाणपत्य प्रभृति कोई भी सम्प्रदाय पाखण्ड रचकर कितनी ही अपनी बड़ाई क्यों न करें, प्रकारान्तरमें सभी शक्तिकी ही उपासना करते हैं। "बिना शक्तिके मुक्ति नहीं है"—यह प्रवाद (लोकोक्ति) वाक्य ही इसकी सत्यता प्रमाणित कर रहा है। धर्म्मका मूलतत्त्व कितने लोग समझते हैं ? यदि जानते होते तो आडम्बर-पाखण्ड करके नरककी राह साफ न करते। मैं जानता हूं, कि वैष्णवोंमें कितने ही शक्ति-मूर्त्तिको प्रणाम नहीं करते एवं न उनके निवेदित प्रसाद को ही पाते हैं। कैसी मूर्खता है ? जब प्रकृति और पुरुष एक हैं, सुतरां भगवान् एवं दुर्गा-काली प्रभृति सभी अभिन्न—एक हैं कृष्ण, विष्णु, शिव, काली, दुर्गादि सबको ही अभेद

भावसे एक न समझने पर साधनकी ओर पहुंचनेका उपाय ही नहीं है। शास्त्रमें कहा है, कि:—

नानाभावे मनो यस्य तस्य मोक्षो न विद्यते।

जिसका मन भेदज्ञान संयुक्त है, उसकी मुक्ति नहीं होती। फिर देखिये,—

नाना तन्त्रे पृथक् चेष्टा मय्योक्ता गिरिनन्दिनि।
ऐक्यज्ञानं यदा देवी तदा सिद्धिमवाप्नुयात्॥

महानिर्वाण तन्त्र।

हे गिरिनन्दिनि! नाना तन्त्रमें मैंने भिन्न भिन्न बातें कही हैं; जो व्यक्ति उन सबको एक समझकर अभिन्न ज्ञान करेगा, उसे सिद्धि लाभ होगा। महादेवजीने अपने ही मुंहसे बताया है—

शक्तिज्ञानं विना देवि मुक्तिर्हास्याय कल्पते।

हे देवि! शक्तिज्ञानके अतिरिक्त मुक्तिकी कामना हास्यजनक और वृथा है। यह शक्ति वैरागियोंकी महिमान्विता माताजी महाशया नहीं है; वल्कि वह निर्वाणपद देनेवाली आद्याशक्ति-भगवती कुण्डलिनी है। उसके स्वरूपका तत्त्व वर्णन करना साध्यातीत है।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥

चण्डि०।

जगत्में सदसत् जो कुछ भी शक्ति है, वह उसी आद्याशक्तिकी शक्तिस्वरूपा है। सुतरां उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परा ब्रह्मज्ञान-विनोदिनी कुलकुठारघातिनी कुलकुण्डलिनी शक्तिकी स्वरूपशक्तिका वर्णन करने

की शक्ति मुझमें नहीं है। अतएव पाठकोंको चाहिये, कि धर्म्मका आडम्बर तथा रूढ़ीपन परित्याग करके उस चतुर्वर्णस्वरूपा, खेचरी-वायुरूपा, सर्वशक्तीश्वरी, महाबुद्धि-प्रदायिनी, मुक्ति-दायिनी, प्रसुप्ता-भुजगाकारा (सोई हुई नागिनकी तरह) कुण्डलिनी शक्तिकी आराधना (भक्ति-भावना) करें, यही उनके लिये कर्त्तव्य है।

पराप्रकृति आद्याशक्ति ही नादरूपा है। सुतरां हृद्देशके जीवाधार पद्मसे स्वतः उत्थित यानी खुद-ब-खुद निकली हुई अनाहत-ध्वनि सुनकर साधकगण परमानन्द भोग कर सकते हैं एवं मुक्तिकी राहमें आगे बढ़ सकते हैं। शास्त्रकारगण सुनाते हैं, कि—

इन्द्रियाणां मनो नाथो मनोनाथस्तु मारुतः।
मारुतस्य लयो नाथः स लयो नादमाश्रितः॥

हठयोग प्रदीपिका।

मन ही इन्द्रियोंका मालिक है, क्योंकि मन संयोग न होने यानी मन न लगनेसे कोई इन्द्रिय भी काम करनेमें समर्थ नहीं रहती। मन प्राणवायुके अधीन है। इसीलिये वायु वशीभूत होते ही मनका लय हो जाता है। मन लय होकर नादमें अवस्थान करता है। नादका अर्थ अनाहत ध्वनि है। जब तक जीवात्मा और परमात्माका संयोग नहीं होता तबतक अनाहत-ध्वनिकी निवृत्ति नहीं होती। योगकी चरम सीमापर जीवात्मा और परमात्मा एकमें मिल जाते हैं। एवं इसके साथ ही साथ वह अनाहत-ध्वनि परब्रह्ममें लय हो जाती है।

श्रृणोति श्रवणातीतं नादं मुक्तिर्न संशयः॥

योगतारावली।

अतएव अश्रुतपूर्व (पहले कभी न सुना हुवा) अनाहत-नाद सुननेसे जीवकी मुक्ति होती है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। मैं आशा करता हूं कि पाठकगण ये सब वातें समझकर दृढ़ विश्वासके साथ नाद-साधनमें प्रवृत्त होंगे। नाद-साधनका सहज उपाय यही है—

पहले कहे हुये जिस किसी भी कौशलसे हो सके कुण्डलिनी के चैतन्य होनेपर एवं ब्रह्मद्वार परिष्कार होने (खुल जाने) पर नाद की साधना शुरू करना चाहिये।

पहले पहल इड़ा-नाड़ी यानी वायें नथनेसे थोड़ी थोड़ी वायु आकर्षण करके फेफड़ेको वायुसे पूर्ण करना होगा। उसी समय स्नायुके प्रवाहमें मनः संयोग यानी मन लगाकर सोचना पड़ेगा कि मानो उस स्नायुका प्रवाह इड़ा-नाड़ीके भीतरसे नीचेकी ओर उतरकर कुण्डलिनी शक्तिके आधारभूत मूलाधार पद्मके उसी त्रिकोण पीठपर जोरसे चोट पहुँचा रहा है। ऐसा करके उस स्नायु-प्रवाहको थोड़े समयके लिये उसी स्थान पर धारण करना चाहिये। इसके बाद सोचना चाहिये, कि वह सव स्नायुओंकी सारी शक्तिके प्रवाहको साँस के साथ दूसरी ओर खींच रहा हैं। इसके वाद दाहिने नथनेसे धीरे धीरे वायु रेचन करना चाहिये। ऐसी ही प्रक्रिया रोज उषः-कालमें एकबार, दोपहरमें एकवार, शामको एकवार करनी पड़ेगी। फिर आधी रातको भी इसी तरह फेफड़ेको वायुसे पूर्ण करके दोनों हाथके अंगूठेसे दोनों कानके छेद बन्दकर वायु धारण करना चाहिये। अपनी शक्तिके अनुसार वायुको रोककर थोड़ी थोड़ी निकालना

चाहिये। वार-वार वायु धारण करते करते क्रमशः अभ्यास होनेपर दाहिने कानमें शरीरके भीतर शब्द सुनाई दिया करेगा।

जो व्यक्ति कुण्डलिनीको चैतन्य करना या इस सारी क्रियाको गोलमाल समझते हैं, उनके लिये और भी दूसरा सीधा उपाय है। यथाः—

नाभ्याधारो भवेत् षष्ठस्तत्र प्राणं समभ्यसेत्।
स्वयमुत्पद्यते नादो नादतो मुक्तिरन्ततः॥

योग स्वरोदय।

योग साधनके उपयुक्त स्थानमें जो किसी भी आसनसे माथा, गर्दन, और मेरुदण्ड (रीढ़) सीधे रखकर बैठे और एकाग्रचित्त एवं निश्चिन्त मनसे नाभि यानी तोंदीकी ओर टकटकी बांधके देखता रहे, तो इसी तरह तोंदीके स्थानमें दृष्टि और मन रखनेसे धीरे धीरे निःश्वास छोटा होकर कुम्भक होगा। नित्य होशियारीके साथ दिन-रातके बीचमें तीन-चार बार ऐसा ही अभ्यास करनेसे कुछ रोज बाद स्वयं (आपसे आप) नाद निकलेगा। थोड़ी थोड़ी वायु धारण करनेसे नाद-ध्वनि बहुत ही जल्द सुन पड़ती है।

इन दो कौशलोंमेंसे किसी भी क्रियाका अनुष्ठान करनेसे ही कृतकार्य्य हो जाओगे। पहले झींगुरकी झनझनाहट-जैसा यानी भृंगी जैसा झि-झि शब्द करते हैं, वैसा ही शब्द सुनाई देगा। उसके बाद क्रमशः साधन करते करते एकके बाद एकके हिसाबसे वंशीकी तान, बादलका गर्जन, झांझकी झनकार, भौंरेकी गुंज, घण्टा, घड़ियाल, तुरही, करताल, मृदङ्ग, प्रभृति नाना प्रकारके बाजोंके शब्द सिलसिलेसे

सुन पड़ेंगे ; ऐसे ही रोज अभ्यास करते करते नाना प्रकारकी ध्वनियाँ सुनी जाती हैं।

ऐसी ध्वनि सुनते सुनते कभी शरीर रोमाञ्चित हो जाता है ; कभी किसी प्रकारका शब्द सुननेसे शिर चक्कर खाने लगता है, कभी कण्ठकूप (गलेका गड्ढा) जलसे पूर्ण हो जाता है ; लेकिन साधक किसी ओर भी लक्ष्य न करके अपना काम करता रहे। मधु पीने वाला भौंरा जैसे पहले मधुकी खुशबूसे आकृष्ट होता है ; किन्तु मधु पीते समय मधुके स्वादमें इतना डूब जाता है, कि तब उसका खुशबूकी तरफ कुछ भी ध्यान नहीं रहता है ; वैसे ही साधक भी नादकी ध्वनिसे मोहित न होकर शब्द सुनते सुनते चित्तको लय करे।

इस प्रकार अधिक अभ्यास करने पर हृदयके भीतरसे अभूतपूर्व शब्द एवं उससे द्रुत प्रतिशब्द कानमें पहुँचेगा। उस समय साधक आँख बन्द करके अनाहत पद्ममें स्थित बाणलिङ्ग शिवके मस्तकपर निर्वात-निष्कम्प दीप-शिखा (दिएकी लौ) की भाँति ज्योतिःका ध्यान करे। ऐसे ही ध्यान लगाते लगाते अनाहत पद्मस्थ प्रतिध्वनिके भीतर ज्योतिः दर्शन करोगे।

अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ॥

गोरक्ष संहिता।

उस दीप-कलिका (दिएकी लौ) के आकारमें ज्योतिर्म्मय ब्रह्ममें साधकका मन संयुक्त होकर ब्रह्मरूपी विष्णुके परम-पदमें लीन हो जायगा। उस समय शब्द बन्द हो जायगा एवं मन आत्म-तत्त्वमें

डूब जायगा। साधक सर्व-व्याधिसे मुक्त होकर तेजोयुक्त हो अतुल आनन्दका उपभोग करेगा। उस समयका वह भाव अनिर्वचनीय है! अवर्णनीय है !! उल्लेखनीय है !!!

आत्मज्योतिः दर्शन।

ज्योतिः ही ब्रह्म है। सृष्टिके पहले केवल एक मात्र ज्योतिः ही थी। पीछे सृष्टि शुरू होते ही ब्रह्मा, विष्णु शिवसे लेकर यह विश्व-ब्रह्माण्ड तक इसी ज्योतिःसे समुत्पन्न (पैदा) हुआ है।

स ब्रह्मा स शिवो विष्णुः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
सर्वे क्रीड़न्ति तत्रैते तत्सर्वेन्द्रियसम्भवम् ॥

वही स्वप्रकाशरूपी अक्षर परम ज्योतिः ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव वाच्य है। निखिल विश्व-ब्रह्माण्ड उसी ज्योतिःके बीचमें क्रीड़ा (खेल) कर रहा है एवं जो कुछ इन्द्रियके ग्राह्य (ग्रहण करनेके) विषय हैं, वे सभी उस ब्रह्मज्योतिःसे उत्पन्न हुए हैं। यह ज्योतिः ही आत्माके रूपमें मानवकी देहके भीतर सब जगह व्याप्त होकर अवस्थान कर रही है। आत्मा ब्रह्मका रूप होने पर भी मायाके प्रभावसे विषयाशक्त हो जाने पर अपनेको आप नहीं जानता है। परम ब्रह्मस्वरूप परमात्मा सभी देहमें विराज रहा है। यथा :—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्म्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेतो केवलोनिर्गुणश्च ॥

श्रुतिः।

एकदेव परमात्मा ही सर्वभूतमें गूढ़रूपसे अधिष्ठित है। वह सर्वव्यापी, सर्वभूतका अन्तरात्मा, कर्म्मका अध्यक्ष, सकल भूताधिवास, साक्षी, चैतन्य, केवल और निर्गुण है। जैसे दूधमें मक्खन, फूलमें खुशबू एवं लकड़ीमें आग रहती है, वैसे ही देहमें आत्मा अधिष्ठित है।

सभी मानवोंकी प्रकाश्य (बाहरी) दो आँखोंको छोड़कर और एक गुप्त आँख होती है, उस तीसरी आँखको ही गुरुनेत्र कहते हैं। योगसाधनके द्वारा चित्त निर्म्मल (साफ) और स्थिर होनेसे ही वह गुरुनेत्र प्रकाशित होता है, तब भूत, भविष्यत् और बहुत दूर-दूरान्तरकी घटना (कार्य) प्रत्यक्ष देखी जाती है। उसी गुरुनेत्र या ज्ञानचक्षु द्वारा आज्ञा-चक्रके ऊर्ध्वपर निरालम्ब-पुरीमें ईश्वर-दर्शन वा इष्टदेव संदर्शन वा कुल-कुण्डलिनीका स्वरूप-रूप-प्रत्यक्ष देख पड़ता है। उसी ज्ञान-नेत्रसे ही देहमें रहनेवाले ब्रह्मस्वरूप परमात्माका स्वप्रकाश ज्योतिः-दर्शन किया जाता है। यथा :—

चिदात्मा सर्वदेहेषु ज्योतिरूपेण व्यापकः।
तज्ज्योतिश्चक्षुरग्रेषु गुरुनेत्रेण दृश्यते॥

योगशास्त्र।

चिदात्मा ज्योतिःरूपसे सभी देहमें परिव्याप्त (फैला हुआ) है; गुरुनेत्र द्वारा आँखके आगे वह देखनेमे आता है। वह आत्मज्योतिः सर्वथा शान्त, निश्चल, निर्म्मल, निराधार, निर्विकार, निर्विकल्प और दीप्तिमान है। दूधको मथनेसे जैसे मक्खन निकलता है, वैसे ही क्रियाके अनुष्ठानसे आत्मदर्शन होने पर ही जीवात्मा मुक्ति लाभ

करता है। अतएव सबसे पहले यत्नके साथ आत्मदर्शन करना कर्त्तव्य है। शास्त्रवाक्य यह है :—

आत्मदर्शन मात्रेण जीवन्मुक्तो न संशयः ॥

अर्थात् "केवलमात्र आत्मदर्शनसे ही मानव अवश्य जीवन्मुक्त हो जाता है।" अतएव सभीको आत्मज्योतिःका दर्शन करना कर्त्तव्य है। दूसरे प्रकारके योग साधनकी अपेक्षा आत्मज्योतिः दर्शन-क्रिया सीधी और आरामसे होनेवाली है। उस ब्रह्मस्वरूप ज्योतिःके दर्शनका उपाय यह है :—

योग साधनके उपयोगी स्थानमें, साधक स्थिरचित्तसे नियमानुसार आसनपर (जिसको जिस आसनका अच्छी तरहसे अभ्यास है) बैठे और ब्रह्मरन्ध्रमें विराजने वाले शुक्लाब्जमें (सफेद कमलमें) गुरुदेवका ध्यान करनेके बाद प्रणाम करे। गुरुकृपाके अतिरिक्त ज्योतिःरूप आत्म दर्शन नहीं होता है। शास्त्रमें लिखा है—

अनेकजन्मसंस्कारात् सद्गुरुः सेव्यते बुधः।
सन्तुष्टः श्रीगुरुर्देव आत्मरूपं प्रदर्शयेत् ॥

योगशास्त्र ॥

अनेक जन्म-जन्मान्तरके संस्कारके कारण ही पण्डित व्यक्ति सद्गुरुके आनन्द दान कर सकने पर गुरुदेवकी कृपासे ही साधकके नाते आत्मरूप दर्शन कर सकता है। अतएव गुरुदेवके ध्यान और प्रणामके बाद मनःस्थिर करके मस्तक (माथा), गर्दन, पीठ और उदर बराबर रखकर अपने शरीरको सीधा संभाल कर बैठ जाये। इसके बाद नाभिमण्डलपर (तोंदीके चक्कर पर) दृष्टि स्थिर रख कर

यानी टकटकी बांध कर उड्डीयान बन्धका साधन करे। अर्थात् तोंदीके नीचे रहनेवाले अपान वायुको गुह्यदेशसे उठाकर नाभिदेशमें कुम्भक द्वारा धारण करे। इसमें यथाशक्ति बार-बार वायुको धारण करना पड़ेगा।

त्रिसन्ध्यां मानसं योगं नाभिकुण्डे प्रयत्नतः।

महानिर्वाण तन्त्र। १३ पः

इस तरहका मानस-योग त्रिसन्ध्या करना पड़ेगा; यानी रोज ब्राह्ममुहूर्त्तमें, मध्याह्नकालमें (दोपहर) और सन्ध्याकालमें (शामको) —इन तीनों समय पर कही हुई विधिसे वायुको धारण करे; और जबतक नाभिमें रहनेवाली अग्निको जय नहीं कर ले, तबतक उसे अनन्यमनसे इसी तरह अनुष्ठान करना चाहिये।

नाभिकमलसे (तोंदीके चक्रसे) तीन नाड़ी तीन तरफको गयी हैं। एक ऊर्ध्वमुखसे सहस्र दल पद्म तक, एक अधोमुखसे आधार पद्म तक, और एक मणिपुर पद्मके नाल स्वरूप है। यह नाड़ी सुषुम्णाके बीचमें रहनेवाले मणिपुरपद्मके साथ ऐसे ढंगसे संयुक्त है, कि मानो मणिपुर पद्मनालमें ही नाभिपद्म अवस्थित हो। इसीलिये सब तरहके योग साधनका सीधा और श्रेष्ठ पन्था (राह) नाभिपद्म है। नाभिदेशसे साधन शुरू करनेसे शीघ्र सफलता मिलती है। नाभिस्थानमें वायु धारण करनेसे प्राण और अपान वायुका एकत्व (एकमें मिल जाना) होता है एवं कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा द्वार (दरवाजा) परित्याग करती है, उस समय प्राणवायु सुषुम्णाके भीतर घुसता है।

पहली क्रिया नाभिस्थानसे शुरू न करनेसे कृतकार्य्य होना—सफलता लाभ करना—मुश्किल है। अनेक लोग पहलेसे ही एकदम आज्ञाचक्रमें ध्यान लगानेका उपदेश देते हैं, लेकिन वह चेष्टा विफल होती है। मैंने योग क्रियाकी आलोचनासे जो क्षुद्र-ज्ञान लाभ किया है, उससे समझ लिया है, कि "घोड़ा डिंगाईया घास खावार न्याय" यानी जिसकी सहायतासे दूसरेके पास स्वीय-कार्य साधनके लिये गया था, उसकी उपेक्षा कर चुपकेसे अपना कार्य-सम्पन्न करनेकी चेष्टा करनेकी भाँति पहले ही वैसा करनेसे कभी भी मनकी स्थिरता या चित्तकी एकाग्रता अथवा कुण्डलिनीका चैतन्य नहीं होगा। जो लोग प्रकृत साधनके अभिलाषी यानी इच्छा रखनेवाले हैं, वे तोंदीसे काम शुरू करें ; ऐसा करनेसे फल भी प्रत्यक्ष देख पड़ेगा।

नित्य नियमित रूपसे इसी तरह नाभिस्थानमें वायु धारण करनेसे प्राणवायु अग्निस्थानमें गमन करता है। उस समय अपान वायु द्वारा शरीरस्थ अग्नि क्रमशः उद्दीप्त (जलना) हो उठेगी। इस तरह क्रिया करते करते आठ-दश महीनेमें ही नाना प्रकारके लक्षणोंका अनुभव होगा। नादकी अभिव्यक्ति यानी ध्वनि सुन पड़ना, देहका हलकापन, मलमूत्रकी कमी एवं जठराग्निकी दीप्ति यानी उदरकी अग्निकी उद्दीपना आदि नानारूप लक्षण प्रकाश पाते हैं। नियमित रूपसे रोज इस तरह अनुष्ठान कर सकनेसे तीन चार महीनेके बीचमें भी ऊपर कहे हुये लक्षण प्रकाश पा सकते हैं।

ऊपर कहे हुए लक्षण प्रकट होनेपर भी नाभिस्थानमें कुम्भक करके प्रसुप्त नागेन्द्रकी भाँति (सर्पकी तरह)पञ्चावर्त्ता (पाँच बार

गुड़ली खाई हुई) बिजलीकी जैसी कुण्डलिनीका ध्यान करे। इस तरह वायुको धारण करनेसे एवं कुण्डलिनी का ध्यान धरनेसे, कुण्डलिनी आगसे जलकर वायु द्वारा फनको फैलाकर जग उठेगी। जितने दिन मन पूर्णतम भावसे नाभिस्थानमें संलीन (एकाग्र) नहीं होगा, उतने दिनों तक इसी तरह क्रियाका अनुष्ठान करना होगा।

कुण्डलिनी जगकर ऊर्ध्वमुखसे चलने पर प्राणवायु सुषुम्णाके भीतर पहुँचेगा ; एवं समस्त वायु एकमें मिलकर अग्निके साथ सारे शरीरमें घूमा करेगा। योगिगण इस अवस्थाको "मनोन्मनी" सिद्धि कहते हैं। इस समय अवश्य ही सर्वव्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं और शरीरमें बल बढ़ता है एवं कभी कभी समुज्ज्वल दीप-शिखाकी भाँति ज्योतिः दर्शन भी मिला करता है। इस तरहके लक्षणोंका अनुभव होनेसे उस समय नाभिस्थान त्याग करके अनाहत पद्ममें काम शुरू करना चाहिये। इस जगह भी रोज त्रिसन्ध्याको यथा-नियम आसन पर बैठ मूल-बन्ध साधन करे। अर्थात् मूलाधारको सिकोड़ कर अपान वायुको आकर्षण करके प्राणवायुमें मिलाकर कुम्भक करे। प्राणवायु हृदयमें रुकनेसे सभी पद्म ऊर्ध्वमुख यानी ऊपरकी तरफ मुंह उठाकर फैलेंगे। अनाहत पद्ममें वायु धारण करनेका अभ्यास करते करते प्राणवायु अनाहत पद्ममें घुसकर स्थिर हो जायगी। उस समय दोनों भौंहोंके बीचकी जगह तक सुषुम्णा विवरमें नव-जलद् जालमें सौदामिनीकी भाँति यानी नये बादलकी घन-घटामें जैसे बिजली चमकती है, वैसी ज्योतिः सदाके लिये प्रकाशित होती रहेगी। उस समय साधककी आँखें खुली हो

या वन्द हों, सर्वावस्थामें—भीतर एवं बाहर निर्वात् दीप-कलिकाकी भाँति ज्योतिः देख पड़ेगी।

उक्त तथा अन्य सब लक्षण भली भाँति समझ लेनेपर वीजमन्त्र (ब्राह्मणगण प्रणव उच्चारण भी कर सक्ते हैं) उच्चारण करते करते अग्निके साथवाले प्राणवायुको आकर्षण पूर्वक दोनों भौंहोंके बीचवाले आज्ञा-चक्रमें धारण करके आत्माका ध्यान करे। आज्ञा-चक्रमें वायुको धारण करके इस तरह ध्यान करते करते चित्त एकदम लय प्राप्त होगा। इसी समय सहस्रारसे गिरी हुई अमृत-धारासे साधकका कण्ठकूप पूर्ण हो जायगा—ललाटमें बिजलीकी भाँति समुज्वल आत्म-दर्शन लाभ होगा। उस समय देवता, देवोद्यान, मुनि, ऋषि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व आदि अदृष्ट पूर्व, अपूर्व दृश्य साधकको दिखाई देंगे। साधक उस अभूत-पूर्व परमानन्दमें डूब जायगा। फल-स्वरूप—गुरुकी कृपासे मैंने इस समयका जो भाव अनुभव किया है, उस अव्यक्त भावको लेखनीके सहारे प्रकाश करना मेरी पहुँचके बाहर है। भुक्तभोगीके सिवा वह भाव दूसरेके लिये हृदयङ्गम कर सकना (समझना) असम्भव है।

जब तक कोदण्डके बीचमें चित्त पूर्ण रूपसे लीन न हो जाय, तबतक यथानियम वार-वार वायुको धारण करे एवं ललाटके बीचमें वीजमन्त्ररूप पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति आत्म-ज्योतिःका ध्यान करे। धीरे धीरे वे सारे लक्षण देख पड़ेंगे। साधक काम कलाके त्रिविन्दुके साथ मिल जायगा एवं ललाटमें रहनेवाला उर्ध्व विन्दु प्रकाश पायगा। फिर और चाहिये ही क्या?—मानव-जीवन धारण करना सार्थक

होगा ! ज्ञान उपार्जन करना सार्थक होगा !! साधन-भजन सार्थक होगा !!!

जिसका मस्तिष्क (दिमाग) सबल है एवं जिसे सिर और आँखकी कोई बीमारी नहीं है, वह और भी सीधे उपायसे आत्म-ज्योतिः दर्शन कर सकता है। रातको घरके भीतर निर्वात् स्थानमें (जहाँ हवा नहीं लगती है) सीधे बैठकर अपनी आँखके ठीक सामने किसी भी उच्च स्थान पर मिट्टीसे बना हुवा दीपक सरसों या रेड़ीके तेलसे जलाकर रखे। इसके बाद पहले बताये हुवे नियमसे गुरुके ध्यान एवं प्रणामके बाद उस जलते हुए दीकपकी रोशनी स्थिर दृष्टिसे देखता रहे। जबतक आँखोंमें जल नहीं आने लगे तब तक देखता रहे। इस तरह अभ्यास करते करते जब दृष्टि (नजर) जम जायगी, तब एक मटर जैसी नीले रंगकी ज्योतिः देख पड़ेगी। क्रमशः और भी ज्यादा अभ्यास करनेसे उस दियेकी रोशनीसे दृष्टि (नजर) हटाकर जिस ओर देखोगे दृष्टिके सामने वही नीलाभ ज्योतिः दीख पड़ेगी। उस समय साधक आँख मूंद कर भी इस तरहकी ज्योतिः देख सकेगा। इस क्रियाको शुरू करनेसे पहले मन स्थिर करनेके लिये कुछ देर टकटकी बांधकर नाभिस्थानको देखना पड़ता है।

इस तरह अभ्यास करते करते जब भीतर और बाहरमें नीले रङ्गकी ज्योतिः देख पड़ेगी, तब अनन्यमन या एक दिलसे इस दृष्टिको हृदेशमें लाना चाहिये। वहाँसे नाककी नोकपर एवं उसके बाद भौंहोंके बीचकी जगह ले जाय। भौंहोंके बीचमें दृष्टि जम

जाने पर शिवनेत्र बनाना चाहिये। शिवनेत्र बनकर जब आँखकी पुतलीका थोड़ा-सा अंश या वह सारी ही घूम सकेगी, तब बिजलीकी भाँति दिएकी ज्योतिः देख पड़ेगी। आँखकी पुतली घुमाने पर पहले कुछ अँधेरा-सा मालूम होगा, लेकिन साधक उससे न घबड़ाकर धीरजके साथ कुछ देर ठहरेगा वो, बादमें उसे ज्योतिः देख पड़ेगी। वह परमात्मा-स्वरूप ज्योःतिका दर्शन लाभ करके शान्त-चित्तसे परमानन्द लाभ करेगा। इसी प्रकार जलके बीचमें, सूर्य्यके प्रतिबिम्ब पर दृष्टि (नजर) साधन करके भी आत्मज्योतिःका दर्शन किया जा सकता है। यदि किसीको—

इष्ट-देवताका दर्शन

—करनेकी इच्छा हो तो थोड़ीसी कोशिशसे ही वे कृतकार्य्य हो सकते हैं। साधन-प्रणाली या कोई दूसरा नियम भी कुछ नहीं है ; सिर्फ चित्तकी एकाग्रता सम्पादन करनी पड़ती है। इन्द्रियकी राहसे बाहर गई हुई, भिन्न भिन्न विषयोंमें विक्षिप्त (चञ्चल) और अनेक स्थान पर फैली हुई चित्त-वृत्तिको यदि यत्न और अभ्यासके द्वारा, मार्ग रोककर एकाग्र कर सकें, यानी सिलसिलेके नियमानुसार सिकोड़कर पुञ्जीकृत (सटाया या इकट्ठा किया) वा केन्द्रीकृत (मिलाना) किया जा सके, तो उस पुञ्जीकृत वा केन्द्रीकृत चित्तवृत्ति के सामने कोई भी बात क्यों न हो, उसका सारा भेद अवश्य ही

प्रकाश हो जायेगा। इसी तरह किसी भी चीज पर चित्त-वृत्तिको निरोध कर सकनेसें यानी अटकानेसे, वह ध्येयाकारमें यानी सोची जानेवाली चीजके आकारमें हृदयमें उदय हो जाती है। पूर्वोक्त आत्मज्योतिःके दर्शनके ही नियमानुसार यदि किसी भी क्रियाका अनुष्ठान करके कृतकार्य्य यानी फल लाभ होनेपर, जब भौंहोंके बीचमें ज्योतिः-शिखा देखनेमें आवेगी एवं चित्त शान्त हो जायगा, तब गुरुकी बताई हुई इष्ट मूर्त्तिका चिन्तन करते करते आत्मा ध्येयानु-रूप मूर्त्ति यानी जैसी चिन्तन की जाती है, वैसे ही मूर्त्ति ज्योतिःके भीतर प्रकाश पाती है। इसी तरह काली, दुर्गा, अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, शिव, गणपति, विष्णु, राम, कृष्ण या राधाकृष्ण, शिव-दुर्गाका युगल रूप आदि उसी ज्योतिःके बीचमें देखे जा सकते हैं।

सूर्य्यमण्डलके बीचमें भी इष्टदेव किम्वा दूसरे देव देवीका दर्शन मिल सकता है। क्योंकि सूर्य्यमण्डलके बीचमें ही हमारे भजनीय पुरुष अवस्थान कर रहे हैं।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती
नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः ॥

इससे साफ प्रकट हो रहा है, कि सूर्य्यमण्डलके बीचवाले सरसिज आसन पर हमारे ध्येय नारायण अवस्थान कर रहे हैं। हम लोग गायत्रीके द्वारा भी उन्हें सूर्य्यमण्डलके बीचमें रहनेवाला कहकर ध्यान लगाया करते हैं। ऋग्वेदमें भी इस सूर्य्यमण्डलके बीचमें रहनेवाले परम-पुरुषका स्वरूप जाननेके लिये अनेक स्थानपर आलोचना हुई है। यथा:—

इह ब्रवीतु य इमं गां वेदास्य वामस्य निहितं पदं वः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसना ऽउदकं पदापुः॥

ऋग्वेद, १ मण्डल, १६४ सूक्त।

यानी जिस ऊंचे आदित्यकी किरणें पानी बरसाती हैं, एवं जो अपना रूप बढ़ाकर किरणसे उदक पीते हैं, उन्हीं आदित्यके भीतर भजनीय पुरुषका स्वरूप जो अवगत हैं, वे कौन हैं? वह मुझे शीघ्र बताओ।

तभी तो देखिये, कि सबके ही ध्येय पुरुष सूर्य्यमण्डलके बीचमें विराजित हैं। कोशिश करनेसे ही साधक उनके दर्शन कर सकते हैं। दर्शनका उपाय यह है ;—

पहले साधक टकटकी बांधकर सूर्य्यकी ओर दृष्टिपात करनेका (नजर जमानेका) अभ्यास करे। इसमें पहले पहल तकलीफ हो सकती है ; किन्तु अभ्याससे दृष्टि (नजर) दृढ़ हो जानेपर निर्म्मल और निश्चल ज्योतिः प्रत्यक्ष आँखमें चमकने लगेगी। उस समय गुरूपदिष्ट अपनी अपनी इष्ट-मूर्त्तिका चिन्तन करते करते सूर्य्यकी ज्योतिःमें इष्ट देवताका दर्शन पा सकते हैं।

जिसका मस्तिष्क कमजोर है, किम्वा जिसे आँखकी कोई बीमारी है, उसे सूर्य्यमण्डलमें दृष्टि साधन करनेसे मना करता हूँ, वे पहले कहे हुये नियमोंसे ही इष्ट-देवका दर्शन करें।

अन्यान्य देवताओंके दर्शन पानेमें जैसे साधनकी जरूरत होती है, उससे बहुत कम कोशिश करने पर ही राधाकृष्णके युगलरूपका दर्शन हो सकता है। क्योंकि भाव तो कृष्ण और प्राण राधा है ;

ये दोनों सर्वदाके लिये सारे जगत्‌में मिले हुए एवं समस्त जीवनमें व्याप्त होकर अवस्थान कर रहे हैं। सुतरां भाव और प्राणके ऊपर चित्त-वृत्तिको रोक सकनेसे, भाव और प्राण दोनों एकमें मिलकर युगल रूपमें हृदय पर उदय होते हैं। फिर कालीकी साधनामें तो और भी थोड़े समयमें ही सफलता लाभ कर सकते हैं। क्योंकि काली देवी हमारे सर्वाङ्गमें समायी हुई हैं। अज्ञ लोक हिन्दूधर्म्मके गूढ़ (कठिन) रहस्यको न समझ सकनेसे ही हिन्दुओंको जड़ोपासक और कुसंस्काराच्छन्न कहा करते हैं। उनकी दृष्टि चिर प्ररूढ़ (बहुत दिनोंसे जमे हुए) संस्कारोंके शासनसे मोटी बनायी गयी पत्थरकी चहार-दीवारी पार करना नहीं चाहती—जड़के अतिरिक्त और भी कुछ है, ऐसा वे नहीं समझते हैं; इसीलिये वे ऐसा कहते हैं। हिन्दू धर्म्मके गहरे और सूक्ष्म आध्यात्मिक भाव एवं देवी-देवताओंके निगूढ़ तत्त्वको हिन्दू जितने समझते हैं, उनके पैरोंतक पहुँचना भी दूसरे धर्म्मावलम्बियोंके लिये बड़ी देरका काम है। हिन्दू जड़ोपासक और पौत्तलिक (मूर्ति पूजा करनेवाले) क्यों हैं? इसका रहस्य किसी आध्यात्मिक तत्त्वदर्शी हिन्दूसे पूछने पर सदुत्तर मिल सकता है। हिन्दुगण निखिल विश्व-ब्रह्माण्डमें इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले जो कुछ भी विषय हैं—उन सभीमें ही भगवान्‌का रूप प्रत्यक्ष करते हैं—इसीलिये तो मिट्टी, पत्थर, वृक्ष, पश्वादिकी पूजाका आयोजन (तैयारी) करके भी भगवान्‌की विराट विभूति पर ही वे लक्ष्य करते हैं। हिन्दू जिस भावसे भूले हैं, जड़वादीका उसे हृदयङ्गम कर सकना अत्यन्त कठिन है। हिन्दू धर्म्मके गहरे

ज्ञानवाले समुद्रकी उछलती हुई लहर इस छोटेसे ग्रन्थरूपी गोष्पदमें प्रकाश नहीं हो सकती ; विशेषतः उस विषयको इस पुस्तकमें लिखने का उद्देश्य भी नहीं है। *

आत्म-प्रतिविम्ब दर्शन।

साधक इच्छा करनेसे अपने भौतिक देहका ज्योतिर्म्मय प्रतिविम्ब भी देख सकता है। उसके साधनका नियम भी बहुत सीधा एवं सर्वसाधारणके करने योग्य भी है। आत्म-प्रतिविम्ब दर्शनका उपाय यही है,—

गाढ़ातपे स्वप्रतिविम्वमीश्वरं
निरीक्ष्य विस्फारितलोचनद्वयम्।
यदाऽङ्गणे पश्यति स्वप्रतीकं,
नभोऽङ्गणे तत्क्षणमेव पश्यति ॥

जब आकाश निर्म्मल और साफ हो, तब बाहर धूपमें खड़े होकर स्थिर दृष्टिसे आत्म-प्रतिविम्ब यानी अपनी छाया देखते हुये पलक न झपकाकर आकाश पर दोनों आँखें फैलाये। ऐसा करनेसे आकाशमें शुक्ल-ज्योतिः विशिष्ट अपनी छाया देख पड़ेगी। ऐसा अभ्यास करते करते चत्त्वरमें (चबूतरे और आंगनमें) भी आत्म-

---

* मत् प्रणीत "ज्ञानीगुरु" ग्रन्थमें इन सब विषयोंका सविशेष गुह्य-तत्त्व आलोचित किया गया है।

प्रतिविम्ब देख पड़ेगा। उसके बाद धीरे धीरे वही प्रतिविम्ब चारों ओर देख पड़ेगा। इस प्रक्रियामें सिद्ध हो जानेपर साधक आकाशमें चलनेवाले सिद्ध पुरुषोंके दर्शन पा सकता है।

रातको चाँदनीमें भी यह क्रिया साधन कर सकते हैं। योगिगण इसे "छाया-पुरुष साधन" कहते हैं। इस आत्म-प्रतिविम्बको देख कर साधक अपना शुभाशुभ (भला-बुरा) और मृत्युका समय भी आसानीसे समझ सकता है।

देवलोक दर्शन।

साधक इच्छा करनेसे वैकुण्ठ, कैलाश, ब्रह्मलोक, सूर्य्यलोक इन्द्रलोक, आदि देवलोक एवं देवताओंकी विगत हुई लीलाएँ भी देख सकता है। क्षुद्र-हृदयवाले कम ज्ञानी व्यक्तिगण शायद-यह बात सुनकर उच्चहास्यसे (खिल-खिल हँसकर) दिग्दिगन्त प्रतिध्वनित करके कहेंगे, कि—"जो शास्त्र ग्रन्थमें लिखा है, अथवा साधु-संन्यासी या शास्त्रज्ञ पण्डितगणके कण्ठमें अवस्थित है, उसे कैसे देख सकते हैं ? यह बात तो सिर्फ विकृत (बिगड़े) मस्तिष्कका प्रलाप मात्र है।"

अनभिज्ञताके कारण कोई कुछ भी कहे, लेकिन मुझे मालूम है, कि हम उसे जरूर देख सकते हैं। देव-देवीकी लीला-कथा शास्त्रोंमें पढ़ते-पढ़ते या सुनते-सुनते मानवके चित्तमें उसकी सौन्दर्य्य-ग्राहिताके

फलके अनुसार देव मूर्तिका रूप बैठ जाता है ; उस समय वह उसी देवताकी लीला-कथा अत्यन्त तन्मयताके (एकाग्र मनके) साथ सुना करता है। सुनते-सुनते वह सब विषय स्वप्नमें देखने लगता है। उसके बाद जागनेकी अवस्थामें भी वह विषय उसके सामने प्रकाश पाता है। दूसरी बात यह है कि—जो एकबार हुवा है, वह कभी नहीं मिटता ; उसका संस्कार जगत् अपनी छाती पर कितने ही युग-युगान्तर तक धारण कर रखता है। फिर एक बात यह भी है, कि जो काम जितना ही शक्तिशाली (ताकतवर) होता है, उसका संस्कार भी उतना ही प्रस्फुट (खिली हुई) अवस्थामें रहता है। साधनाके बलसे उसी संस्कारको जगा देने पर फिर वह लोगोंकी आँखके सामने भी उदय हो जाता है।

साधनासे चित्तको एक ओर लगा सकनेसे हृदयमें जो कँप-कँपी पैदा होती है, वही (कँप-कँपी) भावके राज्यमें जा पहुँचती है। भाव खिलकर उसकी क्रियाको मूर्त्तिमती (शकल देकर) आँखके सामने लाता है। अतएव अपने चित्तके अनुसार किसी भी देवलोककी ओर मनकी एकाग्रता सम्पादन कर सकनेसे ही, साधक उसके दर्शन कर सकता है।

योगके साधनसे जिसका चित्त स्थिर और निर्म्मल होकर ज्ञान-नेत्रोंका प्रकाश हो गया है, उसके सिवाय विषयासक्त चञ्चल चित्त व्यक्तिके लिये देवलोक वा गतलीलाका दर्शन करना मामूली बात नहीं है। दिव्य चक्षुके बिना भगवान्के ऐश्वर्य्यका कोई भी दर्शन नहीं कर सकता है। गीतामें लिखा है, कि—नाना प्रकारके

योगोपदेशसे भी जब अर्ज्जुनका भ्रम (अज्ञान) दूर न हुवा, तब भगवान्ने विश्वरूपको धारण किया ; लेकिन उनकी विराट मूर्त्ति अर्ज्जुनकी आँखें न देख सकीं ; तब उससे भगवान् श्रीकृष्णने कहा :—

न तु मां शक्यसि द्रष्टु मनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

गीता ११।८।

तब ही देखिये, जब भगवान्का प्राण-प्रिय मित्र होकर भी अर्ज्जुन उनकी विराट मूर्त्ति देख न सका तब दूसरेकी कौन बात है ? पहले-पहलका साधन करके चित्त निर्म्मल होने पर एवं एकाग्रता साधनेसे ही देवलोक और गतलीलाको देखनेकी कोशिश करनी चाहिये। देवलोक-दर्शनका उपाय यह है :—

"आत्मज्योतिः-दर्शन" के नियमानुसार साधन करते हुए जब चित्त लय होगा एवं ललाटमें बिजली-जैसी समुज्ज्वल आत्मज्योतिः देख पड़ेगी, तब इस ज्योतिःके भीतर अपने मनके अनुसार जिस किसी भी देवलोकका चिन्तन करने लगेंगे, उसी चिन्तनके अनुसार वह स्थान मूर्त्तिमान होकर आत्म-ज्योतिःके भीतर प्रकाशित होगा। सर्वसाधारणके लिये और भी उपाय है :—

एक टुकड़ा धातु या पत्थरका सामने रख उस पर मनःसंयोग पूर्वक (मन लगा कर) बिना पलक मारे आँखसे देखते रहो। पहले-पहल एक मिनट, फिर दो मिनट इस हिसाबसे समयको बढ़ाते जाओ। धीरे धीरे देख पड़ेगा कि चित्तकी एकाग्रताकी लम्बाईके

साथ ही साथ वह स्थान (धातु या पत्थर) भी मनमानी जगहकी तरह सर्वप्रकारकी शोभाओंसे शोभायमान दिखाई देता है।

चित्तकी एकाग्रताके साधनमें सिद्धिलाभ करनेसे जगत्‌में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उसके हाथमें नहीं आ सकता एवं जगत्‌में ऐसा कठिन काम भी कुछ नहीं है, जिसे वह नहीं कर सकता। अनन्तमना मन जो अनन्तकी ओर फैला है, उसकी उस गतिको रोक कर एक ओर लगा सकनेसे ही अलौकिक (अनोखी) शक्तिलाभ की जा सकती है। न्यायके मतमें इच्छा आत्माका गुण मानी गयी है। यथा—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति।

न्याय दर्शन।

अतएव चित्तको एकाग्र करके इच्छा-शक्तिके साधन बलसे जगत्‌में हम असम्भवको भी सम्भव बना सकते हैं। भारतके मुनि-ऋषिगण जो मानवको पत्थरमें, लकड़ीकी नावको सोनेकी नावमें, चूहेको शेरके रूपमें बना देते थे—वह भी इसी साधनके बलसे। इच्छा-शक्तिके प्रभावसे पल भरमें बीमारकी बीमारी छूट जाती है, मानव वशीभूत हो जाता है, आकाशके ग्रह नक्षत्र भूतलमें लाये जा सकते हैं, जेठकी गर्मीसे जलते हुये आकाश पर नये बादलकी सृष्टि की जा सकती है, नवद्वीपमें बैठकर वृन्दावनकी खबर ला सकते हैं, फल-स्वरूप सारे ही असाध्य काम सुसाध्य किये जा सकते हैं। पाश्चात्य देशोंमें रहनेवाले जो मेस्मेरीज्म, मीडियम, हिपनोटिज्म, मानसिक वार्त्ता-विज्ञान, साईकोपेथी, क्लायारभयेन्स आदि अनोखी

अनोखी बातें दिखाकर जीव जगत्को मोहते और अचम्भेमें डालते हैं; वे भी इसी चित्तकी एकाग्रता और इच्छा-शक्तिके बलसे ही सम्पादन करते हैं। 'पायोनियर' नामक अंगरेजी अखबारके सम्पादक सिनेट साहेबने थियासफिष्ट सम्प्रदायके चलानेवाले मेडम ब्लावाटास्कि (Madam Blavatasky) चित्तकी एकाग्रता और इच्छाशक्तिका साधन करके कैसे अनोखे और अचम्भेके तमाशे दिखला कर मर्त्यजगत्के मानवगणको मुग्ध (मोहित) करते थे, वह सब प्रत्यक्ष देखकर पत्रमें प्रकाशित किया था। मानव इच्छा करनेसे जब इस नर-देहमें देवत्त्व लाभ कर सकता है, तब देवलोकके दर्शन करना कौनसी बड़ी बात है?

हिन्दू शास्त्रोंमें ऐसे सैकड़ों प्रमाण रहने पर भी विलायती प्रमाण लिखनेके कारण, कोई नाक-भौं न सिकोड़े; क्योंकि वर्त्तमान युगमें यही नियम सब जगह चलता है। देशकी जूही, चमेलीको कोई नहीं पूछता, लेकिन उसीका फूल विलायत पहुँच कर रसायनिक विश्लेषणसे एसेन्सके रूपमें वापस आने पर नव्य-सभ्यगण अत्यन्त यत्नके साथ—समादरसे उसे व्यवहार करते हैं। कितने ही लोग माँ-बहनसे बात करते भी दो-चार अङ्गरेजी शब्दकी चटनी पीस डालते हैं। मैंने उसी सभ्य-सम्मत सनातन नियमको जारी रखनेके लिये यह पाश्चात्य प्रमाण सन्निवेशित किया है। अतएव कोई इससे नाराज न हो या लाल-लाल आँखें निकाल कर कड़ी बात न सुनाये। आशा है कि पाठकगण सुसंयत चित्तसे अनन्य मन-पूर्वक क्रियाका अनुष्ठान करके देवलोक दर्शनकी सत्यता (सचाई) उपलब्ध करेंगे।

यदि किसी एक चीजको दश व्यक्तियोंने दश दिशाओंसे भी आकर्षण किया तो उसकी गति बराबर ही रहेगी ; लेकिन दश व्यक्तिने यदि एक ओर ही खींचा तो उसकी गति कैसी होगी, यह आसानीसे ही मालूम पड़ सकता है। इसी तरह अनन्त दिग्में चलनेवाले मनकी गति रोक कर सर्वतोभावसे एकमुखी (एक ओर) कर सकने पर जगत्में कुछ भी असम्भव नहीं रहता है, फिर भी नियमके अनुसार क्रमशः विचार और युक्तिके द्वारा साधन करना चाहिये। वाह्य-विज्ञानमें जैसी शक्ति, जैसे विचार और बुद्धिका प्रयोजन होता है, इसमें भी उनकी वैसी ही आवश्यकता होती है। अन्तमें कहना यही है, कि सभी लोग चित्तकी एकाग्रताके साधन-पूर्वक समस्त दुःख दूर करके जीवनमें सुखका वसन्त लानेकी चेष्टा करें। किन्तु यह स्मरण रहे, कि चित्तकी एकाग्रता साधना ही योगका मुख्य उद्देश्य है।

मुक्ति।

नित्य और अनित्य वस्तुके विचारसे नित्यवस्तुके निश्चित होने पर अनित्य संसारके समस्त संकल्प जब क्षय पाते हैं, उसीका नाम मोक्ष है। यथा—

नित्यानित्यवस्तुविचारादनित्य संसार
समस्त संकल्प क्षयो मोक्षः।
निरालम्बोपनिषत्।

संकल्प-विकल्प मनका धर्म्म है ; मन बहुत ही ज्यादा चंचल है। चंचल मनको एकाग्र न कर सकनेसे मुक्तिलाभ नहीं होता है। मनकी एकाग्रता होनेसे उसी मनको ज्ञानी व्यक्तिगण मृत बताया करते हैं। यही मृत मन साधनके फलसे मोक्षका रूप बन जाता है। जीवका अन्तःकरण जिस समय बहुत ज्यादा उदास भाव धारण कर निश्चलावस्था (स्थिर भाव) को प्राप्त होता है, उसी समय मोक्षका उदय होता है ; अतएव मोक्षके लिये अवधारण (निश्चय) करना चाहिये।*

संसारकी आसक्ति छूटनेसे ही वैराग्य होता है एवं वैराग्य साधनके सधने पर ही मोक्ष मिलती है। मोटी बात यह है, कि संसारमें आत्यन्तिक विरक्तिको ही मुक्ति कहते हैं। सांसारिक भोगाभिलाष पूर्ण न होनेसे निवृत्ति नहीं होती है ; भोगाभिलाष पूर्ण होनेसे ही सांसारिक सुख-दुःखकी निवृत्ति होकर संसारके काममें विराग, अरुचि या विरक्ति उपजती है। चित्त-वृत्तिका निरोध होने पर ही सांसारिक सुख-दुःख भोगके कारण-स्वरूप इन्द्रियगणकी बहिर्मुखताकी निवृत्ति हो जाती है। इस तरह निवृत्ति पानेका नाम ही मुक्ति है।

इन्द्रियगणकी बहिर्मुखताके लिये संसारमें जो प्रवृत्ति फैली हुई हैं, उसका नाम बन्धन है। उसी बन्धनके कारणको कर्म्म शब्दमें लिख दिया गया है। कर्म्म नाना प्रकारके हैं, इसीलिये बन्धन भी

* मुक्ति और उसकी साधनाके सम्बन्धमें भी मत् प्रणीत "प्रेमिकगुरु" ग्रन्थमें विस्तार रूपसे लिखा गया है।

नाना प्रकारके हैं। इन्हीं नाना प्रकारके वन्धनोंमें फँस कर जीव अपनेको वहुत क्लिष्ट समझता है एवं उसके लिये ही दुःख भोग भी करता है। सांख्यकारगण इसी दुःख भोग करनेको ही हेय नामसे पुकारते हैं। यथा :—

त्रिविधं दुःखं हेयम्।

सांख्यदर्शन।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—इन तीन तरहके दुःखोंका नाम ही हेय है। प्रकृति-पुरुषका संयोग होनेसे जो विषय ज्ञान उत्पन्न होता है, वही तीनों प्रकारके दुःखोंका कारण है। यथा :—

प्रकृतिपुरुषसंयोगेन चाविवेको हेयहेतुः।

सांख्यदर्शन।

अर्थात् प्रकृति-पुरुषके संयोग हेतुसे जो अविवेक पैदा होता है, वही हेय हेतु है।

तदत्यन्तनिवृत्तिर्हानम्।

सांख्यदर्शन।

तीनों दुःखकी अत्यन्त निवृत्तिको हान अर्थात् मुक्ति कहते हैं। उस आत्यन्तिक दुःखकी निवृत्तिका उपाय—

विवेकख्यातिस्तु हानोपायः।

सांख्यदर्शन।

विवेक-ख्याति ही हानोपाय है। क्योंकि—प्रकृति-पुरुषके संयोगमें अविवेक उत्पन्न होकर दुःख पैदा करता है एवं प्रकृति-

पुरुषके वियोगमें दुःखकी निवृत्ति होती है। प्रकृति-पुरुषका वियोग या अन्तर जिस विवेकसे उत्पन्न होता है, उस विवेकको ही हानोपाय कहते हैं। फल-स्वरूप विवेकसे ही दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति होकर मोक्षपद मिलता है। यथा—

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धानौहानं ।

सांख्यदर्शन ।

प्रकृति पुरुषका अविवेक ही बन्धनका कारण है, एवं प्रकृति पुरुष का विवेक ही मोक्षका कारण है। देह आदिका अभिमान जब तक रहता है, तबतक मोक्ष नहीं हो सकता है। इसीलिये जिससे पुरुषका विवेक उत्पन्न होता है, उस कामका अनुष्ठान करना चाहिये।

योगाङ्गीभूत कर्म्मानुष्ठानसे पापादिका परिक्षय होने पर ज्ञानके प्रकाशसे विवेक उत्पन्न होता है। विवेकसे मोह-पाश कट जाता है, पाश कटनेसे ही मुक्ति हो जाती है। कपट वैराग्यके द्वारा, वाक्या-डम्बर द्वारा किम्वा बलपूर्वक पाश नहीं कटता ; केवल साधन द्वारा ही कट सकता है। वह पाश या बन्धन नाना प्रकारका है ; उनमेंसे आठ प्रकारका अत्यन्त दृढ़ होता है। उसे ही अष्टपाश कह कर शास्त्रमें प्रसिद्ध किया गया है। यथा—

घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी ।
कुलं शीलञ्च मानञ्च अष्टौ पाशाः प्रकीर्त्तिताः ॥

भैरव यामल ।

घृणा, शङ्का, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील और मान इन्हीं आठको अष्टपाश कहते हैं। जो व्यक्ति घृणा-रूप पाश या फन्देमें

फँसा रहता है, उसे नरक जाना पड़ता है। जो व्यक्ति शङ्कारूप पाशमें फँसा है, उसकी भी वैसी ही अधोगति होती है। भयरूप पाश रहनेसे सिद्धि लाभ नहीं हो सकता। जो व्यक्ति लज्जा (शर्म) रूप पाशमें फँसा हुआ है, उसकी अवश्य ही अधोगति होगी। जुगुप्सारूप पाशमें फँसा रहनेसे धर्म्म-हानि होती है, एवं कुलरूप पाशमें फँसे रहनेसे बार बार जठरमें जन्म लेना पड़ता है। शीलरूप पाशसे फँसा हुवा व्यक्ति मोहसे छुटकारा नहीं पाता है। मानरूप पाशसे बँधा रहने पर पारलौकिक उन्नति पाना बहुत दूरकी बात है।

इत्यष्टपाशाः केवलं बन्धनरूपा रज्जवः ॥

ये अष्ट पाश केवल जीवको बांधनेके लिये रस्सी जैसे होते हैं। जो इस अष्ट पाशसे बँधा रहता है, उसे जानवर कहते हैं। फिर इस अष्ट पाशसे जो मुक्त हो गया, वही सदाशिव बन जाता है यथा—

एतैर्बद्धः पशुः प्रोक्तो मुक्त एतैः सदाशिवः ॥

भैरव यामल।

इस बन्धनके तोड़नेका उपाय विवेक है। विवेक ही जीवका पाश काटनेके लिए तलवार जैसा होता है। विवेक-ज्ञान आसानीसे उत्पन्न नहीं होता। योगाङ्गीभूत कर्म्मानुष्ठानसे वासना और मनको नाश कर सकने पर ही विवेक ज्ञान उत्पन्न होता है। क्योंकि अविवेक-ज्ञान जन्म-जन्मान्तरसे पीछे पड़ा हुआ है। यथा—

जन्मान्तरशताभ्यस्ता मिथ्या संसारवासना।
सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् ॥

मुक्तोकोपनिषत् २।१५

जो मिथ्या संसार-वासना अति-पूर्व शत-शत जन्मसे चली आ रही है, वह बहुत दिनोंतक योगाभ्यास किये बिना दूसरे किसी भी उपायसे क्षयको प्राप्त नहीं होती ; यानी नष्ट नहीं होती है। अर्थात् कठोर अभ्यासके द्वारा मन और वासनाको परिक्षय (मारना) करना होता है। दीर्घकालतक योग साधन करनेसे मन स्थिर होकर वृत्ति-शून्य हो जाता है। मनके वृत्ति-शून्य होनेसे ही विज्ञान और वासनात्रय (लोकवासना, शास्त्रवासना और देहवासना) आपसे ही क्षय (नष्ट) हो जाती हैं। वासनाका क्षय होनेसे ही मनुष्य निस्पृह हो जाता है, निस्पृह रहनेसे फिर किसी प्रकारका बन्धन नहीं रहता है, उसी समय मुक्ति-लाभ होती है। वासना-शून्य अचेतन चक्षु आदि इन्द्रियगण जो बाहरी विषयोंसे आकृष्ट (खींचना) होते हैं, जीवकी वासना ही उसका कारण है।

समाधिमथ कर्म्माणि मा करोतु करोतु वा।
हृदये नष्टसर्वेहा मुक्त एवोत्तमाशयः ॥

मुक्तिकोपनिषत् २।२०

समाधि वा क्रियाका अनुष्ठान करे या न करे, किन्तु जिस व्यक्तिके हृदयमें वासनाका उदय नहीं होता है, वही व्यक्ति मुक्त है। जो व्यक्ति विशुद्ध बुद्धिके द्वारा स्थावर जङ्गमादि (चर और अचर) समस्त पदार्थोंके बाह्य और अभ्यन्तरमें (बाहर और भीतर) आत्माको आधार-स्वरूपमें देखते हुवे समस्त उपाधि परित्याग (छोड़) पूर्वक अखण्ड परिपूर्ण स्वरूपमें अवस्थान करता है, वही मुक्त है। किन्तु वासना-कामनामें फँसे हुए कितने लोगोंने उस

सौभाग्यको लेकर जन्म लिया है ? सुतरां साधना द्वारा वासना क्षय करनी होगी ।

साधना नाना प्रकारकी हैं ; सुतरां नाना प्रकारके उपायसे मानव को मुक्ति मिल सकती है। कोई कहता है कि भगवान्‌का भजन करनेसे मुक्ति मिल सकती है तो कोई कोई कहते हैं, कि सांख्ययोग द्वारा मुक्तिलाभ होता है। कोई कहते हैं, कि भक्तियोगसे मुक्ति मिलती है तो कोई महर्षि कहते हैं, कि वेदान्त राज्यके वाक्योंका विचार करके काम करनेसे मुक्ति मिलती हैं, लेकिन सालोक्यादि भेदसे मुक्ति चार प्रकारकी वतायी गयी है। किसी दिन सनत्कुमारके अपने पिता ब्रह्मासे मुक्तिका प्रकार-भेद पूछने पर लोक-पितामह ब्रह्माने कहा था :—

मुक्तिस्तु श्रृणु मे पुत्र सालोक्यादि चतुर्विधं ।
सालोक्यं लोकप्राप्तिः स्यात् सामीप्यं तत् समीपता।
सायुज्यं तत्स्वरूपस्थं सार्ष्टिस्तु ब्रह्मणो लयं ।
इति चतुर्विधा मुक्ति निर्वाणञ्च तदुत्तरम् ॥

हेमाद्रौ धर्म्मशास्त्रम् ।

हे पुत्र ! मैं सालोक्यादि चार प्रकारकी मुक्तिकी वात कहता हूँ। सुनो,—उनमें देवलोककी प्राप्ति सालोक्य कहाती है ; और देवताओं के पास वास करनेका नाम सामीप्य है। उनके स्वरूपमें अवस्थान करनेका नाम सायुज्य है, ब्रह्मके मूर्त्ति-भेदमें लय करनेको सार्ष्टि कहते हैं। इन चार तरहकी मुक्तिके वाद निर्वाण मुक्ति है।

जीवे ब्रह्मणि संलीने जन्ममृत्यु विवर्जिता।
या मुक्तिः कथिता सद्भिस्तन्निर्वाणं प्रचक्षते ॥

हेमाद्रौ धर्म्मशास्त्रम्।

जीवके परब्रह्ममें लय प्राप्त होनेसे जो मुक्ति होती है, ज्ञानी-गण उसे ही निर्वाण मुक्ति कहते हैं। निर्वाण मुक्ति होनेसे फिर जन्म-मृत्यु नहीं होती है। महेश्वरने रामचन्द्रसे कहा था,—

सालोक्यमपि सारूप्यं सार्ष्टिं सायुज्यमेव च।
कैवल्यं चेति तां विद्धि मुक्तिं राघव पञ्चधा।

शिवगीता १३।३

हे राघव! मुक्ति पाँच तरहकी होती है—सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य, सार्ष्टि और कैवल्य। अतएव देखते हैं कि निर्वाण-मुक्ति कैवल्य मुक्तिका सिर्फ दूसरा नाम ही है। बाह्य और अन्तःप्रकृतिको वशीभूत करके आत्माका ब्रह्म भाव प्रकाश करना ही योगका उद्देश्य है। इस परम फलका पाना ही कैवल्य कहाता है।

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्या पूरात्।

पातञ्जल दर्शन, कैवल्य पाद २

प्रकृतिके आपूरणसे एक जाति दूसरी जातिमें बदल जाती है। यथा—

यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया।
स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत् स्वरूपताम् ॥
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यान्तेन प्रवेशितः।
याति तत्सात्मतां राजन् पूर्वरूपञ्च संत्यजन् ॥

श्रीमद्भागवत् ६।११।२२-२३

देही व्यक्ति स्नेह, द्वेष, किम्वा भयसे ही हो, जिस जिस वस्तु को सर्वतोभावसे बुद्धिके साथ एकाग्र रूपसे मनमें धारण करते हैं, उसे वैसे ही रूपकी प्राप्ति होती है। जैसे पेशस्कृत कीट (लखोड़ी कीड़े) से तैलपायिका (तिलचट्टा) पकड़ा जाकर और गड्ढेमें पहुँच भयसे उसके रूपका ध्यान करते हुए अपने पूर्वरूप (असली सूरत) को परित्याग न करके भी उसके जैसा भाव पा जाता है। पुरुष जब केवल वा निर्गुण हो जाता है अर्थात् जब प्रकृति और प्राकृतिक-विकार आत्मचैतन्यमें प्रकाश नहीं पाते हैं—आत्मामें जब किसी प्रकार प्रकृति और प्राकृतिक द्रव्य नहीं झलकता है, आत्मा जब चैतन्यमात्रमें प्रतिष्ठित रहता है, जब विकार नहीं देख पड़ता है, तब इस तरह निर्विकार वा केवल होनेको ही निर्वाण वा कैवल्य-मुक्ति कहते हैं। दीर्घकाल तक (बहुत दिन) योग साधने पर जब स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन तरहके देह नाश होकर जीव और आत्माका ऐक्य-ज्ञान हो जाता है, तब केवल मात्र निरुपाधि परमात्मा की प्रतीति (विश्वास) होती है। इसी प्रकार हृदयाकाशमें अद्वितीय पूर्णब्रह्मके ज्ञानका उदय होना ही कैवल्य मुक्ति के नामसे विख्यात हैं।

जगत्में जो कुछ साधन-भजनकी विधि-व्यवस्था प्रचलित है, वह सभी सिर्फ ब्रह्मज्ञानके उपायके लिये होती है। ज्ञानके उदयसे भ्रमरूप अज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है; अज्ञानकी निवृत्ति यानी नाश होते ही माया, ममता, शोक, ताप, सुख, दुःख, मान, अभिमान, राग, द्वेष, हिंसा, लोभ, क्रोध, मद, मोह, मात्सर्य्य आदि अन्तःकरण

की सब वृत्तियोंका निरोध (रुक) हो जाता है। उस समय केवल विशुद्ध चैतन्यमात्र स्फूर्त्ति पाता है। उस केवलमात्र चैतन्यका स्फूर्त्ति पाना ही जीव-दशामें (जीवित अवस्थामें) जीवन्मुक्ति एवं अन्तमें निर्वाण लेना कहाता है। सिवा इसके तीर्थ-स्थानमें घूमने या साधु-संन्यासी अथवा वैरागियोंके दलमें मिलने-मिलानेसे या कौपिन, तिलक, माला-झोलाके आडम्बरसे, साधन-भजनके समयमें काट-छाँट करनेसे एवं कर्म्मकाण्ड द्वारा या किसी दूसरी तरहसे मुक्तिका मिलना असम्भव बात है। यथा—

यावन्न क्षीयते कर्म्म शुभञ्चाशुभमेव वा।
तावन्न जायते मोक्षो नृणां कल्पशतैरपि ॥
यथा लोहमयैः पाशैः पाशैः स्वर्णमयैरपि।
तथा बद्धो भवेज्जीवः कर्म्मभिश्चाशुभैः शुभैः ॥

महानिर्वाण तन्त्र १४।१०९-११०

जबतक शुभ वा अशुभ कर्म्मोंका क्षय नहीं होता है, तबतक सौ कल्पमें भी जीवको मुक्ति नहीं मिल सकती है। जैसे लोहे या सोने दोनों ही प्रकारकी जञ्जीरसे बन्धन हो सकता है, वैसे ही जीवगण शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके कर्म्मोंसे बद्ध हो जाते हैं। इसी कारण मैं कर्म्मकाण्डका दोष नहीं दिखाता हूँ। अधिकारके भेदसे काम भी भिन्न भिन्न होता है। जो कम समझनेवाला है, वह कर्म्मकाण्डसे चित्त शुद्धि होने पर ही ऊँचे अधिकारीके कार्य्यका अनुष्ठान करे ; नहीं तो जो एकदम निराकार ब्रह्म लाभ करनेके लिये

दौड़ता है, वह बेशक समधिक (बहुत) भूला हुवा है। अतः अधिकारके अनुसार ही काम करना ठीक होगा।

सकामाश्चैव निष्कामा द्विविधा भुवि मानवाः।
सकामानां पदं मोक्षो कामिनी फलमुच्यते॥

महानिर्वाणतन्त्र १३ ३०।

इस संसारमें सकाम और निष्काम दो श्रेणीके मानव हैं। इसमें जो निष्काम हैं, वे मोक्षपथके अधिकारी हैं; किन्तु जो सकाम हैं, वे कर्म्मके अनुसार स्वर्गलोकादि गमनपूर्वक (जाकर) नाना प्रकारकी भोग्य वस्तुओंका भोग करके कृत कर्म्मका क्षय (नाश) होने पर, फिर भूलोकमें आकर जन्म ग्रहण करते हैं। इसीसे कहता हूँ, कि कर्म्मकाण्डके द्वारा मुक्ति मिलनेकी सम्भावना नहीं है। महायोगी महेश्वरने कहा है :—

विहाय नामरूपाणि नित्य ब्रह्मणि निश्चले।
परिनिश्चततत्त्वो यः स मुक्तः कर्म्मबन्धनात्॥
न मुक्तिर्ज्जपनाद्धोमादुपवासशतैरपि।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहभृत्॥
आत्मासाक्षी विभुः पूर्णः सत्योऽद्वैतः परात्परः।
देहस्थोऽपि न देहस्थो ज्ञात्वैवं मुक्तिभाग्भवेत्॥
बालक्रीड़नवत् सर्वं नामरूपादि कल्पनम्।
विहाय ब्रह्मनिष्ठो यः स मुक्तो नात्र संशयः॥
मनसा कल्पिता मूर्त्ति र्नृणां चेन्मोक्षसाधनी।
स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानो मानवास्तदा॥

मृच्छिलाधातुदार्वादि मूर्तावीश्वर बुद्धयः ।
क्लिश्यन्तस्तपसा ज्ञानं विना मोक्षं न यान्ति ते ॥
आहार संयमक्लिष्टा यथेष्टाहारतुन्दिलाः ।
ब्रह्मज्ञानविहीनाश्च निष्कृतिं ते ब्रजन्ति किम् ।
वायूपर्णकण तोयव्रतिनो मोक्षभागिनः ।
सन्तिचेत् पन्नगा मुक्ताः पशुपक्षिजलेचराः ॥
उत्तमो ब्रह्मसद्भावो ध्यानभावस्तु मध्यमः ।
स्तुतिर्जपोऽधमो भावो वहिः पूजाधमाधमा ॥

महानिर्वाण तन्त्र, १४ उ०

महानिर्वाण तन्त्रके इन कई श्लोकोंसे साफ प्रमाणित होता है, कि ब्रह्मज्ञानके अतिरिक्त वाह्याडम्बरसे (ऊपरी तड़क-भड़कसे) मुक्तिकी सम्भावना नहीं रहती । वासना कामनाको परित्याग करके मनोवृत्ति शून्य न होने पर ब्रह्मज्ञानका उदय नहीं होता है । त्यागी या संसारी सभीके लिये एक ही नियम है । साधु-संन्यासी वा वैरागी होनेसे ही मुक्ति नहीं मिलती है ; मनको साफ करके क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये । किसीने संसारको त्यागकर वैराग्य तो ले लिया है ; लेकिन, वह बाल-बच्चे, नाती-पोते, जमीन-दौलत, बैल-घोड़े और घर-द्वारके लिये तो गृहीका पितामह बन बैठा है ।— ऐसे वैरागी वर्त्तमान युगमें विरल नहीं हैं ।

आकीट ब्रह्म पर्य्यन्तं वैराग्यं विषयेष्वनु ।
यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्म्मलम् ॥

फिर भी देखिये अवधूत-लक्षणमें दत्तात्रेयने क्या कहा है :—

अ,—आशापाश विनिर्मुक्तः आदिमध्यान्तनिर्म्मलः ।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारस्तस्य लक्षणम् ॥
व,—वासना वर्जिता येन वक्तव्यं च निरामयम् ।
वर्त्तमानेपु वर्त्तेत वकारस्तस्य लक्षणम् ॥
धू,—धूलिधूसरगात्राणि धूतचित्तो निरामयः ॥
धारणाध्याननिर्मुक्तो धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥
त,—तत्त्वचिन्ता धृता येन चिन्ताचेष्टा विवर्जितः ।
तमोऽहंकार निर्मुक्तास्तकारस्तस्य लक्षणम् ॥

अवधूत गीता । ८ अः

शास्त्रमें जैसा त्यागीका लक्षण देखा जाता है, वैसा वैरागीका देख पड़ना मुशकिल है। खेती-बारीमें, व्यवसाय-वाणिज्यमें (कारोबारमें) यदि गृहीको हटानेकी इच्छा थी, तो आत्मिय-स्वजनको छोड़ जाति आदिको जलाञ्जली देकर भेक लेनेकी क्या जरूरत ? विवाह करके, स्त्री-पुत्र लेकर घरमें रहनेसे क्या धर्म्म नहीं होता ?— कौपीन लगाकर वैष्णवीनामा-वारविलासिनी न ग्रहण करनेसे क्या गोपीवल्लभकी कृपा नहीं होगी ? आजकल वैष्णव अपनी एक जाति बना बैठे हैं ! जितने आलसी निकम्मे हैं, वे खाना न पाकर, पेटकी चपेटसे, विवाहके अभावसे, इन्द्रियोंकी उत्तेजनासे वैष्णव-धर्म ग्रहण करके आसानीके साथ सर्व अभावकी पूर्ति कर रहे हैं। ज्ञानके लिये तो अंगूठा ही है ; लेकिन वाह्यदृश्ये (बाहरी दृश्यसे) विश्व कँपाते हैं। एक, एक महाप्रभु मानो पक्की टट्टी-सा ! पक्की टट्टीके

ऊपर चूनेके अस्तरसे जैसे सफेदीमें धप्-धप् करते हैं और भीतरमें वह मल-मूत्रसे परिपूर्ण रहती है, वैसे ही वह भी सर्वाङ्ग अलका-तिलकासे सजाकर मालाझोला लेकर सर्वदा माला सरकाते हैं; लेकिन अन्तरमें विषय-चिन्ता, कपट, कुटिलता, स्वार्थपरता, हिंसा-द्वेष और अहंभावसे भरे हुए हैं। ऐसे वर्णके चोरके झूंठे आदमीके खप्परमें भोले भावुक भूलकर माथा फोड़ते हैं। मुलम्मेकी तरह झूठी कलई ठीक नहीं है एवं अन्तरमें (भीतरमें) मैलेसे पूर्ण रख बाहर लोगोंको धोखा देनेवाले साधुका ढङ्ग बिलकुल अच्छा नहीं है। फिर कोई तर्कमें तो मूर्त्तिमान हैं, लेकिन पेटमें अंगुली घुसेड़नेसे 'क' का पता नहीं चलता। जो ज्ञानमें पक्का (पूरा) है, धर्म्मका प्रकृत मर्म्म जिसने समझ लिया है, वह कभी तर्क (वहम नहीं) करता है। जलते हुये घीमें पूड़ी छोड़ देनेसे पहले वह अधिक शब्द करती है एवं डूब जाती है, लेकिन जब उसमें रहा हुआ पानीका हिस्सा जल जाता है, तब शब्द कम निकलता है एवं पूड़ी भी ऊपर उठ आती है। गङ्गारामगण (बेवकूफ गण) इस बातको न समझ अपनी बुद्धि अपने ही सर्व-साधारणके सामने प्रकाशित करते हैं। वास्तवमें यदि किसीको सच्चा बननेकी वासना है, तो उसे मिट्टी बनना पड़ेगा। अहंभावकी प्रतिष्ठाशा, यश-गौरवकी प्रत्याशा बिन्दु मात्र भी मनमें रहनेसे प्रेम और भक्ति पासमें ही नहीं आ सकते हैं। वासना बन्धनकी जड़ है। अहङ्कारकी अवधि तक सर्वांशा परित्याग करनेसे फिर चिरबद्ध (हमेशा बन्धनमें) नहीं रहना पड़ता है, आसानीसे त्रिताप-मुक्त होकर जीव निर्वाण मुक्ति लाभ कर सकता

है। जीव वासना-कामनाके खादके कारण ब्रह्मसे स्वगत भेदसम्पन्न है, उस वासना-कामनाके खादको ज्ञानकी धोंकनीसे जलाकर दूर कर सकनेसे मुक्त होकर जीव जो ब्रह्म है, वही ब्रह्म बन जाता है।

दूसरे नियमसे निर्वाण मुक्त लाभ करना इस ग्रंथका आलोच्य विषय नहीं है। योगसे सर्वश्रेष्ठ मुक्ति निर्वाणपद लाभ होता है। साधक क्रियाके अनुष्ठानसे कुण्डलिनी शक्तिको चेतन करके जीवात्माके साथ अनाहत पद्ममें पहुँचने पर सालोक्य लाभ करता है; विशुद्ध-चक्र तक पहुँचेनेसे उसे सारूप्य लाभ होता है; आज्ञा-चक्र तक पहुँचेनेसे सायुज्य लाभ होता है; आज्ञा-चक्रके ऊपर निरालम्बपुरमें आत्मज्योतिः दर्शन वा ज्योतिके बीचमें इष्टदेव दर्शन करनेसे किम्वा नादमें मनोलय कर सकनेसे निर्वाण मुक्ति मिलती है।

जीवः शिवः सर्वमेव भूते भूते व्यवस्थितः।
एवमेवाभिपश्यन् यो जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

जीवन्मुक्ति गीता।

यह जीव ही शिवस्वरूप है, जो सब जगह सर्वभूतमें घुसकर विराजित है, ऐसे दर्शन-कारीको ही जीवन्मुक्त कहते हैं। अतएव पाठकगण! इस ग्रन्थमें लिखी हुई किसी भी क्रियाके अनुष्ठान-पूर्वक जीवन्मुक्त होकर इस संसारमें परमानन्द भोग करके, अन्तमें निर्वाण मुक्ति लाभ कर सकते हैं। जो व्यक्ति योगकी साधनामें असमर्थ है, वह संस्कार, वासना-कामना, सुख-दुःख, शीत-आतप,

मान-अभिमान, माया-मोह, क्षुधा-तृष्णा, सब भूलकर प्राणके प्यारे ठाकुरके शरणमें पहुँचनेसे मुक्ति लाभ करता है। *

पाश्चात्य शिक्षासे विकृत (बिगड़े) मस्तिष्क व्यक्तियोंके भीतर यदि एक व्यक्ति भी इस ग्रन्थको पढ़ योग साधनमें लग जाय तो, मेरा लेखनी धारण करना सार्थक होगा। मुसलमान, खृष्टान आदि एवं दूसरे धर्म्मावलम्बीगण भी इस प्रक्रियासे साधन करके फल पा सकते हैं; इसमें शंका नहीं है। यदि कोई नियमित रूपसे योग सीखना चाहे, तो अनुग्रह करके इस ग्रन्थकारके पास पहुँचनेसे, मुझे जितनी शिक्षा मिली है एवं आलोचना-आन्दोलनसे मैंने जितना ज्ञान लाभ किया है, उसके अनुसार समझाने एवं यत्नके साथ क्रियादि सिखानेमें मैं कुछ भी कसर न रक्खूंगा। लेकिन मैं—

जानामि धर्म्मं न च मे प्रवृत्ति-
र्जानामि धर्म्मं न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन यथा
नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

ॐ महाशान्तिः।

---

* भक्तिपथमें मुक्ति, भक्तिका साधन, प्रेमभक्तिका माधुर्य्यस्वाद, वैराग्य संन्यास आदि हिन्दुधर्म्मके चरम विषय मत्प्रणीत 'प्रेमिकगुरु' ग्रन्थमें विस्तारसे समझाये गये हैं।

तृतीय अंश

मन्त्र-कल्प

योगगुरु
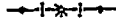
तृतीय अंश

मन्त्र-कल्प

दीक्षा-प्रणाली

नमोऽस्तु गुरवे तस्मायिष्टदेवस्वरूपिणे ।
यस्य वाक्यामृतं हन्ति विषं संसार-संज्ञितम् ॥

अज्ञान तिमिरावृत्त चक्षुओंको ज्ञानाञ्जन-श्लाकासे जिन्होंने खोल दिया है एवं अखण्डमण्डलाकार जगत्-व्याप्त ब्रह्मपदका जिन्होंने दर्शन कराया है, उन्हीं इष्टदेवताके स्वरूप नित्याराध्य गुरुदेवके पद-पङ्कजमें प्रणाम करते हुए, उनके ही उपदिष्ट मन्त्र-कल्पको आरम्भ करता हूँ ।

दीक्षागुरु हिन्दुओंके नित्याराध्य देवता हैं । गुरुपूजाके बिना हिन्दुओंकी इष्टदेवताकी पूजा सुसिद्ध नहीं होती है । गुरुपूजा करनेका नियम हिन्दुओंके अस्थि-मज्जामें भी समा गया है । गुरु

सभी जगह पूज्य एवं सम्मानार्ह होते हैं। वैदिक हो, तान्त्रिक हो, वैष्णव हो, अथवा शाक्त, शैव, सौर, गाणपत्य कोई भी क्यों न हो, हिन्दू मात्र ही गुरुको पूजते एवं गुरुकी यथोचित भक्ति प्रदर्शित करते हैं। शास्त्रमें भी लिखा है—

न च विद्या गुरोस्तुल्यं न तीर्थं न च देवता।
गुरोस्तुल्यं न वै कोऽपि यद्दृष्टं परमं पदम्॥
न मित्रं न च पुत्राश्च न पिता न च बान्धवाः।
न स्वामी च गुरोस्तुल्यं यद्दृष्टं परमं पदम्॥
एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणी भवेत्॥

ज्ञानसङ्कलिनी तन्त्र।

जिन गुरुने परमपद दिखाये हैं, उन गुरुके बराबर क्या विद्या, क्या तीर्थ, क्या देवता कुछ भी नहीं हो सकता; जो गुरु परमपद दिखाते हैं, उनके बराबर कोई भी मित्र, पुत्र, पिता, बान्धव, स्वामी आदि नहीं हो सकते हैं; जो गुरु शिष्यको एकाक्षर मन्त्र सुनाते हैं, पृथिवीके भीतर ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो उन्हें देनेसे उनके ऋणसे छुटकारा मिल सके। वैष्णवगण कहते हैं, कि—

"गुरु त्यजे गोविन्द भजे।
सेइ पापी नरके मजे॥"

यानी गुरुको त्याग करके जो गोविन्दको भजते हैं, वे पापी नरकमें जाते हैं। गुरुको ऐसा पूज्यभाव क्यों मिला? वास्तवमें जो गुरुसे परमपद लाभ होता है यानी ब्रह्म साक्षात्कार लाभ होता

है,—जो अज्ञान-तिमिरावृत-चक्षुको ज्ञानाञ्जन शलाकासे खोलकर दिव्यज्ञान प्रदान करता है, जो संसारके त्रिताप-रूप विपका नाश साधन कराता है, उसकी अपेक्षा जगत्‌में और कौन् गरीयान्, महीयान् और आत्मीय हो सकता है ? उन्हें यदि हम भक्ति-प्रीतिकी भेट न देंगे तो फिर किसे देंगे ? लेकिन दुःखकी बात है, कि वर्त्तमान युगमें शिष्यको सच्ची राह सुझानेवाले गुरु गृहस्थोंमें प्रायः नहीं देख पड़ते हैं। आजकल गुरु बनना एक प्रकारका रोजगार ही हो गया है। अब हमारे देशमें गुरुका गुरुत्व नहीं है, कर्त्तव्य ज्ञान नहीं है ; दीक्षाका उद्देश्य गुरु-शिष्य कोई भी नहीं समझते हैं। दीक्षा लेनेका उद्देश्य क्या है,—

दीयते ज्ञानमीत्यर्थं क्षीयते पाशबन्धनम्।
अतो दीक्षेति देवेशि कथिता तत्त्व चिन्तकैः ॥

योगिनी तन्त्र, ६ पः।

और भी देखिये,—

दिव्य ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्य्यात् पापक्षयस्ततः।
तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्वतन्त्रस्य सम्मता ॥

विश्वसार-तन्त्र, २ पः।

इन सबका भावार्थ यही है, कि दीक्षासे दिव्यज्ञान लाभ होता है, पाप क्षय (नाश) होता है एवं पापका बन्धन टूटता है। यही दीक्षा शब्दकी व्युत्पत्ति और दीक्षाका उद्देश्य है, लेकिन दीक्षा लेकर कितने लोगोंका यह उद्देश्य सफ़ल होता है ? और वह क्यों कर हो सकता है।

अभिज्ञश्चोद्धरेन्मूर्खं न मूर्खो मूर्खमुद्धरेत्।

कुलमूलावतार-कल्पसूत्र टीका।

अभिज्ञ (ज्ञानी) व्यक्ति अनभिज्ञ व्यक्तिका (मूर्खका) उद्धार कर सकता है; लेकिन अनभिज्ञ मूर्ख (अज्ञान मूर्ख) मूर्खका उद्धार नहीं कर सकता है। व्यवसायी (रोजगारी) गुरु-सम्प्रदायके बीच साधक-शिष्यका अज्ञान-अन्धकार दूर करके उसका उद्धार चाहनेवाले सद्गुरु बहुत थोड़े मिलेंगे। जो व्यक्ति खुद-ब-खुद आगे पीछे बन्धनकी दशामें रह, हाथ-पैर नहीं हिला सकता है, वह (व्यक्ति) दूसरेका बन्धन कैसे छुड़ावेगा? गुरुदेव ही अन्धेरेमें जब मारे-मारे फिरते हैं तो, वे शिष्यका अज्ञान-अन्धकार कैसे मिटावेंगे? ऐसे ही काण्ड ज्ञानशून्य (अकलके अन्धे) रोजगारी गुरुनामधारी अद्भुत (अनोखे) जीव कलिके एक कलि होते हैं। यह सब गुरु-गोस्वामिगण आह्निक और पूजादिके समय ध्यानमें "सोऽहं" भावनाकी जगह अन्धकार देखते किम्वा बाजारकी मन-मानी चीजें खरीदते या विषय-चिन्तासे मारे-मारे फिरते हैं। कोई तो सारे शरीरमें गोपीमृत्तिका लगाकर मुंहसे सदा गोपीवल्लभ बोलते, आकण्ठ-वक्ष (गलेसे छाती तक) लटकते हुये सफेद कपड़ेकी वा रङ्गदार रेशमी झोलीमें सदा माला सरकाते रहते हैं! लेकिन, मनमें नाना प्रकारकी चिन्ता, एवं मुंहसे तरह तरहकी बात निकालते हैं। मन और कान नाना दिशाओंमें घूमा करते हैं, मुंहसे भी बराबर बातें निकलती हैं, उधर झोलीमें माला भी बराबर चला ही करती है। यह गुरु-सम्प्रदाय धोखे-चलाकीसे केवल मात्र शिष्य बढ़ानेकी

कोशिशमें हमेशा घूमता है। प्रकृत ज्ञानिगण अशेष साध्य-साधना पर भी शिष्य बनानेको राजी नहीं होते ; फिर मैंने तो अपनी आँखों से देखा है, कि कितने ही रोजगारी गुरु राजीवाजीकर—अपने घरसे घी, जनेऊ आदि ला संतुष्ट एवं प्रसन्न होकर शिष्यका अज्ञान-अंधकार मिटाते हैं ! लेकिन एक बार जो शिष्य बन जाता, फिर वह छूटता थोड़े ही है ? यदि बंधा हुआ सालाना न मिले तो गुरु चेलेका शिर तक घड़ा देते हैं, ऐसे गुरु शिष्यको इस तरह मन्त्र सुनाते हैं,—

"हरि बल मोर वाछा ।
वत्सरान्ते दिउ चारि गण्डा पयसा और एकखाना काछा ।"

यानी

हरि हरि बोलो मेरे बच्चा ।
गुरु अपनेको समझो सच्चा ॥
जो नहीं और वर्षमें कीजे ।
चार आने तो पैसे दीजे ॥
धोति एक गुरुहिं पहनाये ।
चेला स्वर्ग जात उठिलाये ॥

इस तरहके गुरु संसारमें विरल (कम) नहीं हैं। शिष्यकी आध्यात्मिक उन्नतिके बदले सालाना रजत खण्ड (रुपया) वसूल कर कृतकृतार्थ बनानेसे दीक्षाका उद्देश्य कैसे निकल सकता है ? इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नित्य ही देखनेमें आता है। गुरु शिष्यके घर पहुँच, शिष्यके कानमें एक फूंक डाल कुछ रजत मुद्रा इकट्ठा करके पुश्त-दर

पुश्त-जायदाद दखल करनेके लिये मौरूसी मोतकदमी सम्पत्ति अपने वशमें करके चल देते हैं। गुरु तो अपना काम निकालकर स्वार्थके लिये दूसरे किसीका गला काटनेको दौड़ते हैं ; इधर बेचारा चेला गुरुका बताया हुआ सूखा वर्णमालांश यथासाध्य जपने लगता है ; लेकिन वह जिस अन्धकारमें था—उसी अन्धकारमें रहता है—उसके हृदय-क्षेत्रकी अवस्था "यथा पूर्वं तथा परं" पहले ही जैसी रहती है। शिष्यका अज्ञान अन्धकार दूर करनेकी—बन्धन छुड़ानेकी या दिव्य-ज्ञान प्रदान करनेकी एक तिलके बराबर भी शक्ति उस गुरुमें नहीं दीखती। हायरे स्वार्थान्ध कलिके गुरु ! यदि रुपया लेकर पाँच मिनटमें आत्माका उद्धार हो जाता तो इतने शास्त्रोंकी आवश्यकता ही नहीं होती ; एवं मुनि-ऋषिगण भी इतने दीर्घकाल वनमें वास करके कठोर साधन नहीं करते। वह भी वर्त्तमान कालके नये बाबूकी तरह घड़ी लगाये छड़ी हिलाते हुए बालोंकी खूबसूरती बनाकर मजा उड़ानेमें कमी न करते।

दूसरी भी एक बात है, कि शक्ति मन्त्रके उपासकगणके लिये दीक्षाके साथ शाक्ताभिषेक भी होना चाहिये। वामकेश्वर-तन्त्र और निरुत्तर-तन्त्रादिमें लिखा है, कि जो व्यक्ति अभिषेकके बिना दश महाविद्याके किसी भी मन्त्रकी दीक्षा देता है, वह व्यक्ति जबतक चन्द्र-सूर्य्य रहते हैं, तब तक नरकमें रहता है। फिर जो व्यक्ति अभिषिक्त न होकर तान्त्रिक मतसे उपासना करता है, उसका जप-पूजादि अभिचार (नाशक मंत्र) जैसा होता है। यथा :—

अभिषेकं विना देवि कुलकर्म्म करोति यः।
तस्य पूजादिकं कर्म्म अभिचाराय कल्पते ॥

वामकेश्वर-तन्त्र।

समझ लीजिये, क्या बात लिखी है! लेकिन कितने लोग दीक्षाके साथ शिष्यका अभिषेक करते हैं? शाक्तगणको पहले शाक्ताभिषेक, उसके बाद पूर्णाभिषेक, उसके बाद क्रमदीक्षा मिलनी चाहिये। क्रम दीक्षाके सिवाय सिद्धि लाभ नहीं होती है।

क्रमदीक्षा विहीनस्य कथं सिद्धिः कलौ भवेत्।
क्रमं विना महेशाणि सर्वं तेषां वृथा भवेत् ॥

कामाख्या-तन्त्र, ३२ पः।

क्रम दीक्षाके बिना कलियुगमें कोई मन्त्र-सिद्धि नहीं होती है एवं क्रम बिना सब पूजा आदि वृथा हो जाती है। हमारे देशके साधकाग्रगण्य द्विज रामप्रसादने क्रम दीक्षित हो * पञ्चमुण्डीके आसन पर मन्त्र जप करते हुये सिद्धिलाभ किया था। कितने ही लोग कहते हैं कि "रामप्रसादने गाना गा कर सिद्धि पायी थी।" लेकिन असलमें ऐसी बात नहीं है; आज भी उनका पञ्चमुण्डी आसन विद्यमान है, मैंने अपनी आँखोंसे उस आसनको देखा है।

* विधानानुयायी दो चाण्डालके मुण्ड, एक श्रृगालका मुण्ड, एक वानरका मुण्ड एव एक साँपका मुण्ड इन पञ्च मुण्डके आसन पर बैठ जप करनेसे मन्त्र सिद्धिके विषयमें विशेष सहायता मिलती है।

ऐसा सुननेमें नहीं आता है, कि सिवा महात्मा रामप्रसादके किसी दूसरेने मंत्र-जपसे सिद्धि पायी हो। इसका प्रधान कारण गुरुकुलका पतन ही है। उपयुक्त (सच्चा) उपदेष्टाके अभावसे मन्त्रयोगमें फल लाभ नहीं होता है।—यह तो एक तर्फकी बात हुई ; दूसरी बात यह है, कि अकसर कोई सद्गुरुको नहीं भी पहचानता है। मानव-जीवनको बिगाड़नेवाले भण्ड (पाखण्डी) गुरुके दौर्दण्ड प्रभावमें भूलकर, बाहरी आडम्बरसे शून्य साधकगणकी (गुरु) उपेक्षा करता है। इसीसे दीक्षा लेकर भी अभाव पूर्ण नहीं होता है। कोई तो कुलगुरुके छोड़नेसे होनेवाले महापाप-पङ्कमें डूबनेकी आशंका से ह्रस्व-दीर्घ-बोध-वर्जित बैल जैसे मूर्खके पैरोंमें पड़कर भी अन्तमें उन्हीं दण्डधारीके दूतगणकी प्रचण्ड थप्पड़की बात स्मरण करके गालपर हाथ रख डरसे लण्ड-मण्ड (नष्ट-भ्रष्ट) हो जाते हैं। वास्तवमें कुलगुरुके छोड़ने पर शास्त्रके अनुसार पैतृक-गुरु-त्यागके कारण दुरदृष्टशाली (भाग्य हीन—अभागा) बनना पड़ता है ; तब इसका उपाय क्या है ?

उपाय है ! पैतृक गुरु न छोड़ उसके पाससे मन्त्र लेकर बादमें शिक्षाके लिये जगत्गुरु महेश्वरने—

सद्गुरु—

पानेकी विधि भी शास्त्रमें लिख दी है। यथा—

> मधु लुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत्।
> ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत ॥ तन्त्र-वचन।

मधुके लोभसे भौंरा जैसे एक फूलसे दूसरे फूल पर पहुँचता है, वैसे ही ज्ञानके लोभी शिष्यको भी एक गुरुसे दूसरे गुरुका सहारा पकड़ना चाहिये।

अतएव सबको ही पैतृक गुरुके पाससे पहले दीक्षा लेकर, पीछे उपयुक्त गुरुसे उपदेश लेना एवं साधनाभिलाषीगणको क्रियादि सीखना चाहिए; लेकिन सावधान!—भीतरका हाल न समझ कर बाहरी चटक-मटक, हाव-भाव, वाक्याडम्बर देख भूलमें न पड़ जाना। गुरुकी ठीक पहचान न कर सकनेके कारण क्रमशः एक गुरुसे दूसरे गुरुके पास बराबर घूमनेसे फिर साधन कब साधोगे? वर्त्तमान समयमें जैसा देख पड़ता है, उससे तो उच्चकण्ठसे (चिल्ला कर) कह सकते हैं, कि हमारे देशके गृहस्थ गुरुके पास साधकोंका अभाव पूरा न पड़ेगा। इसीसे कहता हूँ, कि उपगुरुके चरणमें आश्रय लेकर भी कहीं अंगूठा ही चूमना न पड़े। जिसका कुलगुरु कोई नहीं है, वह पहलेसे ही होशियार हो जाय। मैं इस बातको भुगत चुका हूँ। अनेक पाखण्डियोंके पल्लेमें पड़ मैंने बहुत दिन पण्ड (नष्ट) किया है। अतएव शास्त्रादिमें जैसा गुरुका लक्षण लिखा है, उसके अनुसार उपयुक्त गुरुसे ही उपदेश सुन साधनमें लगो; नहीं तो सुफलकी आशा दूर हो जायगी। एक जन्ममे तो क्या बहु-जन्म तक भी साधन न करनेसे मन्त्रयोगमें सिद्धि पाना मुश्किल है। इसीलिये सब तरहके साधनमें मन्त्रयोग अधम बताया गया है। कम समझदार अधम अधिकारिगण ही मन्त्रयोगका साधन करते हैं। फिर उपयुक्त उपदेष्टाके उपदेशसे अनुष्ठित न होनेसे और दूसरी राह भी नहीं देखते।

मन्त्र-तत्त्व ।

नाद-तत्त्वमें कहा गया है, कि शब्द ही ब्रह्म है। जब सृष्टि शुरू हुई, तब कुछ भी नहीं था ; पहले गुण और शक्तिका विकाश हुआ। गुणत्रय और शक्तित्रयको लेकर ही सप्तलोकका सृजन, पालन और लय संघटित होता है। गुण अव्यक्त जीवकी भाँति सभी वस्तुओंमें विद्यमान रहता है, लेकिन शक्तिकी सहायतासे उसका प्रकाश होता है। परमाणु, तन्मात्रा और विन्दुको लेकर ही जगत् है। परमाणु ही गुण कहलाता है। फिर अहङ्कार तत्त्वके आविर्भावसे तन्मात्रा द्वारा—साकल्यमें जगत् सृष्टि होती है। विन्दु शब्द-ब्रह्मका अव्यक्त त्रिगुण एवं चिदंश बीज है। फल-स्वरूप विनाश ही एकार्थबोधक (एक अर्थ सूचित करनेवाला) और विनाश ही नित्य सूक्ष्म-शक्तिको बताता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर प्रभृति अमूर्त्तगुण—सरस्वती, लक्ष्मी और काली—यही उनकी सूक्ष्म-शक्तियां है। सब गुण शक्तिसे मिलकर स्थूल हुए हैं।

ब्रह्मा सृष्टि-कर्त्ता और उनकी सृष्टि-शक्ति सरस्वती है। सरस्वती नादरूपिणी शब्द-ब्रह्म है ; सरस्वती उसी शब्द-ब्रह्मका चिदंश बीज है। यही हमारे मन्त्रवादकी मूलात्मिका शक्ति है। यही शब्द जिस कामके लिये एक साथ गुंथे हुए योगबलशाली ऋषिगणके हृदयसे उत्पन्न होकर पदार्थ-संग्रहमें शक्तिमान हुआ था, वही मन्त्र रूपमें ग्रथित (गुंथकर) होकर विद्यमान रहा है ; अतएव मन्त्रशब्द

निःसन्देह अलौकिक शक्तिशाली और वीर्य्यशाली है। योगयुक्त हृदयके वहुत ज्यादा स्फुरणसे मन्त्रका प्रभाव प्रतिष्ठित एवं विकसित (प्रकट) होता है।

सभी बीजमन्त्र शक्तिके व्यक्त सूक्ष्म बीज हैं। जैसे "क्लीं" कृष्णका सूक्ष्म व्यक्त बीज है। एक पीपलके बीजकी उपमा देखिये। बीजका जो छिलका, तुष और सार है, उसमें ऐसी कौनसी चीजें हैं, जिनसे ऐसा प्रकाण्ड (बहुत बड़ा) महीरुह (वृक्ष) की सृष्टि हो सकी है? जब रासायनिक विश्लेषणसे भी उसमेंसे कुछ निकल नहीं सकता, तो उसे चार-पाँच दिन मिट्टीके भीतर रखनेसे एक दिन अंकुर कहाँसे फूट निकलता है? धीरे-धीरे वह किस अनजानी शक्तिके प्रभावसे आसमानकी ओर उठ पड़ता है? इस क्षुद्र सरसों बराबर बीजके भीतर बृहत् (बहुत बड़ा) पीपलका वृक्ष कारणरूपमें विद्यमान था। प्रकृतिकी सहायतासे इसी कारणवश वृक्षकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार देवदेवीके बीज मन्त्रोंमें उनकी सूक्ष्म-शक्ति विद्यमान रहती है; वह सुननेमें केवल सामान्य वर्ण मात्र है; लेकिन क्रिया द्वारा उसकी शक्ति चैतन्य करा देने पर जिस देवताका जो बीज है, वह उस दैवी शक्तिका काम करेगा; इसमें कोई सन्देह नहीं है। फल-स्वरूप, मन्त्रमें सिद्धि लाभ करनी हो तो मन्त्र जिन अक्षरोंमें, जिस भावमें, जिस छन्दमें गुंथा है, उसे उसी भावमें उच्चारण करना होगा। ऐसा होनेसे ही मन्त्र-साधनामें सिद्धि लाभ कर सकते हैं। तन्त्रमें कहा है, कि—

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः।
न सिध्यन्ति वरारोहे कल्पकोटि शतैरपि॥ कुलार्णवे।

मन्त्र जप करते समय मन, परम-शिव, शक्ति एवं वायु पृथक् पृथक् स्थानमें रहनेसे अर्थात् इनका एक साथ संयोग न होनेसे सौ कल्पमें भी मन्त्र सिद्धि नहीं होती है। यह सब विषय भली भाँति न जानकर, वहुतसे लोग कहते हैं, कि "मन्त्र जप करनेसे फल नहीं मिलता।" लेकिन फल जो अपनी त्रुटिसे प्राप्त नहीं होता, उसे कोई नहीं समझता। तभी तो देखिये कि, जगद्गुरु योगेश्वरजी क्या कहते हैं,—

मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं योनिमुद्रां न वेत्ति यः।
शतकोटि जपेनापि तस्य विद्या न सिध्यति ॥

सरस्वती तन्त्र।

मन्त्रका अर्थ, मन्त्रका चैतन्य और योनिमुद्रा न जानकर शत-कोटि जप करनेसे भी मन्त्रमें सिद्धि लाम नहीं होता है।

अन्धकारगृहे यद्वत्र किञ्चित् प्रतिभासते।
दीपनीरहितो मन्त्रस्तथैव परिकीर्त्तितः ॥

सरस्वती तन्त्र।

रोशनी शून्य अन्धकार घरमें जैसे कुछ देख नहीं पड़ता, वैसे ही ज्योति-हीन मन्त्र जप करनेसे कोई फल नहीं निकलता। दूसरे तन्त्रोंमें वताया गया है—

मणिपूरे सदा चिन्ता मन्त्राणां प्राणरूपकम्।

अर्थात् मन्त्रके प्राणरूप मणिपूर-चक्रमें सर्वदा चिन्तन करना चाहिये। वास्तवमें मन्त्रका प्राण मणिपूरमें अवस्थित है, उसे समझ कर क्रिया न करनेसे मन्त्र कभी चैतन्य नहीं होगा; सुतरां प्राणहीन

देहकी भाँति अचैतन्य मन्त्रका जप करनेसे कुछ भी फल नहीं निकलता। लेकिन मन्त्रका प्राण जो मणिपूरमें कैसे अवस्थित है, उसे क्या कोई रोजगारी गुरु समझा सकता है? मैं जानता हूँ, कि गृहस्थ लोगोंमें ऐसा एक भी नहीं है; योगी और संन्यासियोंके भीतर भी बहुत थोड़े लोग ही यह संकेत और क्रियानुष्ठान जानते हैं।

अतएव साधनाभिलाषी जापकगणकी यदि मन्त्र जप करके, फल-लाभ करनेके लिये वासना है, तो उन्हें नियमित रूपसे मन्त्र चैतन्य करके जपना चाहिये। जपका रहस्य सम्पादन करके यथा-रीति जप करने और विधिपूर्वक जप-समर्पण करनेसे, जप-जनित (जपसे मिलने वाला) फल अवश्य ही प्राप्त हो सकता है। जप-रहस्य सम्पादनके विना जपका फल पाना एकदम ही असम्भव बात है। लेकिन दुःखकी बात है कि जप रहस्य और जप-समर्पण-विधि प्रायः कोई नहीं जानते। * इसका कारण यह है, कि उपयुक्त उपदेष्टाके अभावसे जपादिका प्रकृत उपदेश प्राप्त नहीं होता है।

क्या शाक्त, क्या वैष्णव, सभीके लिये जप-रहस्य सम्पादन करना कर्त्तव्य है। कल्लुका सेतु, महासेतु, मुख-शोधन कर-शोधन प्रभृति अट्ठाईस प्रकारका जप-रहस्य क्रमके अनुसार एकके बाद दूसरा, यथा-नियम सम्पादन करके जपके अन्तमें विधि पूर्वक जप समर्पण करना होगा। फिर जप-रहस्य भी देवताके भेदसे अलग-अलग

---

* जप-रहस्य और जप-समर्पण-विधि प्रभृति मन्त्रके नानाप्रकार जपके कौशल और साधनादि मत्प्रणीत् "तान्त्रिकगुरु" पुस्तकमें प्रकाशित हुए हैं।

होता है। सुतरां अष्ट-विंशति प्रकारके जप-रहस्य देवताके भेदसे भिन्न-भिन्न भावमें ठीक-ठीक नियमानुसार लिखना इस क्षुद्र पुस्तकमें असम्भव है। विशेषतः पुस्तक देख कर साधारण लोग उस जप-रहस्यका सम्पादन कर सकेंगे, यह आशा तो दुराशा मात्र है। दूसरी विधिसे भी मन्त्र चैतन्य किया जाता है। हमारे देशमें साधारणतः पुरश्चरण करके लोग मन्त्र-चैतन्यकी चेष्टा करते हैं।

मन्त्र जगाना।

चलती बातोंमें पुरश्चरण-क्रियाको "मन्त्र-जगाना" कहते हैं। पुरश्चरण न करनेसे मन्त्रका चैतन्य नहीं होता और मन्त्रका चैतन्य न होनेसे, उस मन्त्र-प्रयोगका कुछ भी फल नहीं मिलता। इसलिये यदि कोई किसी भी मन्त्रमें सिद्धि लाभ करना चाहे तो उसको पुरश्चरण करना चाहिये। लेकिन बड़े ही दुःखकी बात है, कि वर्त्तमान समयके यजमान या शिष्य—गुरु या पुरोहितके पाससे पुरश्चरणकी पद्धति जान कर जो लोग पुरश्चरण करते हैं, उससे वे केवलमात्र वृथा अर्थव्यय करते एवं उपवासका कष्ट उठाते हैं। इन सब कारणोंसे हिन्दूधर्म्म परसे लोगोंका अनुराग प्रायः हटता जा रहा है। क्योंकि, अर्थव्यय और समय नष्ट करके जो काम किया जाता है उसमें यदि किसी प्रकारका सुफल न देख पड़े तो, उसको कौन करेगा? उस समय वे ही कहने लगते हैं कि "वर्त्तमान समयके लोग अंगरेजी पढ़ कर धर्म्म-कर्म्म नहीं मानते या शास्त्र पर विश्वास नहीं

रखते।" लेकिन कहना वृथा है, कि इस विषयमें वे ही सबसे अधिक दोषी हैं, उनकी त्रुटिसे ही लोगोंका विश्वास उठता जा रहा है ; परन्तु वे इस बातको स्वीकार नहीं करते।

पुरश्चरण मन्त्रका जप नहीं कहा जा सकता, मन्त्रका जिस भावसे उच्चारण करने पर स्वरमें कम्पन उत्पन्न होता है, मन्त्रके जगानेमें वही सीखना पड़ता है। गाना सीखनेवालेको राग-रागिनी का अभ्यास करते समय जैसे स्थान विशेषसे स्वर निकालना पड़ता है अर्थात् गलेको साधना पड़ता है, मन्त्रका उच्चारण करते समय भी वैसे ही नाड़ी साधनी होती है। उसी नाड़ी-साधनाको पुरश्चरण कहते हैं। यह बात हमारी बनाई हुई नहीं है, तन्त्रमें भी लिखा है—

मूलमन्त्रं प्राणबुद्ध्या सुषुम्णामूलदेशके।
मन्त्रार्थं तस्य चैतन्यं जीवं ध्यात्वा पुनः पुनः ॥

गौतमीये।

मूल मन्त्रको सुषुम्णाके मूलदेशमें जीव रूपमें चिन्तन कर मन्त्रका अर्थ और मन्त्र-चैतन्य पर ध्यान रखते हुए जप करना चाहिये।

मन्त्रका ठीक ठीक उच्चारण करके किस प्रकार जप करना होता है यह सीखना ही पुरश्चरणका मुख्य उद्देश्य है। अतएव जापकगण विशेषज्ञ व्यक्तिके पाससे पुरश्चरणकी क्रियाकी शिक्षा पा लेने पर अवश्य ही जपसे उत्पन्न फलको प्राप्त कर सकेंगे।

मन्त्र शुद्धिके सात उपाय ।

नियमितरूपसे पुरश्चरणादि सिद्धकार्य्यका अनुष्ठान करने पर भी यदि मन्त्रकी सिद्धि नहीं हो तो पुनः उक्त नियमसे ही पुरश्चरणादि करना चाहिये। इसी प्रकार नियमानुसार तीन वार पुरश्चरण करके भी दुर्भाग्यवश यदि कोई व्यक्ति कृतकार्य्य नहीं हो सके तो, फिर उत्साह नष्ट न करे—चुप न होकर शङ्करके वताये हुए सप्त उपायोंकी सहायता लेना चाहिये। यथा—

भ्रामणं रोधनं वश्यं पीड़नं शोषपोषणे।
दहनान्तं क्रमात् कुर्य्यात् ततः सिद्धो मनेन्नन्तु ॥

गौतमीये।

भ्रामण, रोधन, वशीकरण, पीड़न, शोषण, पोषण और दाहन—यथाक्रम इन सात प्रकारके उपायोंका अवलम्बन करनेसे अवश्य ही मन्त्र-सिद्धि होगी।

भ्रामण—

"यं" इस वायु वीज द्वारा मन्त्रके सब वर्णोंको गूंथना चाहिये। अर्थात् शिलारस, कर्पूर, कुंकुम, खशकी जड़ और चन्दन मिलाकर उसके द्वारा मन्त्रमें आये हुए सारे वर्णोंको भिन्न भिन्न करके एक वायु बीज एवं एक मन्त्रका अक्षर इस प्रकार मन्त्रमें जितने भी अक्षर हैं उनको लिखना चाहिये। पीछे यह लिखा मन्त्र दूध, घी, शहद और जलमें डाल देना चाहिये। उसके बाद पूजा, जप और होम करनेसे

मन्त्रसिद्धि होती है। ब्राह्मणके द्वारा भी यदि मन्त्रसिद्धि नहीं हो सके तो रोधनकी क्रिया करनी चाहिये।

रोधन—

"ॐ" इस बीज द्वारा मन्त्र संपुटित (मन्त्रके आदि और अन्तमें ॐ को लगाना) करके जप करना चाहिये ; इस प्रकार जप करनेका नाम रोधन है। यदि रोधन क्रियासे भी मन्त्रसिद्धि न हो तो वशीकरणकी विधि करना चाहिये।

वशीकरण—

आलता (अलक्तक, लाख), रक्तचन्दन, कुड़, हरिद्रा, धतूरेके बीज और मनःशिला—इन सब चीजोंसे भूर्जपत्र पर मन्त्रको लिख गलेमें धारण करना चाहिये। ऐसा करने पर भी यदि मन्त्रसिद्धि नहीं हो तो, चौथे उपायका अवलम्बन करना चाहिये।

पीड़न—

अधोत्तर योगसे मन्त्रको जप करके अधोत्तर-रूपिणी देवीका पूजन करना चाहिये। पीछे आकके दूधसे मन्त्रको लिख, पैरके नीचे दबा, उसी मन्त्रसे रोज होम करना चाहिये—इस कामको पीड़न कहते हैं। इससे भी कृतकार्य्य नहीं हो तो मन्त्रका शोषण करना चाहिये।

शोषण—

"वं" इस वरुणबीज द्वारा मन्त्रको संपुटित करके जप करना चाहिये एवं उसी मन्त्र-यज्ञकी भस्मसे भूर्जपत्र पर लिखकर गलेमें

धारण करना चाहिये। ऐसा शोषण करने पर भी यदि मन्त्र सिद्ध न हो तो पोषण करना चाहिये।

पोषण —

मूल मंत्रके आगे और पीछे त्रिविध (तीन प्रकारका) वाला बीज योग करके जप करना चाहिये एवं गायके दूध और मधुसे मंत्र लिख हाथमें बाँधना चाहिये। इस कामको मन्त्रकी पोषण क्रिया कहते हैं। यदि इससे भी मंत्रसिद्धि न मिले तो अन्तक्रिया दाहन करना चाहिये।

दाहन—

मंत्रके एक एक अक्षरके आगे, बीजमें और पीछे "रं" यह अग्नि बीज जोड़कर जप करना चाहिये एवं पलाश-बीजके तेल द्वारा उसी मंत्रको लिख कन्धेमें धारण करना चाहिये। महादेवजीका कथन है कि यह सब काम अत्यन्त सहज है; इससे चार पाँच दिनमें ही साधक सफल हो सकता है।

मन्त्र-सिद्धिका सहज उपाय।

ऊपर मंत्रसिद्धिके लिये जिन सात प्रकारकी क्रियाओंका वर्णन किया गया है, वह किसी अभिज्ञ (जानकार) और मंत्रसिद्ध व्यक्तिसे सम्पन्न प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि जलती अग्निसे ही दीपक जलाना सहज होता है। दूसरी बात यह है, कि यदि मन्त्र

पुरश्चरण-रूप बढ़ियासे बढ़िया वैज्ञानिक प्रणालीसे भी सिद्ध नहीं हुआ तो समझना चाहिये, कि या तो उस साधकके ब्रह्म-पथमें मुक्तिका उपाय नहीं हुआ है अर्थात् वह इस मंत्रका अधिकारी नहीं है; या उसके गुरुका दिया हुआ मंत्र उसके उपयुक्त नहीं हुआ है। लेकिन जो मन्त्र ले लिया गया है, उसको छोड़नेका कोई उपाय नहीं है। दूसरे पतिके पास जानेसे जैसे विवाहिता स्त्रियोंके लिये व्यभिचार माना जाता है, वैसे ही एक मंत्रका परित्याग करके फिर दुबारा मन्त्र लेनेसे भी शास्त्रके अनुसार व्यभिचार माना जाता है। अतएव उस समय इसीकी आवश्यकता है, कि किसी मन्त्र-सिद्ध अभिज्ञ व्यक्तिके द्वारा पहले कही हुई सात क्रियाओंमेंसे किसी क्रियाका अनुष्ठान करके मंत्रसिद्धि कर लेवे। वह इन वस्तु आदि और बीज आदिसे साधकके शरीरमें उसी मंत्रका तेज भर सकता है; लेकिन बात यह है, कि ऐसा मंत्रसिद्ध अभिज्ञ व्यक्ति मिलना सुलभ नहीं है। किसी भाग्यहीन व्यक्तिके लिये ऐसा सिद्ध व्यक्ति मिलना भी असम्भव हो सकता है। किन्तु ऐसी अवस्थामें भी उपाय है।

साधक अपने आप भी मंत्र सिद्धि कर सकता है। वैज्ञानिक नियमके अनुसार "ईथरके वाईब्रेशन" (Vibration of the ether) से भी मंत्र चैतन्य हो सकता है; लेकिन वह भी स्वल्प ज्ञानी (कम-समझ) साधारण व्यक्तिके लिये सहज साध्य नहीं है। एक अत्यन्त सहज और सभी व्यक्तिके करने योग्य सहज नियमसे मन्त्र चैतन्य किया जा सकता है। उस क्रियाके अनुसार जप करनेसे

बिना परिश्रमके मन्त्र चैतन्य हो जाता है। पहले जपकी विशिष्ट नियम-विधि समझकर एवं मन्त्रकी—

छिन्नादि दोष शान्ति

करा लेना चाहिये। मन्त्रका छिन्नादि दोष यह है, कि सभी मन्त्र बहुत दिनोंसे लोगोंके कण्ठसे बोले जा रहे हैं, यदि किसी भूल-भ्रान्तिसे उसका कोई अंश टूट या छूट जाय, तो कम्पन ठीक नहीं होता। इसलिये मन्त्र जपके उद्देश्यमें सफलता प्राप्त नहीं होती। अक्षरोंसे शब्द बनता है, अतएव दूसरे अक्षरोंको एकमें मिलाकर जप करनेसे मन्त्रके उस दोषकी शान्ति हो जाती है अर्थात् यह उसको कम्पनयुक्त कर देता है।

मन्त्रके जो सब छिन्नादि दोष दिखाये गये हैं, मातृका वर्णके प्रभावसे उन सारे दोषोंकी शान्ति होती है। मातृका वर्णसे मन्त्रको संपुटित करके अर्थात् मन्त्रके अ कारसे लेकर क्ष कार तक वर्णका एक एक वर्ण पहले और एक एक वर्ण पीछे जोड़ करके एक सौ आठ बार (कलिकालमें चार सौ बत्तीस बार) जप करे; ऐसा करनेसे ही मन्त्रके छिन्नादि दोषकी शान्ति होती है एवं वही मन्त्र यथोक्त फल दे सकता है। और भी एक बात यह है—कि बिना सेतुके जप निष्फल होता है। अतएव—

सेतु निर्णय

भी शास्त्रमें लिखा है। कालिका आदि पुराणोंमें लिखा है, कि सर्व प्रकारके मन्त्रका ॐ यह बीज ही सेतु है। जपके पहले ॐकार

रूपी सेतु न रहनेसे, वह जप पतित हो जाता है ; एवं पीछे सेतु न रहनेसे वह मन्त्र विशीर्ण (विखर) हो जाता है। अतएव साधक गणको मन्त्र जपके पहले और पीछे सेतु मन्त्र जप करना चाहिये। शूद्रको "ॐ" उच्चारणका अधिकार नहीं है। चतुर्दश स्वर "औ" है, उसमें नादविन्दु जोड़नेसे औँ बनता है। इसीको शूद्रका सेतुमन्त्र समझना चाहिये। पूजा जपादिमें—

भूत शुद्धि

न करनेसे भी अधिकार नहीं होता। अतएव जपके पहले भूतशुद्धि करना बहुत ही आवश्यक है। विषय बढ़ जानेके भयसे भूतशुद्धिका संस्कृतांश छोड़कर सर्व साधारणकी सुविधाके लिये हिन्दी भाषामें लिखता हूँ।

"रं" इस मन्त्रको पढ़ जलकी धारासे अपने शरीरको लपेटते हुये उसी जलकी धाराको अग्निमय दीवार मानकर दोनों हाथ उठा, बायें दाहने क्रमसे नीचे-ऊपरके हिसाबसे अपनी गोदमें रख "सोऽहं" (शक्तिके विषयमें "हंस" और शूद्रके लिये "नमः") ऐसा ध्यान करके हृदयमें रहनेवाले दीपककी ज्योतिः जैसे जीवात्माको मूलाधारमें रहनेवाली कुण्डलिनी शक्तिके साथ सुषुम्णाके मार्गसे मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत' विशुद्ध एवं आज्ञाचक्रसे क्रमानुसार भेद-पूर्वक शिरमें रहनेवाले एवं नीचे मुंहवाले सहस्रदल पद्मकी कर्णिकाके बीचमें विराजमान परमात्मामें संयोग करके, उसीमें

शारीरिक क्षिति, जल, वायु, तेज, आकाश, गन्ध, रूप, रस, स्पर्श, शब्द, घ्राण, रसना, त्वक, चक्षु, श्रोत्र, वाक्, हस्तपद, पायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि, और अहंकार—इन चौवीस तत्त्वोंके लीन हो जानेका चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद बायें नथनेसे "यं" इस वायु बीजको धूम्रवर्ण (धुएँके रंगका) चिन्ताकर प्राणायामके नियमानुसार इसी बीजको सोलह वार जप करके, वायुके द्वारा देह पूर्ण करते हुये बायें नथनेको बन्दकर चौंसठ वार जपते जपते कुम्मक करके बांयीं कोंखमें बैठे, काले रंगवाले बौने पिङ्गलाक्ष पिङ्गलकेश पाप पुरुषके साथ, अपनी देहको शोषण पूर्वक इसी बीजको बत्तीसवार जप करके दाहने नथनेसे वायु निकाल दे। फिर दूसरी वार रक्तवर्ण "रं" इस वह्नि बीजको दाहने नथनेसे ध्यान-पूर्वक सोलह वार जपते जपते वायुके द्वारा देहको पूर्ण करके, दोनों नथने बन्दकर, उसी मन्त्रको चौंसठ वार जपते जपते कुम्मक कर, कहे हुये बीजके लिये मूलाधार पद्मसे निकले अग्निके द्वारा, पाप पुरुषके साथ अपनी देहको जला, फिर बत्तीस वार जपते जपते बायें नथनेसे जले हुये भस्मके साथ वायु रेचन करना चाहिये। इसके बाद फिर शुक्लवर्ण "ठं" इस चन्द्रबीजको बायें नथनेसे ध्यान करके सोलह वार जपते जपते श्वास-वायुको आकर्षण करके, इसी बीजाकार चन्द्रमाको ललाटमें ध्यान कर दोनों नथने को बन्द करते हुये "वं" इस वरुण बीजको चौंसठ वार जपते जपते कुम्भकके द्वारा ललाटमें रहनेवाले कहे हुये चन्द्रमासे टपके हुये पञ्चाशत (पचास) मातृकावर्ण स्वरूप अमृतकी धारासे शरीरको नया बना, ध्यान करके "लं" इस

पृथ्वीबीजको बत्तीस बार जपते-जपते आत्मदेहको खूब मजबूत चिन्तन कर दाहने नथनेसे वायु रेचन करना चाहिये। पीछे "हंसः" (स्त्री और शूद्रगण "नमः") इस मन्त्रसे लय प्राप्त करके कुण्डलिनीके साथ जीवात्मा और चौवीस तत्त्वको फिर अपनी-अपनी जगह पहुँचा दे। इसके बाद "सोऽहं" का ध्यान करके साधक जप या पूजादिमें लीन हो जावे।

लाखों व्यक्तियोंमें एक व्यक्ति भी प्रकृत भूतशुद्धि साध सकता है या नहीं, यह बहुत सन्देहकी बात है। इड़ा या पिङ्गलाके मार्गसे यह नहीं होगा; सुषुम्णापथमें देहके सारे तत्त्व, सारी वृत्ति, उसी कुण्डलिनी शक्तिकी सहायतासे सर्वतोभावसे एक ओर झुकाना ही भूतशुद्धिका मुख्य उद्देश्य है। यदि कोई यथा-नियम भूतशुद्धि नहीं कर सके तो उसका भी सहज उपाय मौजूद है। यथा,—

ज्योतिर्म्मन्त्रं महेशानि अष्टोत्तर शतं जपेत्।
एतज्ज्ञानप्रभावेन भूतशुद्धि फलं लभेत्॥

भूतशुद्धि तन्त्र।

ज्योतिर्म्मन्त्र अर्थात् "ॐ ह्रौं" यह मन्त्र एक सौ आठ बार जपनेसे भूतशुद्धिका फल मिल जाता है; और भी एक प्रकारकी संक्षिप्त भूतशुद्धि है। यथा—

(१) ॐ भूतशृङ्गाटाच्छिरः सुषुम्णापथेन जीवशिवं परमशिवपदे योजयामि स्वाहा।

(२) ॐ यं लिङ्गशरीरं शोषय शोषय स्वाहा।

(३) ॐ रं सङ्कोचशरीरं दह दह स्वाहा।

(४) ॐ परमशिव सुषुम्णापथेन मूलशृङ्गाटमुल्लसोल्लस ज्वल ज्वल प्रज्ज्वल प्रज्ज्वल सोऽहं हंसः स्वाहा।

केवल यह चार मन्त्र पढ़नेसे ही भूतशुद्धिका फल मिल जाता है। अतएव पाठकोंको जिससे सुभीता हो, उसीसे भूतशुद्धि करके जपमें लगना चाहिए। अब

जपका कौशल

लिखता हूँ। साधकगण पहले कहे हुए नियमसे मन्त्रका दोषशान्ति और सेतुमन्त्रका योग करके इसी प्रकारका अनुष्ठान करनेसे पूजा-होम आदि न करके भी मन्त्रमें सिद्धिलाभ कर सकते हैं। यथा—

मन्त्राक्षराणि चिच्छक्तौ प्रोक्तानि परिभावयेत्।
तामेव परमव्योम्नि परमानन्दबृंहिते॥

गौतमीय-तन्त्र।

साधक पहले मनः संयम पूर्वक स्थिर भावसे बैठ ब्रह्मरन्ध्रमें गुरुके ध्यान और प्रणामके बाद मन्त्र अर्थको विचारे।

मन्त्रार्थं देवतारूपं चिन्तनं परमेश्वरि।
वाच्यवाचकभावेन अभेदो मन्त्रदेवयोः॥

इष्ट देवताकी मूर्त्तिका ध्यान करनेसे अर्थात् देवताके शरीर

और मन्त्रको अलग न समझनेसे मन्त्रके अर्थकी भावना बनती है। मन्त्रके अर्थकी भावना करके, मन्त्रको चैतन्य करना चाहिये ; अर्थात् अपने अपने मूलमन्त्रके आगे और पीछे "ई" यह बीज जोड़ कर हृदयमें सातबार जप करना चाहिये। पीछे मूलाधार पद्मके भीतर जो स्वयम्भूलिङ्ग विराजमान है और साढ़े तीन फेरमें कुण्डलिनी शक्तिने उसी स्वयम्भूलिंगको लपेट रक्खा है ; साधक जप करते समय सभी मन्त्राक्षरोंको उसी कुण्डलिनी शक्तिमें गुंथे हुए सोचकर निःश्वासकी ताल ताल पर अर्थात् पूरकके समय ध्यानसे उसी कुण्डलिनी शक्तिको उठाते हुए सहस्रारवाले कमलकी कर्णिकाके बीचमें विराजमान परमानन्दमय परमशिवके साथ मिलाकर एक बना ले एवं रेचनके समय उसी कुण्डलिनी शक्तिको अपने स्थान पर पहुँचा दे। इसी तरह निःश्वासके ताल ताल पर जहाँतक हो सके जप करके, निःश्वासको रोक कर, भावनाके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको एकबार सहस्रारमें ले जावे एवं उसी समय ही मूलाधारमें ले आवे। यह काम बार बार करते करते सुषुम्णाकी राहमें बिजली जैसी लम्बी ज्योतिः देखनेमें आती है।

हर रोज इस प्रकार नियमसे जप करने पर, साधक मन्त्रमें सिद्धि पा सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। नहीं तो माला झोला लेकर बाहरी अनुष्ठानसे तो सौ कल्पमें भी फल नहीं मिल सकता।

ब्राह्मणगण ठीक-ठीक प्रणवका उच्चारण करके भी सिद्धि लाभ और मनोलय कर सकते हैं। ठीक-ठीक उच्चारण उसको कहते हैं

कि जिससे जपते समय स्वर-कम्पन, उसके अर्थकी भावना हो और उनमें मनका स्थिर भावसे लगाना ही प्रणवका ठीक-ठीक उच्चारण है। यथा—

अ-उ-म इन तीनों अक्षरोंको लेकर ॐ शब्द बना है। ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक ये तीनों अक्षर—सत्त्व, रजः और तमो गुणके व्यक्त बीज हैं। संगीतज्ञ (संगीतके जाननेवाले) पण्डितगण ने उदारा, मुदारा और तारा नामसे स्वरकी ये तीन ठोकरें बनाई हैं। ॐ इस शब्दका उच्चारण करते समय जो स्वरकी झङ्कार उठती है, उसके बीचमें कहे हुए स्वरके ये तीनों विभाग रहेंगे एवं जीवके अवस्थानके स्थान षट्दल-पद्मसे ही पहले स्वरकी उत्पत्ति होगी, उसके बाद अनाहत पद्ममें-प्रति-ध्वनित होकर सहस्रारमें ध्वनित होगा, ऐसी दशामें समभावसे स्वरको उच्चारित करना चाहिये। चिल्लाकर बोलनेसे ही ऐसा उच्चारण होगा, यह कोई बात नहीं है। मन ही मन कहनेसे भी ठीक ऐसा ही स्वर-कम्पन साधा जा सकता है। संसारका काम करते करते भी इसी ध्यान और इसी ज्ञानमें लिप्त रह सकते हैं।

सर्वदा प्रणवके अर्थका ध्यान और प्रणवका जप करनेसे साधक का चित्त निर्मल हो जाता है। उस समय प्रत्येक चैतन्य अर्थात् शरीरके भीतरवाले आत्माके सम्बन्धमें यथार्थ अर्थात् प्रकृत ज्ञान उत्पन्न होता है। ईश्वरके साथ उपासनाका जो संकेतमात्र अर्थात "ॐ" है, उसके कहनेसे ईश्वरका स्वरूप साधकके हृदयमें उत्पन्न होता है। क्यों होता है?—यह बहुत ही जटिल और कठिन समस्या है।

फिर भी यह सत्य है, कि प्रणव (ॐ) ईश्वरसे बहुत गहरा और विशेष सम्बन्ध रखता है।

मन्त्रसिद्धिका लक्षण।

हृदये ग्रन्थिभेदश्च सर्वावयववर्द्धनम्।
आनन्दाश्रुणि पुलको देहावेशः कुलेश्वरी॥
गद्गदोक्तिश्च सहसा जायते नात्र संशय॥

तन्त्रसार।

जप करते समय हृदय-ग्रन्थि भेद, सब अंगोंमें वर्द्धिष्णुता अर्थात् वृद्धि, आनन्दसे अश्रु आना, रोमाञ्च, शरीर सनसनाना, एवं गद्गद भाषण अर्थात् बोलनेमें गलेका भर जाना प्रभृति लक्षण प्रकट होते हैं। सिवा इसके और भी नाना प्रकारके लक्षण प्रकाश पाते हैं; मनोरथ—(मनकी इच्छा) सिद्धि ही मन्त्रसिद्धिका प्रधान लक्षण है। देवता-दर्शन, देवताका:स्वर सुनना, मन्त्रकी झनकार, शब्द सुनना प्रभृति एवं और भी नाना प्रकारके लक्षण मन्त्र-सिद्धि होनेसे प्राप्त होते हैं। वास्तवमें जिसने प्रकृत मन्त्र-सिद्धि पाई है वह बेशक साक्षात् शिवके बराबर है, इसमें कोई संदेह नहीं है। फल-स्वरूप, योग साधना और मन्त्र-साधनामें कोई फर्क नहीं है; क्योंकि दोनोंके पहुँचनेकी जगह एक ही है, सिर्फ मार्गका अन्तर है।

शय्या शुद्धि।

जो रातमें बिस्तर पर बैठे जप करता है, उसके लिये शय्या शुद्धि करना बहुत ही आवश्यक है। शय्या शुद्धिका मन्त्र और नियम यह है—

पहले "ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हूँ फट् स्वाहा"—इस मन्त्रसे शय्याके ऊपर त्रिकोण मण्डलमें लिखे। स्त्री देवताके उपासकगण त्रिकोणका कोण नीचेकी ओर (▽ इस तरहका) और पुंदेवताके उपासकगण ऊपरीकी ओर कोण (△ इस तरहका बनाये। पीछे "ह्रीं आधार शक्तये कमलासनाय नमः" इस मन्त्रसे मानस-पूजा करके, "ह्रीं मृतकाय नमः फट्" कहकर शय्यापर तीनबार आघात अर्थात् थपथपी लगाकर और चुटकी बजाकर दश-दिशायें बांध ले। पीछे हाथ जोड़ कर—

"ॐ शय्ये त्वं मृतरूपासि साधनीयासि साधकैः।
अतोऽत्र जप्यते मन्त्रो ह्यस्माकं सिद्धिदा भव॥"

यह मन्त्र पढ़ और प्रार्थना करके जपमें नियुक्त हो जावे।

मन्त्र-सिद्धि-लाभ और यह सब विषय विशेष भावसे जो साधक जाननेकी इच्छा रखते हैं, उनको आवश्यकता होने पर सिखाया जा सकता है। जिसे शिक्षा और संसर्ग (साथ रहनेके) दोषसे मन्त्र

या हिन्दूशास्त्रादिमें विश्वास नहीं है, उनको मेरे पास पहुंचने पर गुरुकी कृपासे मन्त्रकी अलौकिक क्षमता और योगकी दो-एक विभूति मैं प्रत्यक्ष दिखा सकता हूं।

क्षमध्वं पण्डिताः दोषान् परपिण्डोपजीविनः।
ममाशुद्ध्यादिकं सर्वं शोध्यं युस्माभिरुत्तमैः॥

ॐ शान्तिरेव शान्तिः॥

चतुर्थ अंश

स्वर-कल्प

योगगुरु
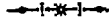
चतुर्थ अंश

स्वर-कल्प

स्वरका स्वाभाविक नियम।

सर्ववर्ण संपूजितं सर्वगुणसमन्वितं।
ब्रह्म मुख-पङ्कज-ज-ब्राह्मणाय नमोनमः॥

द्विजराज-गामी—त्रिलोक-स्वामी नारायणके हृदय सरोजमें जो द्विजराजका पद-पङ्कज विराजित है, उस द्विज-वंशावतंश-ब्रह्मांश-सम्भूत ब्रह्मणगणके चरण-सरोजमें नत शिरसे नमस्कार करके स्वर-कल्प आरम्भ करता हूँ।

योग साधनामें श्वास-प्रश्वासकी क्रियाविशेषका अनुष्ठान करते हुए जैसे जीवात्माके साथ परमात्माका संयोग साधन करके परमार्थ लाभ होता है, वैसे ही साधक श्वास-प्रश्वासकी गतिको समझकर काम कर सकनेसे संसारमें हरेक कामोंमें सफलता प्राप्त कर सकता है;

आनेवाले विपदापद और मङ्गलामंगलको जान सकता है एवं विपद्के हाथसे आसानीसे छुटकारा पा सकता है। आनेवाले रोगका आक्रमण सवेरे बिस्तरसे उठते समय ही समझ सकता है। बिना व्ययसे एवं थोड़ी ही चेष्टासे रोग आदिसे छुटकारा मिल सकता है। फल-स्वरूप स्वरज्ञानके अनुसार काम करने पर संसारके पुञ्जीकृत (एकत्रित) नाना प्रकारके कर्म्मक्षेत्रके सभी कामोंमें सफलता लाभ करते हुए स्वस्थ शरीरसे दीर्घ-जीवी होकर सुखसे काल व्यतीत कर सकता है।

विश्वपिता विधाताने मनुष्यके जन्म समय देहके साथ एक ऐसा कौशलपूर्ण अपूर्व उपाय कर दिया है कि उसको समझ सकनेसे सांसारिक, वैषयिक किसी भी काममें विफलतासे उत्पन्न दुःखका भोग नहीं करना पड़ता। उस अपूर्व कौशलके न समझनेसे ही, हमारे कार्य्यका नाश होता है, आशा टूटती हैं, मनस्ताप भोगना पड़ता है और रोगका कष्ट सहन करना पड़ता है। यह सब विषय जिस शास्त्रमें वर्णित है, उसका नाम स्वरोदय शास्त्र है। यह स्वरशास्त्र जैसा दुर्लभ है, स्वर जाननेवाला गुरु भी वैसा ही दुर्लभ है। स्वर-शास्त्र प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। हम इस शास्त्रकी पार्य्यालोचनासे प्रत्येक काममें इसका प्रत्यक्ष फल देखकर आश्चर्य्यान्वित हो गए हैं। समग्र स्वरशास्त्रका यथातथ्य पूरा पूरा लिखना इस क्षुद्र पुस्तकमें बिलकुल असम्भव है। केवल साधकगणके लिए आवश्यकीय कुछ विषय संक्षेपमें वर्णन किये गये हैं।

स्वरशास्त्रकी शिक्षा प्राप्त करना हो तो श्वास-प्रश्वासके नियमके सम्बन्धमें अच्छे प्रकारसे ज्ञानलाभ करना आवश्यक है।

कायानगरमध्ये तु मारुतः क्षितिपालकः ।

देह नगरके बीच वायु राजाका स्वरूप है। प्राणवायु निःश्वास और प्रश्वास इन दोनों नामसे पुकारा जाता है। वायु ग्रहण करनेका नाम प्रश्वास और वायु परित्याग करनेका नाम निःश्वास है। जीवके जन्मसे लेकर मृत्युके शेष मुहूर्त्त तक बराबर श्वास-प्रश्वासका काम चलता है। यह निःश्वास फिर दोनों नथनेसे एक ही समयमें बराबर नहीं निकलता। कभी बायें, कभी दाहिने नथनेसे चला करता है। कभी कहीं एक-आध मुहूर्त्तके लिये दोनों नथनोंसे सांस बराबर निकलती है। बायें नथनेसे चलनेवाली सांसको इड़ाका प्रवाह, दाहिने नथनेवालीको पिङ्गलाका प्रवाह और दोनों नथनेसे बराबर निकलनेवालीको सुषुम्णाका प्रवाह कहते हैं। एक नथनेको बन्द कर दूसरेसे सांस छोड़ने पर समझ पड़ता है, कि एक नथनेसे सिधी सांस निकलती है, दूसरा नथना बन्द जैसा है ; उससे दूसरेकी तरह सीधी सांस नहीं चलती। जिस नथनेसे सीधी सांस आयेगी वह उसी नथनेकी सांस समझी जायेगी। किस नथनेसे सांस निकलती है, वह पाठकगण इससे समझ सकते हैं। धीरे धीरे अभ्यास हो जाने पर बहुत ही आसानीसे किस नथनेसे सांस निकलती है, यह जान सकते हैं। रोज सबेरे सूर्य्योदयके समयसे ढाई घड़ी या एक घण्टेके हिसाबसे एक एक नथनेमेंसे सांस निकलती है। इसी प्रकार दिन रातमें बारह बार बायें और बारह बार दाहिने नथनेसे क्रमानुसार श्वास चलती है। किस दिन किस नथनेसे पहले सांस निकलेगी, उसका भी निर्दिष्ट नियम बंधा हुआ है। यथा—

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे भास्करस्तु सितेतरे ।
प्रतिपत्तो दिनान्याहुः त्रीणि त्रीणि क्रमोदये ॥

पवन-विजय-स्वरोदय ।

शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन तीन दिन चन्द्र नाड़ी अर्थात् बायें नथनेसे एवं कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन तीन दिन सूर्य्य नाड़ी अर्थात् दाहिने नथनेसे पहले सांस चलती है। अर्थात् शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णमासी—इन नौ दिनमें सवेरे सूर्य्योदयके समय पहले बायें नथनेसे और चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी—इन छः दिनमें सवेरे सूर्य्योदयके समय पहले दाहिने नथनेसे सांस आरम्भ होकर ढाई घड़ी यानी एक घण्टा उसी पर रहती और फिर दूसरे नथनेसे निकलती है। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या—इन नौ दिनमें सूर्य्योदयके समय पहले दाहिने नथनेसे एवं चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी—इन छः दिनमें सूर्य्योदयके समय पहले बायें नथनेसे सांस निकल कर ढाई घड़ी या एक घण्टा चलनेके बाद दूसरे नथनेसे सांस चलने लगती है। इसी हिसाबसे ढाई घड़ी या एक घण्टे एक एक नथनेसे सांस निकला करती है। यही मनुष्य जीवनके श्वास-प्रश्वासका स्वाभाविक नियम है।

वहेत्तावद्घटीमध्ये पञ्चतत्त्वानि निर्दिशेत् ॥

स्वरशास्त्र ।

रोज दिन रातमें साठ घड़ी या चौबीस घण्टेके बीचमें ढाई घड़ी या एक घण्टेके हिसाबसे एक एक नथनेमें बंधे हुए नियमसे क्रमानुसार सांस चलते समय क्रमशः पञ्चतत्त्वका उदय होता है। इस श्वास-प्रश्वासकी चालको समझ कर काम कर सकनेसे शरीर स्वस्थ रहता है एवं दीर्घायु होती है ; फलस्वरूप सांसारिक, वैषयिक सर्व प्रकारके कामोंमें साधक सफलता लाभ करते हुए सुखसे संसार-यात्रा सम्पन्न कर सकता है।

बाईं नाककी सांसका फल।

जब इड़ा नाड़ी अर्थात् बायें नथनेसे सांस चलती रहे तो सभी प्रकारके स्थिर काम करना चाहिये। उस समय गहना पहनना दूरकी राह चलना, आश्रममें पहुंचना, राजमन्दिर (महल) और मकान बनाना, एवं सामान इत्यादि ग्रहण करना चाहिये। तालाब, कुआं, हौज आदि जलाशय और देवताके मन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा करना चाहिये। उस समय यात्रा, दान, विवाह, नये कपड़े पहनना, शान्ति कर्म्म, पौष्टिक कर्म्म, दिव्योषधि सेवन करना, रसायनका काम करना, प्रभुका दर्शन करना, मित्रता करना एवं बाहर निकलना प्रभृति सब प्रकारके शुभकर्म्मका अनुष्ठान करना चाहिये। बायें नथनेसे निःश्वास चलते समय शुभकाम और योगाभ्यास करनेसे सिद्धि मिलती है ; लेकिन वायु, अग्नि और आकाश-तत्त्वके उदयके समय कहे हुवे कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये।

दाहिनी नाककी सांसका फल।

जब पिङ्गला नाड़ी अर्थात् दाहिने नथनेसे सांस चलती हो, तब कठिन और क्रूर विद्याका अध्यन और अध्यापन, स्त्रीके साथ संसर्ग, वेश्याके पास गमन, नाव आदिमें आरोहण, दुष्ट काम, मद्यपान तान्त्रिक मतसे वीर मन्त्रादि समस्त उपासना, देशादिका ध्वंस, शत्रुको विष-प्रयोग, शास्त्रका अभ्यास, गमन, शिकार, पशुपक्षि-विक्रय, ईंट लकड़ी, पत्थर और रत्न आदिका काटना-छाटना, गानेका अभ्यास, यन्त्र-तन्त्र बनाना, किले और पहाड़ पर चढ़ना, जुवा खेलना, चोरी करना, हाथी-घोड़े और रथ आदि सवारी पर चढ़नेकी शिक्षा लेना, कसरत करना, मारण, उच्चाटन आदि षट्कर्म्म साधन, यक्षिणी, वेताल भूतादिका साधन, औषधि-सेवन, पत्रादि लेखन, दान, क्रय, विक्रय, युद्ध, भोग, राजदर्शन, स्नान, भोजन प्रभृति कर्म्मका अनुष्ठान करना चाहिये। महादेवजीने कहा है, कि वशीकरण, मारण, उच्चाटन, आकर्षण, मोहन, विद्वेषण, भोजन और स्त्री-संगममें पिङ्गला नाड़ी सिद्धि देनेवाली है।

सुषुम्णाकी सांसका फल।

दोनों नथनेसे सांस चलनेके समय किसी प्रकारके शुभ और अशुभ कामका अनुष्ठान नहीं करना चाहिये; करनेसे वह सब निष्फल हो जाता है। उस समय योगाभ्यास और ध्यान-धारणादि द्वारा

केवल भगवान्का स्मरण करना चाहिये। सुषुम्णा नाड़ीके चलते समय किसीको जो शाप या वर दिया जाता है, वह सफल होता है।

श्वास-प्रश्वासका नियम समझ कर तत्त्व-ज्ञानके अनुसार तिथि-नक्षत्रानुयायी ठीक-ठीक नियम पर उन सारे कामोंका अनुष्ठान करनेसे किसी भी कामके लिये आशा टूटनेसे पैदा हुवा मनस्ताप भोगना नहीं पड़ेगा; लेकिन यह सब बातें विस्तृत रूपसे वर्णन करनी हों तो, एक बड़ी पुस्तक बन जाती है। अतः बुद्धिमान् पाठक! इसी चुने हुए संक्षिप्त अंशको पढ़ कर ठीक ठीक साधन करने पर अवश्य ही सफल मनोरथ होंगे।

रोगोत्पत्तिका पूर्वज्ञान और प्रतिकार।

यह हम पहले ही बता चुके हैं, कि शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनके हिसाबसे सूर्य्योदयके समय पहले बायें नथने एवं कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे तीन-तीन दिनके हिसाबसे सूर्य्योदयके समय पहले दाहने नथनेसे निःश्वास प्रश्वास चलना स्वाभाविक नियम है। किन्तु—

प्रतिपत्तो दिनान्याहु विपरीते विपर्य्ययः॥

प्रतिपदा प्रभृति तिथिमें यदि निःश्वास वायु स्वाभाविक नियमसे उलटे तौर पर चले तो कोई अमंगल होगा, इसमें सन्देह नहीं। यथा—

शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिको सवेरे नींद टूटते समय और सूर्य्यदेवके उदयके समय पहले यदि दाहने नथनेसे सांस निकलना शुरू हो तो उसी दिनसे पूर्णिमा तक गर्मीसे कोई बीमारी अवश्य होगा ; फिर कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिको सूर्य्योदयके समय पहले बायें नथनेसे सांसका चलना शुरू हो तो उसी दिनसे अमावस्या तक श्लेष्माघटित या सर्दीकी कोई न कोई बीमारी अवश्य होगी, इसमें सन्देह नहीं।

दो पक्षमें इसी तरह उलटे तौर पर निःश्वास वायु निकलनेसे किसी अपने आत्मीय-स्वजनकी भारी बीमारी, मृत्यु या किसी प्रकारकी आफत उठानी पड़ेगी। तीन पक्ष लगातार ऐसा ही होने पर अपनी मृत्यु समझ लेना चाहिये।

शुक्ल किम्वा कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके सवेरे यदि ऐसी उलटी सांस निकलने लगे, तो उस नथनेको कई दिन तक बन्द रखनेसे रोगोत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती ; वह नथना इस प्रकारसे बन्द रखना चाहिये कि उस नथनेसे सांस न निकल सके। इसी प्रकार कई दिन तक बराबर (स्नान और भोजनका समय छोड़ कर) नथना बन्द रखनेसे इन तिथियोंके बीच बिलकुल कोई बीमारी भोगनी नहीं पड़ेगी।

यदि असावधानीके कारण निःश्वासकी उलट-पलटमें कोई बीमारी पैदा हो तो जबतक वह अच्छी न हो, तबतक शुक्लपक्षमें दाहने एवं कृष्णपक्षमें बायें नथनेसे जिसमें सांस न चल सके, ऐसा उपाय करनेसे शीघ्र ही बीमारी दूर हो जाती है। बड़ी बीमारी होनेकी

सम्भावना रहनेसे वह बिलकुल मामूली तौरसे होगी ; यदि बीमारी हो भी जाय तो थोड़े दिनमें ही आरोग्यता प्राप्त हो जायगी। इस प्रकार सांसके नियम पर ध्यान रखने पर बीमारीसे पैदा हुई तकलीफ न उठानी पड़ेगी एवं चिकित्सकको भी रुपया न देना पड़ेगा।

नाक बन्द करनेका नियम।

नथनेमें जा सके इतनी पुरानी साफ रुईकी गांठ बना, साफ बारीक कपड़ेसे लपेट, मुंह परसे सी डाले। इस गांठसे नथनेकी मुंह इस तरह बन्द कर दे कि उस नथनेसे बिलकुल श्वास-प्रश्वास आ जा न सके। जिसको शिरकी कोई बीमारी हो, या मस्तिष्ककी दुर्बलता हो, वह रुईसे नथने बन्द न करके साफ बारीक कपड़ेकी छोटी गांठसे नथनेको बन्द कर दे।

यदि किसी कारणवश जितने समय या जितने दिनके लिये नथना बन्द रखना आवश्यक समझा जाय, उतने समय या उतने दिन तक ज्यादा मेहनतका काम करना, चिलम पीना, चिल्लाना, दौड़-धूप प्रभृति नहीं करना चाहिये। भारतवर्षीय भ्रातृवृन्दमें जो मेरे जैसे ताम्रकूट (तम्बाकू) के सु-रसाल धूम्रपानके सुमधुरस्वादनसे रसना को वञ्चित करना न चाहते हों, वे जब तम्बाकू पीयें, तब नथनेसे गांठ निकाल लें। तम्बाकू पीनेके बाद नथनेका छेद कपड़ेसे अच्छी तरह पोंछकर फिर पहलेकी तरह कपड़ेकी गांठसे नथना बन्द कर दें। कभी किसी भी कारणसे नथना बन्द करना आवश्यक हो तो उसी

समय कहे हुवे नियमसे काम करनेमें उपेक्षा न करनी चाहिये। परन्तु यह ध्यान रहे कि नयी या मैली रुईकी गांठ नथनेमें नहीं लगाना चाहिए।

साँस बदलनेका कौशल

कार्य-भेदसे अथवा अन्य नाना प्रकारके कारणोंसे एक नथनेसे दूसरे नथनेमें वायुकी चालका परिवर्त्तन या बदलनेका खास प्रयोजन होता है। कामके अनुकूल नथनेसे श्वास चलने पर कार्य आरम्भ करूँगा। इस आशासे बैठे रहना किसीके लिये सम्भव नहीं है। अतः अपनी इच्छानुसार सांसकी गति परिवर्त्तनकी शिक्षा प्राप्त करना बहुत ही आवश्यक है। क्रिया भी बहुत सहज है, थोड़ी सी कोशिशसे सांसकी चाल बदली जा सकती है। यथा—

जिस नथनेसे सांस चलती हो उसके दूसरे नथनेको हाथके अंगूठेसे दबा कर पकड़ो और जिस नथनेसे सांस चलती हो उसी नथनेसे वायुका आकर्षण करो; फिर उसी नथनेको हाथकी अंगुलियोंसे दबाकर पकड़ो और दूसरे नथनेसे वायु निकालो। बार बार कुछ देर तक ऐसाही करनेसे अवश्य सांसकी गति बदल जायगी। जिस नथनेसे सांस निकलती हो, उसी करवट लेट कर ऐसा करने पर बहुत थोड़े समयमें सांसकी चाल बदल कर दूसरे नथनेसे सांस चल सकती है। ऐसी क्रियाका अनुष्ठान न करके

जिस नथनेसे सांस चलती हो केवल उसी ओर कुछ समय तक लेट रहनेसे भी सांसकी चाल बदल जाती है।

पाठकोंको इस ग्रंथमें जिस जिस जगह निःश्वास परिवर्त्तनके नियम मिलें, उस जगह इसी कौशलका अवलम्बन करके सांसकी गति परिवर्त्तन करना चाहिये। जो व्यक्ति अपनी इच्छाके अनुसार इस प्रकार वायु-रोध (कुम्भक) और रेचन कर सकते हैं, वही पवनको जीत सकते हैं।

वशीकरण।

आजकल कितने ही लोगोंको वशीकरण विद्या सीखनेके लिये आग्रह करते देखा है। कितने ही लोग साधु-संन्यासीको देखते ही पहले यही प्रार्थना करते हैं। वशीकरण विद्या तन्त्र-शास्त्रादिमें जैसी बतायी गई है, उसके अनुसार ठीक ठीक काम करना साधारण लोगोंके साध्यायत्त नहीं है। वशीकरण प्रकरणमें निःश्वासके समान सहज और अव्यर्थ फलदायक दूसरी कोई भी क्रिया नहीं है। पाठकोंकी जानकारीके लिये दो एक क्रियाएं लिखी जाती हैं।

चन्द्रं सूर्य्येण चाकृष्य स्थापयेज्जीवमण्डले।
आजन्मवशगावामा कथितोऽयं तपोधनैः।

सूर्य्यनाड़ी (पिङ्गला) द्वारा चन्द्रनाड़ीको (इड़ाको) आकर्षण करके हृदयमें रहनेवाले वायुके साथ संस्थापन कर, जिस रमणीका विचार करेगा, वह रमणी आजीवन साधकके वशमें रहेगी।

जीवेन गृह्यते जीवो जीवो जीवस्य दीयते ।
जीवस्थाने गतो जीवो वाला जीवनान्त वश्यकृत् ॥

पहले पूरक, पीछे रेचक, उसके बाद कुम्भक करके जिस वामाका विचार करोगे, वह आजीवन वशमें रहेगी ।

रात्रौ च यामवेलायां प्रसुप्ते कामिनीजने ।
ब्रह्मवीजं पिवेद् यस्तु वाला जीवहरो नरः ॥

एक प्रहर रात वितने पर कुण्डलिनी देवीके सोते समय ब्रह्मवीज यानी श्वासवायुको पीकर उसका वीज मन्त्र जपते जपते साधक जिस वामाका ध्यान करेगा, वह वामा (स्त्री) आजीवन साधककी होकर रहेगी ।

उभयोः कुम्भकं कृत्वा मुखे श्वासो निपीयते ।
निश्चला च यदा नाड़ी देवकन्यावशं कुरु ॥

कुम्भक पूर्वक मुंहसे निःश्वास वायु पीये ; इस प्रकार करते करते जब नि.श्वास वायु स्थिर हो जाय, तब जिसका ध्यान करोगे वही वशीभूत होगा। इस प्रक्रियासे साधक देवकन्या तकको वशीभूत कर सकते हैं।

वशीकरण प्रकरणमें वहुतसी अव्यर्थ फलप्रद क्रियाएँ लिखी हुई हैं ; लेकिन उन सवको सर्वसाधारणमें प्रकाशित करना हम ठीक नहीं समझते। क्योंकि पशु-प्रकृतिका मनुष्य अपनी पाशवी-वृत्ति पूरी करनेके लिये उन्हें काममें ला सकता है। अतः जो व्यक्ति काम-रिपुकी उत्तेजनासे शिवोक्त शास्त्रवाक्यका अपव्यवहार करते हैं, उनके वरावर नारकी तीनों जगत्में नहीं है। कितने ही लोग पुस्तक

पढ़कर इस क्रियाका अनुष्ठान करते हुए कारण-वश उत्साह टूटनेपर शास्त्रवाक्यमें अविश्वास करने लग जाते हैं; लेकिन नियमानुसार अनुष्ठानकी त्रुटिसे जो विपरीत फल निकलता है, उसे नहीं समझते हैं। *

वशीकरणके काममें मेष-चर्म्मका आसन, कामदा नामक अग्नि, मधु, घृत और लावेसे होम करना, पूर्वमुख बैठकर जप करना, प्रवाल (मूंगे), हीरे या माणिक्य मालाको अंगुष्ठ-अंगुलियोंसे फेरना चाहिये; वायु-तत्त्वके उदयमें, दिनके पूर्वभागमें, मेष, कन्या, धनु या मीन लग्न पर, उत्तराभाद्रपद, मूला, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, और अश्लेषा नक्षत्रमें; बृहस्पति या सोमवार युक्त अष्टमी, नवमी या दशमी तिथिमें एवं वसन्तकालमें क्रियानुष्ठान करनेसे सिद्धि मिलती है। इस कार्य्यका देवता "वाणी" है, एवं कलियुगमें मन्त्रसंख्या चौगुनी जपनी पड़ती है। साधक इस नियमके अनुसार काम करने पर अवश्य ही फल पा सकते हैं। अपनी इच्छानुसार काम करनेसे सुफल लाभ करना दुराशा मात्र होगा। निर्दिष्ट नियमके अनुसार क्रियाका अनुष्ठान करके शास्त्रवाक्यकी सत्यता उपलब्ध करना चाहिये। लेकिन सावधान! कोई पाप कर्मकी सिद्धिके प्रयोजनसे इस कामका अनुष्ठान करके परकालके पथमें कांटे न बोये।

---

* तन्त्रोक्त अधिकार और कार्यानुष्ठान आदि क्रियाएँ मत्प्रणीत "तान्त्रिकगुरु" पुस्तकमें विशदभावसे लिखी हैं। अनधिकारी केवलमात्र काम्यकर्म्मके अनुष्ठानसे कैसे फल ले सकते हैं?

बिना दवाके रोगको आराम करना

अनियमित क्रिया द्वारा जैसे मानव-देहमें रोगोत्पत्ति होती है, वैसे ही दवाका व्यवहार न करके भी आभ्यान्तरिक क्रियासे रोग आराम करनेका नियम विद्यमान है। हम वह भगवत्प्रदत्त सहज कौशल नहीं जानते, इसीलिये बहुत दिन तक रोगको भोगते हैं एवं वेफायदा चिकित्सकको रुपया देते हैं। मैंने देश-देशान्तरमें घूमते समय सिद्ध योगी महात्माओंके पास विना दवासे रोग शान्तिके सुकौशलकी शिक्षा प्राप्तकी, और पीछे अनेक बारकी परीक्षामें उसका प्रत्यक्ष फल देखकर सर्व साधारणके उपकारके लिये उसमेंसे कोई एक अपूर्व कौशल यहाँ प्रकाशित करता हूँ। पाठकगण! आगे लिखे कौशलका अवलम्बन करनेसे प्रत्यक्ष फल लाभ करेंगे। बहुत दिन तक रोग-यन्त्रणा भोग करना, रुपया खर्च करना किम्वा दवासे उदर भरना नहीं पड़ेगा। इस स्वरशास्त्रके कौशलसे किसी बीमारीके एक बार आराम होने पर उस बीमारीके फिर दूसरी बार होनेकी कोई सम्भावना नहीं रहती। पाठकगणसे परीक्षा करनेके लिये मैं अनुरोध करता हूँ।

ज्वर—

ज्वर आनेसे किम्वा ज्वर आनेकी बात समझनेसे, उस समय जिस नथनेसे सांस चलती हो, उस नथनेको बन्द कर दे। जबतक ज्वर न उतरे एवं शरीर स्वस्थ न हो जाय, तबतक उस नथनेको

वन्द करके रखे। दश पन्द्रह दिन भोगने योग्य ज्वर पांच सात दिनमें ही उतर जायगा। दूसरे, वुखारके समय मन ही मन सर्वदा चाँदी जैसी श्वेतवर्णकी वस्तुका ध्यान करनेसे भी शीघ्र फल लाभ होता है।

निशिन्दा (निर्गुण्डी) की जड़ वीमारके हाथमें वांधनेसे सव तरहका वुखार अवश्य ही दूर हो जाता है।

पारीका वुखार,—

सफेद अपराजिता यानी सफेद कोयेल या अगस्त्यके कुछ पत्ते हाथमें रगड़ कर कपड़ेमें लपेट पोटली वांध कर वुखारकी पारीके दिन सवेरेसे सूंघने पर पारीका वुखार छूट जायगा।

शिरका दर्द,—

शिरका दर्द होने पर दोनों हाथकी कुहनीके ऊपर कपड़ेकी पट्टी या रस्सी बांध दे ; दश पाँच मिनटमें शिरका दर्द वन्द हो जायगा। कुहनी इतने जोरसे वांधनी पड़ेगी, जिससे वीमारके हाथमें बहुत दर्द मालूम पड़े और दर्द आरोग्य होने पर पट्टी खोल डाले।

एक दूसरे प्रकारका शिरका दर्द और होता है जिसे लोग आधाशीशी कहते हैं। कपालके वीचसे वायीं या दाहिनी ओरके आधे कपालमें और मस्तिष्कमें वहुत ही कष्ट अनुभव होता है। साधारणतः यह दर्द सवेरे सूर्य्योदयके समयसे शुरू होकर, जितना दिन चढ़ता है उतना ही वढ़ता जाता है ; तीसरे प्रहरमें घट जाता है। इस बीमारीके आने पर जिस ओरके कपालमें दर्द हो, उस

बगलके हाथमे—कुहनी पर पहले कही हुई विधिसे जोरसे पट्टी बांध देनेसे थोड़ी ही देरमें दर्द दूर हो जायगा और बीमारी ठण्डी पड़ जायगी। दूसरे दिन अगर फिर शिरमें दर्द एवं रोज एक ही नथनेसे सांस निकलते समय आधीशीशी शुरू हो, तो दर्द मालूम पड़ते ही उस नथनेको बन्द कर देवे एवं पहले कही हुई विधिसे हाथ बांधनेके साथ ही साथ आराम हो जायगा। आधाशीशीसे शिर दर्द करने पर इस कामसे आश्चर्य्य-जनक फल देख कर आप चकित हो जाएँगे, इसमें सन्देह नहीं है।

शिरःपीड़ा,—

शिरके दर्दवाले बीमार सवेरे बिस्तर छोड़ते ही नथनेसे ठण्डा पानी पीयें; इससे मस्तिष्क ठण्डा होगा, शिर दर्द नहीं करेगा एवं छर्दी नहीं होगी। यह काम ज्यादा कठिन भी नहीं है। किसी एक बरतनमें ठण्डा जल भर, उसमें नाक डुबा कर धीरे धीरे गलेके भीतर जल खींचना चाहिये। धीरे धीरे अभ्यास करनेसे यह काम क्रमशः सहज हो जाता है। इस बीमारीके होनेसे चिकित्सक बीमारके आरोग्य होनेकी आशा प्रायः छोड़ देता है, बीमार भी विषम कष्ट उठाता है; लेकिन इस नियमका अवलम्बन करनेसे अवश्य ही आशातीत फल लाभ होता है।

उदरामय, अजीर्णादि,—

अन्न, जलखाना, मिठाई आदि जब जो कुछ भोजन करना हो, वह दाहिने नथनेसे सांस चलते समय ही प्रारंभ करना चाहिये। नित्य इसी नियमसे भोजन करने पर बड़ी ही आसानीसे खाना पचता है,

कभी बदहज़मीकी बीमारी नहीं होती। जो व्यक्ति इस अजीर्ण या बदहज़मीसे कष्ट उठा रहा हो, वह भी रोज इसी नियमसे भोजन करने पर, भोजन किये हुवे पदार्थको पचा डालेगा और धीरे धीरे बीमारी भी दूर हो जायगी। भोजनके बाद कुछ समय तक बायें करवट लेट जाना चाहिये। जिसको समय कम है, वह भी भोजनके बाद ऐसे कुछ उपायका अवलम्बन करे, जिससे दश-पन्द्रह मिनिट दाहिने नथनेसे साँस निकले। यानी पहले कहे हुवे नियमसे रूई द्वारा बांये नथनेको बन्द करदे। गुरु भोजन (बहुत भारी गरीष्ट) करने पर भी वह इसी नियमसे शीघ्र हजम होता है।

स्थिर भावसे बैठ एक टक बांध कर नाभि मण्डलमे देखते हुवे नाभिकन्दका ध्यान लगानेसे एक सप्ताहमें ही बदहजमी आराम हो जाती है।

साँसको रोक नाभिका आकर्षण (खिंचाव) करके नाभिका ग्रन्थिदेश सौ बार रीढ़से मिलाने पर, आंव आदि पेटकी गड़बड़से पैदा हुआ सब कष्ट आराम होता है एवं उदर (पेट) की अग्नि और हाजमेकी शक्ति बढ़ती है।

प्लीहा,—

रातमें बिस्तर पर लेटते समय और सवेरे बिस्तर छोड़ते समय हाथ-पैर सिकोड़ कर लम्बे तानना चाहिये। फिर इस बगल और उस बगल अँगड़ाई (गात्र भङ्ग) लेकर सारे शरीरको सिकोड़ना और फैलाना चाहिये। रोज़ रोज़ चार-पाँच मिनिट इसी तरह करनेसे प्लीहा, यकृत यानी पिल्ही और लरक आदि अच्छे हो

जायँगे। आजीवन रोज रोज ऐसा ही क्रिया करनेसे प्लीहा और यकृतके लिये कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा।

दन्तरोग,—

रोज जितने दफे पाखाने जावो और पेशाव करो, उतने ही दफे नीचे और ऊपरकी दन्तवलीको भिड़ाकर, जरा जोरसे दवाये रखो। जब तक पाखाना और पेशाव उतरे, तब तक दाँतसे दाँतको दबाये रखना चाहिये। दो चार रोज ऐसा अभ्यास करनेसे ढीले दाँत मजबूत होंगे और आजीवन प्रतिदिन ऐसा अभ्यास करने पर दाँतोंकी जड़ मजबूत होगी और दाँत बहुत दिन काम करने लायक रहेंगे, एवं दाँतकी किसी भी प्रकार की बीमारी होनेका डर नहीं रहेगा।

तपकनेका दर्द या एकाएक कोई दर्द हो जाना—

छाती, पीठ या कोख—किसी भी जगह तपकनेका दर्द या दूसरे किसी प्रकारका दर्द जैसे ही मालूम पड़े वैसे ही जिस नथनेसे साँस निकलती हो, उसे बन्द कर दो ; ऐसा करनेसे दो चार मिनिट में ही दर्द आराम हो जायगा।

दमा, —

जब दम बढ़े या साँस फूले, उस समय जिस नथनेसे साँस चलती हो, उसे बन्दकर दूसरे नथनेसे साँसकी गति चलावे ; ऐसा होनेसे दश पन्द्रह मिनटमें साँसका फूलना कम पड़ जायगा। रोज ऐसा करनेसे एक महीनेके अन्दर बीमारी शान्त हो जायगी। दिनमें

जितना ही ज्यादा समय हो सके, यह काम किया जाय तो उतनी ही शीघ्र यह बीमारी आराम हो जायगी। दमेके बराबर कष्ट पहुँचाने-वाली बीमारी दूसरी नहीं होती। दम फूलते समय इस नियमका पालन करनेसे किसी तरहकी दवा न सेवन करके भी आश्चर्य्यरूपसे आराम हो जायगा।

वात या वादी,—

रोज खानेके बाद कङ्घीसे शिर पोंछ डाले। कङ्घी इस तरह फेरना चाहिये कि जिससे उसके दांते शिरमें लगते रहें। इसके बाद वीरासन यानी दोनों पैर पीछेको मोड़कर उनपर पन्द्रह मिनिट बैठा रहे। रोज दोनो वक्त भोजनके बाद इसी तरह बैठनेसे वात कितने ही दिनका क्यों न हो जरूर ही अच्छा हो जायगा। इस तरह बैठ कर पान तम्बाकू खानेमें भी कोई नुकसान नहीं पहुंचता, तन्दुरुस्त व्यक्तिके लिये इस नियमका पालन करनेसे वातकी बीमारी होनेकी शंका ही नहीं रहती ; कहना वृथा है, कि रबड़की कङ्घी काममें नहीं लानी चाहिये।

चक्षुरोग,—

रोज सवेरे बिस्तरसे उठ सबसे पहले मुंहमें जितना जल आ जाय उतना जल भर, दूसरे जलसे आँख पर बीस छींटा डालो।

रोज दोनों वक्त भोजनके बाद मुंह धोते समय कमसे कम सात दफे आँख पर जलका छींटा लगाओ।

जितनी बार मुंहमें जल लेवें उतनी बार आँख और कपालको धोना न भूलें।

रोज स्नानके समय तेल लगाते वक्त पहले दोनों पैरके अंगूठेके नाखून तेलमें डूबाकर, पीछे तेल मलना चाहिए।

ये कईएक नियम आँखके लिये विशेप उपकारी हैं। इससे दृष्टि-शक्ति बढ़ती है, आँख ठण्डी रहती है और आँखकी किसी प्रकारकी बीमारी होनेकी सम्भावना नहीं रहती। आँख मनुष्यका परम धन है ; इसलिये रोज इस नियमका पालन करनेमें किसीको भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

वर्षफल निर्णय

चैत्र महीनेकी शुक्ल प्रतिपदाके दिन सवेरे यानी चान्द्र वत्सर शुरू होनेके समय एवं दक्षिणायन और उत्तरायणके आरम्भके समय ज्ञानी व्यक्तिगण तत्त्वसाधनके भेदाभेदको समझें और देखें। यदि उस समय चन्द्र नाड़ी चले एवं पृथिवी-तत्त्व, जल-तत्त्व किम्वा वायु-तत्त्वका उदय हो, तो पृथिवी सर्वप्रकार शस्यशालिनी (धान्ययुक्त) होकर देशका विशेप मंगल होगा, फिर यदि अग्नि-तत्त्व या आकाश-तत्त्वका उदय हो, तो पृथिवीमें विषम भय और घोर अकाल पड़ता है। कहे हुये समयमें यदि सुपुम्णा नाड़ीसे साँस चले तो, सब कामका नाश, पृथिवीमें राष्ट्रविप्लव, महारोग (मरी आदि) और कष्ट-यन्त्रणादि आ पहुंचती हैं।

मेप संक्रमण या महाविपुव (मकर) संक्रान्तिके दिन सवेरे यदि पृथिवी-तत्त्वका उदय हो, तो अधिक वर्षा, राज्यवृद्धि, सुभिक्ष, सुख

और सौभाग्यकी वृद्धि होती है एवं पृथिवी खूब शस्य-शालिनी होती है। जल-तत्त्वके उदयमें भी यही फल समझना चाहिये। लेकिन अग्नि-तत्त्वका उदय होनेसे दुर्भिक्ष (दुष्काल), राष्ट्र-विप्लव (राज्य परिवर्तन), स्वल्प-वर्षा एवं बहुत कठिन बीमारीकी उत्पत्ति होती है। वायु-तत्त्वके उदय होने पर उत्पात, उपद्रव होना, भय फैलता एवं बहुत ज्यादा जल बरसता या अनावृष्टि यानी जलकी बूंद भी नहीं टपकती है और आकाश-तत्त्वके उदय होने पर बुखार, सन्ताप, ज्वर और भय उत्पन्न होता है एवं पृथिवीमें शस्य-हानि होती है।

पूर्णे प्रवेशने श्वासे स्व-स्व-तत्त्वेन सिद्धिदः ॥ स्वरोदय शास्त्र।

मेष संक्रान्तिके समय जब जिस ओरके नथनेमें ही वायु पूर्ण रहे या साँसकी वायु अन्दर घुसे, यदि उस समय उस नथनेके नियमानुसार सब तत्त्वोंका उदय हो तो उस वर्षका फल अच्छा होता है। इससे उलटा होने पर खराब समझना चाहिये।

यात्रा प्रकरण।

जब किसी जगह किसी कामके लिये जानेकी आवश्यकता हो तब जिस ओरके नथनेसे साँस चलती हो, उसी ओरका पैर पहले आगे बढ़ा कर यात्रा करने पर शुभ फल निकलता है।

वामाचार प्रवाहेन न गच्छेत् पूर्व उत्तरे।
दक्षनाड़ी प्रवाहेतु न गच्छेत् याम्य पश्चिमे ॥

पवन-विजय-स्वरोदय ॥

जब बायें नथनेसे साँस चले तब पूर्व और उत्तर दिशामें नहीं जाना चाहिये एवं जब दाहिने नथनेसे साँस निकले तब दक्षिण और पश्चिमकी ओर न जाय। इन सब दिशाओंमें उस समय यात्रा करनेसे महा विघ्न पैदा होता है, यहाँ तक कि यात्रीके फिर घर लौटनेकी भी उम्मेद नहीं रहती।

यदि सम्पत्ति कार्यके लिये यात्रा करनी हो तो इड़ा नाड़ीके चलते समय यात्रा करनेसे शुभ फल मिल सकता है। ऐसे ही यदि किसी प्रकारके विषम यानी बहुत खराब काम निकालनेके लिये यात्रा करनेकी आवश्यकता हो तो जब पिङ्गला नाड़ी चले, उसी समय यात्रा करनेसे सिद्धिलाभ होता है। समझदार व्यक्ति शुक्र और शनिवारको किसी जगह जाते समय जमीन पर सात बार और दूसरे किसी वारको जाते समय जमीन पर ग्यारह बार लात फटकार कर आगे बढ़े, लेकिन बृहस्पतिवार (गुरुवार) को किसी कामके लिये घरसे निकलने पर आधा पैर जमीन पर फट्कार कर यात्रा करे तो मन-माना फल हो सकता है। किसी कामके उद्देश्यसे यदि शीघ्र चलना आवश्यक हो, अच्छे कामके लिये जाना हो, शत्रुके साथ लड़ाई करनेके लिये हो या कोई नुकसान मिटानेके लिये हो, तो उस समय जिस नथनेसे साँस निकलती हो, उसी ओरके अंगपर हाथ फेरना चाहिये। पीछे उसी ओरका पैर आगे रखकर उस समय चन्द्रनाड़ी चलनेसे चार बार एवं सूर्य्यनाड़ी चलनेसे पाँचवार जमीन पर पैर फट्कार कर यात्रा करना चाहिये। सदा इसी नियमानुसार यात्रा करना चाहिये। इस नियमानुसार यात्रा करनेसे उसके साथ

किसीका भी झगड़ा नहीं होगा एवं उसे कुछ नुकसान भी नहीं पहुंचेगा; यहाँ तक कि उसके पैरमें .फाँस भी नहीं लगेगी। वह व्यक्ति सब आपत्ति-विपत्तिसे छूटकर सुख-स्वच्छन्दता-पूर्वक उद्वेग शून्य होकर घर लौटता है, यह शिवका वाक्य है, इसमें सन्देह नहीं।

कोई-कोई स्वर-तत्त्व-विद् पंडित कहते हैं, कि दूरदेश जानेके लिये चन्द्रनाड़ी मंगल-जनक है और नजदीक जगह पहुँचनेके लिये सूर्य्यनाड़ी उत्तम है। सूर्य्यनाड़ीके दाहिने नथनेमें प्रवेश करते समय यात्रा करने पर शीघ्र ही काम सफल होता है।

आक्रम्य प्राणपवनं समारोहेण वाहनम्।
समुत्तरेत् पदं दत्त्वा सर्वकार्य्याणि साधयेत॥

स्वरोदय शास्त्र।

किसी प्रकारकी सवारी पर चढ़कर कोई काम निकालनेके लिये जाना हो तो प्राणवायुको आकर्षण करके यात्रा करे, उस समय जिस नथनेसे साँस चले उसी ओरका पैर आगे रख कर सवारी पर बैठे; ऐसा करनेसे काम बन जायेगा। लेकिन वायु, अग्नि और आकाश-तत्त्वके उदयमें कहीं नहीं जाना चाहिये। स्वरको समझ कर यात्रा करनेसे शुभयोगके लिये किसी पण्डित महाशयका मुंह न ताकना पड़ेगा।

———

गर्भाधान ।

ऋतुके चौथे दिनसे सोलह दिनतक गर्भाधानका समय रहता है। ऋतु-स्नाता स्त्री सूर्य्य-चन्द्रके संयोगमें पृथ्वी-तत्त्व या जल-तत्त्वके उदयके समय शङ्खवल्ली या सरवीली और गायका दूध पीकर स्वामीकी बायीं बगलमें लेट स्वामीसे पुत्रकी कामना करे। सूर्य्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ीको एकमें मिला कर ऋतु रखनेसे पुत्र सन्तान पैदा नहीं होगी। चन्द्र-सूर्य्यके संयोगसे यानी रातको जब पुरुषकी सूर्य्य नाड़ी चले, तब यदि स्त्रीकी चन्द्र नाड़ी चले तो उसी समय दोनोंको रमण करना चाहिये।

विषमांके दिवारात्रौ विषमांके दिनाधिपः ।
चन्द्रनेत्राग्नितत्त्वेषु वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥

स्वरोदय शास्त्र ।

दिन हो या रात यदि सुषुम्णा नाड़ी या सूर्य्य नाड़ी चलती हो और उसी समय यदि अग्नि-तत्त्वका उदय हो जाय, तो उसी समय ऋतुरक्षा करने पर वन्ध्या नारी भी पुत्रवती हो सकेगी। जब सुषुम्णा नाड़ी दाहिने नथनेसे निकले, तब ऋतु रखनेसे पुत्र तो होगा, लेकिन हीनाङ्ग और दुर्बल होगा। स्त्री-पुरुष दोनोंके एक ही नथनेसे साँस निकलने पर गर्भ नहीं रहेगा। जल-तत्त्वके उदयके समय गर्भाधान होने पर उस गर्भमें जो सन्तान पैदा होगी; वह धनी, सुखी और भोगी होगी एवं उसकी

यशः-कीर्त्ति दिग्दिगन्तमें फैलेगी। पृथ्वी-तत्त्वके उदयमें गर्भ रहनेसे संतान बहुत धनवान्, सुखी और सौभाग्यवान् होगी। पृथ्वी तत्त्वके उदयमें गर्भ रहनेसे पुत्र एवं जल-तत्त्वके उदयमें गर्भ रहनेसे कन्या होगी। अग्नि, वायु और आकाश-तत्त्वके उदय होते समय गर्भ रहनेसे गर्भपात होगा या उस गर्भसे सन्तान जमीन पर गिरते ही मर जायेगी।

कार्य्य सिद्धि करना।

कोई भी काम निकालनेके लिये किसीके पास जाना हो, तो जिस नथनेसे साँस निकले, उसी ओरका पैर आगे रखकर चलना चाहिये। लेकिन वायु, अग्नि या आकाश-तत्त्वके उदयमें यात्रा नहीं करना चाहिये। इसके बाद निश्चित जगह पहुँच कर जिस नथनेसे साँस चलती हो, उसी ओर जिससे काम निकालना हो, उसे रखकर बातचीत करने पर अवश्य ही काम बन जायेगा। नौकरी आदिकी उम्मेदवारीके विषयमें इस नियमसे काम करनेवाले अवश्य सफलता लाभ कर सकेंगे।

मुकद्दमे आदि काममें भी ऊपर कहे हुए नियमानुसार हाकिमके सामने इजहार आदि देनेपर मुकद्दमा जीत सकेंगे।

स्वामी या अपने अफसरसे जब बात करनेकी आवश्यकता हो, तब जिस नथनेसे साँस चलती हो, उसे उसी ओर रखकर बातचीत करना चाहिये, ऐसा करने पर मालिक या अफसरका प्रेम रहेगा।

नौकरीसे दिन काटनेवाले लोगोंके लिये यह बड़े सुभीतेकी बात है। उन्हें विशेष यत्नके साथ इस काममें दिल लगाना चाहिये।

जिस ओरके नथनेसे साँस निकलती हो, उसी ओरका आश्रय लेकर जो काम करोगे उसीमें सिद्धि लाभ कर सकोगे। लेकिन—

शत्रु वशीकरण

—के काममें उससे उलटा नियम पकड़ना चाहिये। अर्थात् जिस नथनेसे साँस निकलती हो, शत्रुको उससे उलटी ओर रखकर बातचीत करनी चाहिये ; ऐसा होनेसे प्रबल शत्रु भी तुम्हारे अनुकूल काम करने लगेगा।

उभयोः कुम्भकं कृत्वा मुखे श्वासो निपीयते।
निश्चला च यदा नाड़ी घोरशत्रु वशं कुरु॥

पवन-विजय-स्वरोदय।

कुम्भक पूर्वक मुखद्वारसे निःश्वास वायुको पीते जाना चाहिये, ऐसा करते करते जब साँसकी वायु स्थिर हो जाय, उस समय शत्रुका ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने पर धीरे धीरे प्रबल शत्रु भी उसके वशमें आ जायगा। चन्द्रनाड़ीके चलते समय बायीं ओर, सूर्य्यनाड़ीके चलते समय दाहिनी ओर, एवं सुषुम्णानाड़ीके चलते समय बीचमें खड़ा होकर काम करने पर लड़ाई झगड़ेमें जय लाभ कर सकते हैं।

यत्र नाड्यां वहेद्वायु स्तदन्तः प्राणमेव च।
आकृष्य गच्छेत् कर्णान्तं जयत्येव पुरन्दरम्॥ योग-स्वरोदय।

जिस नथनेसे वायु चलती है, उसके बीचमें रहनेवाली प्राणवायुका कानतक आकर्षण करके, जिस ओरके नथनेसे वायु चल रही हो, उसी ओरका चरण आगे बढ़ाकर चलने पर शत्रुका पराजय कर सकते हैं।

आग बुझानेका कौशल।

हिन्दुस्थानमें प्रतिवर्ष आग लगनेसे कितनों ही का सर्वस्वान्त हो जाता है। किन्तु नीचे लिखा हुआ नियम मालूम रहनेसे बहुत आसानी और आश्चर्य्यरूपसे आग बुझाई जा सकती है।

आग लगने पर जिस ओर उसकी गति है, उसी ओर खड़े होकर जिस नथनेसे साँस निकल रही हो, उस नथनेसे वायुका आकर्षण करके, उसी नथनेसे ही जल पीये ; किसी छोटे लोटेमें किसीके भी लाये हुए जलसे यह काम चल सकता है। उसके बाद सात रति (चल्लू) जल

"उत्तरास्याञ्च दिग्भागे मारीचो नाम राक्षसः।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हुतो वह्निः स्तम्भ स्वाहा॥

इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके आगमें डाले। यह मन्त्र न कहकर केवल ऊपर कहे हुए नियमका अवलम्बन करनेसे भी सुफल लाभ कर सकते हैं। हम कितनी ही बार इसकी सत्यता देखकर विस्मित हो गये हैं ; कितनों ही का माल असवाब भी जलनेसे बच गया है।

रक्त शुद्ध करनेका कौशल।

नियम-पूर्वक प्रतिदिन शीतली-कुम्भक करनेसे कुछ दिनमें शरीरका रक्त परिष्कृत (साफ) हो जाता है और शरीर ज्योतिः वाला होता है। शीतली-कुम्भकका नियम यह है—

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणञ्च कुम्भकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत् पुनः॥

गोरक्ष संहिता।

जीभसे वायुका आकर्षण करना यानी दोनों होंठ सिकोड़ (सूक्ष्म) कर बाहरकी वायुको धीरे धीरे खींचना चाहिये। इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार वायु आकर्षण कर मुंह बन्द करना और घूंट लेकर वायुको पेटमें पहुँचाना चाहिये; पश्चात् थोड़ी देर तक इस वायुको कुम्भक द्वारा धारणा करके दोनों नथनेसे बाहर निकाल देना चाहिये। इस नियमसे बार बार वायु खींचने पर कुछ दिन बाद रक्त साफ हो जायगा एवं शरीर कामदेवके जैसा चमकीला बन जायगा। शीतली-कुम्भक करने पर अजीर्ण और कफ-पित्तादि रोग नहीं पैदा होगा। चर्म्मरोग प्रभृति बीमारीमें रक्त साफ करनेके लिये सालसा काममें न लेकर, उसके बदले यह क्रिया करके देखना चाहिये; यह सालसासे भी शीघ्र फल-दायी हो सकती है और वह फल भी दीर्घकाल तक स्थायी हो सकता है।

रोज दिन-रातके बीचमें कमसे कम तीन-चार बार पॉच-सात मिनिट तक स्थिर भावमें बैठकर इसी तरह मुंहसे वायु खींचना

चाहिये और नथनेसे वायु निकालना चाहिये। अवश्य ही जितना अधिक ऐसा कर सकेंगे, उतना ही शीघ्र सुफल लाभ कर सकेंगे।

मैले, कुचैले और वायु-बिगड़े हुए स्थानमें, वृक्षके नीचे, मट्टीके तेलसे जलता हुआ चिराग वाले घरमें, और खाया हुआ अन्न हजम न होने पर यह काम न करना चाहिये। वायु निकालनेके बाद हाँफना भी नहीं चाहिये ; इस बातका विशेष खयाल रखना पड़ेगा। विशुद्ध वायुसे भरी जगहमें स्थिरासनसे बैठ धीरे धीरे रेचक और पूरकका काम करना चाहिये।

इस क्रियासे कठिन शूल एवं छाती, पेट आदिका कोई भी भीतरी दर्द, अवश्य ही मिट जायेगा।

कई एक आश्चर्य्य भरे सङ्केत।

१। ज्वर हो या और किसी प्रकारका दर्द, फोड़ा, घाव व्रणादि कुछ भी बीमारी क्यों न हो उसका लक्षण मालूम होते ही उस समय जिस नथनेसे साँस चलती हो, उसे फौरन बन्द कर देना चाहिये। जितनी देर या जितने दिनों तक शरीर स्वाभाविक अवस्थामें न पहुचे, उतनी देर या उतने ही दिनों तक वह नथना बन्द रखना चाहिये। ऐसा करनेसे शीघ्र शरीर स्वस्थ हो जायगा, ज्यादा दिन बीमारी भोगना न पड़ेगी।

२। राह चलने या किसी प्रकारका मेहनती काम करनेके पीछे शरीरमें थका-माँदापन मालूम पड़ने पर या उसके कारण धातु गर्म्म

हो जाने पर दाहनी करवट कुछ देर लेट रहे ; ऐसा करनेसे बहुत थोड़ी देरमें ही थका-माँदापन दूर होकर शरीर स्वस्थ हो जायगा।

३। रोज खानेके बाद हाथ मुँह धोकर कङ्घीसे बाल पोंछना चाहिये। कङ्घीको इस तरह फेरना चाहिये, कि उसके दाँते शिरको छूते हुए जायें। इससे शिरकी किसी प्रकारकी बीमारी, ऊर्द्धंग (वायुरोग) सम्बन्धी किसी प्रकारकी बीमारी, एवं वादीकी बीमारी होनेका कोई डर नहीं रहता। ऐसी कोई बीमारी रहने पर भी उसका जोर न बढ़ेगा ; वरन् धीरे धीरे वह दूर होती जायगी। बाल भी जल्दी पक न सकेंगे।

४। कड़ी-धूपके समय किसी जगह जाना हो तो रूमाल, दुपट्टे या अंगोछे आदिसे दोनों कान ढाँक कर धूपमें चलनेपर धूपसे पैदा हुआ किसी प्रकारका दोप शरीरको स्पर्श न कर सकेगा एवं धूपके तापसे शरीर न गरम होगा और न घबरायेगा। दोनों कान इस तरह ढाँकना चाहिये, कि सारे कान मुंद जायें और उनमें किसी प्रकारसे वायु न लगे।

५। स्मरण-शक्ति बिगड़ जानेसे शिरके ऊपर कोई लकड़ीका एक कीलक (टुकड़ा) रख, उस पर दूसरी लकड़ीका टुकड़ा जमा कर धीरे-धीरे खटखटाते जाओ।

६। रोज आध घण्टा पद्मासन लगाकर दाँतकी जड़में जीभकी नोक टिकाये रखनेसे सभी बीमारियोंका नाश होता है।

७। ललाटमे पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति ज्योतिःका ध्यान करनेसे उमर बढ़ती है एवं कुष्ठादि रोग अच्छे हो जाते हैं। सब समय

आँखके सामने पीत रंग विशिष्ट उज्ज्वल ज्योतिःका ध्यान करनेसे बिना दवाके सब बीमारी छूट जाती और देह वलि-पलि विहीन (वृद्धावस्था तथा केश-सफेदी रहित) होता है। शिर गर्म होने या चक्कर आनेसे मस्तक पर श्वेतवर्ण या पूर्ण शरच्चन्द्रका ध्यान करनेसे पाँच-सात मिनटमें ही प्रत्यक्ष फल देख सकोगे।

८। प्यासका जोर बढ़ने पर सोचना चाहिये कि जीभके ऊपर कोई खट्टी चीज रखी हुई है। शरीर गर्म होने पर ठण्डी चीच और ठण्डा होने पर गर्म चीजका ध्यान करना चाहिये।

९। रोज दोनों वक्त स्थिर आसनपर बैठ नाभिदेश या तोंदीके चक्कर पर एकटक आँखसे देखने एवं नाभि-कन्दमें वायु धारण करने और नाभिकन्दका ध्यान लगानेसे अग्निमान्द्य (भूख न लगना) बद-हजमी और उत्कट अतिसार (घोर-संग्रहणी) आदि सब तरहकी पेटकी बीमारी अवश्य ही अच्छी होगी एवं पाचन-शक्ति तथा पेटकी अग्नि बढ़ेगी।

१०। सवेरे नींद टूटने पर जिस नथनेसे साँस चलती हो उसी ओरकी हथेली मुंह पर रख कर बिस्तर छोड़नेसे वाञ्छासिद्धि होती है।

११। लाल अपामार्ग यानी लटजीरेकी जड़ हाथमें बांधने पर भूत-प्रेतादिकी बाधासे आया हुवा सब तरहका बुखार छूट जाता है।

१२। इमलीका पौधा उखाड़ कर उसकी जड़ गर्भिणी या हामिला स्त्रीके सामनेवाले बालोंमें बाँध दे, जिससे उस जड़की गन्ध नाकमें पहुँचे ; ऐसा करने पर गर्भिणी उसी समय आरामसे बच्चा

प्रसव करेगी। जैसे ही बच्चा पैदा हो जाय, वैसे ही बालोंके साथ बँधी हुई इमलीकी जड़ कैंचीसे काट डालना चाहिये; नहीं तो प्रसूतिकी नाड़ीतक बाहर निकलनेकी सम्भावना है। जब गर्भिणी प्रसव वेदनासे विशेष कष्ट पावे, उस समय घबराना छोड़ कर इस उपायको काममें लाना चाहिये। सफेद पुनर्नवाकी जड़ कूट-पीसकर जननेन्द्रियके भीतर डालनेसे भी गर्भिणी बहुत जल्दी आरामसे बच्चा प्रसव कर सकती है।

१३। जो दिनको बांयें एवं रातको दाहने नथनेसे साँस लेता हो, उसके शरीरमें कोई बीमारी पैदा नहीं होती, सुस्ती छूटती और रोज-रोज चेतनाकी वृद्धि होती है। दश-पन्द्रह दिन रुईसे ऐसा अभ्यास करने पर, पीछे आप ही आप इस नियमके अनुसार साँस चलने लगेगी।

१४। सवेरे और तीसरे प्रहरमें कागजी नींबूकी पत्ती सूंघनेसे पुराना और भीतरी बुखार छूट जाता है।

१५। रोज चित्त लगाकर श्वेत, कृष्ण और लोहित वर्णादिका ध्यान करनेसे देहके सब विकार मिटते हैं। इसी लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हिन्दुओंके नित्य ध्येय देवता हैं। ब्राह्मणगण नियमके अनुसार त्रिसन्ध्या करने पर सब बीमारियोंसे छुटकारा पाकर स्वस्थ शरीरसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं। दुःखकी बात है, कि हमारे देशके द्विजगणमेंसे कितने ही सन्ध्यादि करनेमें समयका अपव्यय नहीं करना चाहते; और जो करते हैं, वे भी ठीक तौरसे करना नहीं जानते। सन्ध्याका उद्देश्य तो दूरकी बात है, उन्हें सन्ध्या

गायत्रीका अर्थादि तक मालूम नहीं है; प्राणायामादिका भी ठीक तौरसे अनुष्ठान नहीं होता ; सिर्फ सन्ध्याकी संस्कृत वाक्यावलीका उच्चारण मात्र करते हैं, इसके सिवाय सन्ध्यादि द्वारा क्या हो रहा है, कुछ भी नहीं समझते। मेरा विश्वास है, कि भाव हृदयमें दृढ़ न होनेसे भक्तिका होना दुर्लभ है ; इस तरह सन्ध्याके साधनेकी अपेक्षा भक्ति भरे चित्तसे अपनी बोलीमें ही हृदयकी प्रार्थना भगवानको निवेदन करनेसे अधिक सफलताकी आशा हो सकती है। परमेश्वरने महाराष्ट्रियोंके घर तो जन्म लिया नहीं कि सिवा संस्कृत भाषाके अपनी मातृभाषा समझनेमें उन्हें मुशकिल पड़ जायगी।' सन्ध्यामें प्राणायाम का जो नियम बांधा है, उसमें प्राणायामकी क्रिया एवं ब्रह्मा, विष्णु और शिवके ध्यानमें यथा-क्रम लाल, काले और श्वेत वर्णका ध्यान—यही दो महती क्रियाएँ अनुष्ठित होती हैं। इसकी एक एक क्रियामें कितना-कितना गुण भरा हुआ है,—यह बात कोई नहीं समझता। फिर त्रिसन्ध्यामें गायत्रीके ध्यान पर भी ऐसे ही रङ्गका ध्यान करना चाहिये। आर्य्य-ऋषियोंकी सन्ध्या-पूजादिका महत् उद्देश्य हम स्थूल-बुद्धिसे समझ नहीं सकते ; फिर भी अपनी सूक्ष्म-बुद्धिकी बादशाही चालसे वह सब बिगड़े हुये मस्तिष्कका प्रलाप बताते और व्यर्थ कह कर ही मुंह मोड़ लेते हैं। निश्चय जानिये,—हिन्दू देव-देवीकी नाना मूर्त्तियाँ और नाना वर्ण जो शास्त्रमें स्थिर किये गये हैं, वे सब वृथा नहीं हैं। सभी तरहकी धर्म्म-साधना और तपस्याकी जड़ स्वस्थ शरीर है। शरीर स्वस्थ न रह कर बहुत दिन न जीनेसे धर्म्म-साधन या अर्थ-उपार्ज्जनादि कुछ भी नहीं हो सकता।

असीम ज्ञान-सम्पन्न आर्य्य ऋषिगण शरीर स्वास्थ्य और परमार्थ साधन करनेके सहज उपाय-स्वरूप देव-देवियोंके नानावर्ण स्थिर कर गये हैं। सन्ध्या आसनादिके समय श्वेत, रक्त और श्याम वर्णका ध्यान करना होता है। इससे वात, पित्त, कफ—इन तीनों धातुओंका साम्य हो जाता है एवं शरीर स्वस्थ रहता है। इसीलिये प्राचीन-कालके ब्राह्मण-क्षत्रियगण कितने ही अनियम करके भी स्वस्थ शरीरसे बहुत दिन जीते रहे थे। सवेरे नींद टूटने पर शिरमें रहनेवाले श्वेत-कमलमें अवस्थित श्वेतवर्ण गुरुदेव और रक्तवर्ण उनकी शक्तिका ध्यान करनेका नियम बाँधा गया है; इससे शरीर कितना स्वस्थ रहता है, विलायती बाबू लोग इसको क्या समझ सकते हैं? जो हो, यदि कोई ब्रह्मा, विष्णु और शिवमूर्त्ति या गुरु और उनकी शक्तिका ध्यान करके मूर्त्तिपूजक, जड़ोपासक या कुसंस्काराच्छन्न घन गहरे अन्धेरेमें गिरनेको राजी न हो, तो भी सभ्यताके अमल-धवल-आलोकमें रहकर उसे श्वेत, रक्त और श्यामवर्णका ध्यान करने पर आशासे अधिक फल मिलेगा। वर्णका ध्यान करनेसे तो किसीका वर्ण काला नहीं हो जायगा; वरन् बिस्कुट-डबल रोटी खानेसे बना हुआ जीर्ण-शीर्ण (सड़ा-गला) शरीर सोने जैसा चमकने लगेगा। जो हो, मैं सबसे इस विषयकी परीक्षा करनेके लिये अनुरोध करता हूं।

१६। पुरुषके दाहिने नथने और स्त्रीके बायें नथनेसे साँस चलते समय दाम्पत्य-सम्भोग-सुख उपभोग करना चाहिये। इससे दोनोंका शरीर चङ्गा रहेगा, दाम्पत्य-प्रेम बढ़ेगा प्रणयिनी भी वशमें रहेगी।

१७। सम्भोगके बाद स्त्री-पुरुष दोनों ही के दमभर शीतल जल पान करनेसे शरीर स्वस्थ। रहता है।

१८। रोज एक तोले घीमें आठ-दश काली मिर्च भूनकर पीनेसे रक्त साफ होता और देह मजबूत बनती है।

चिर-यौवन लाभका उपाय।

मैं समझता हूँ कि, यौवन लाभ करनेके—लिये सभी लोग आशा करते हैं। महाभारतमें लिखा है कि महाराजा ययातिने अपने लड़केको अपना बुढ़ापा सौंप कर उसके यौवन द्वारा संसारका सुख भोग किया था। वर्त्तमान युगमें भी देखते हैं, कि बालक गण बारम्बार अपने चेहरे पर अस्तुरा फेर कर दाढ़ी-मूंछ उड़ा असमयमें ही जवान बननेकी वृथा चेष्टा किया करते हैं, और बुड्ढे सफेद बाल तथा दाढ़ी पर खिजाब लगाकर एवं पोपले मुंहमें डाक्टरकी सहायतासे नकली दाँत बैठा कर पार्वात्य नन्हें बालककी भाँति साजसे सज्जित हो पौत्रके साथ हँसी तमाशा करके, स्त्रियोंके साथ नाच, थियेटर, बायस्कोप आदि अड्डोंमें जाकर युवककी भाँति आनन्द लूटनेकी चेष्टा करते हैं। अंगरेज नारियां भी जवानीके ज्वारमें भाँटा आनेपर प्राणान्त प्रतिज्ञा करके भी यौवनमें अन्यायरूपसे लगा हुआ कलङ्क मिटानेके लिये मुंहकी खाल उठाकर यौवनके सौन्दर्य्यसे विभूषित रहनेकी चेष्टा करती हैं। किन्तु स्वरशास्त्रानुसार हम आसानीसे यौवन रक्षा कर सकते हैं। यथा :—

जब जिस अङ्गमें जिस नाड़ीसे साँस चले, तब उसी नाड़ीको रोकना चाहिये। जो व्यक्ति बार-बार साँस-वायु-रोकने और छोड़नेमें समर्थ होता है, वह दीर्घ-जीवन और चिर-यौवन लाभ कर सकता है। सफेद बाल, खोखले दाँत और ढीली खालमें युवक बननेकी चेष्टा करके विडम्बना न उठाकर पहलेसे ही इस नियमका अवलम्बन करनेसे फिर लोकसमाजमें हास्यास्पद नहीं बनना पड़ता।

अनाहत-पद्मके वर्णनमें बताया गया है, कि उस पद्मकी कर्णिका के भीतर अरुणवर्ण सूर्य्यमण्डल विद्यमान है, सहस्रारमें अवस्थित अमाकलासे जो अमृत टपकता है, वह उसी सूर्य्यमण्डलमें सूख जाता है। इसीसे मानव-देहमें वलि, पलि और जरा यानी बुढ़ापा आता है। योगीगण विपरीतकरणमुद्रा यानी पैर ऊपर उठाने एवं शिर नीचे रखनेके कौशलकी सहायतासे टपकता हुआ अमृत सूर्य्यमण्डलमें जानेसे बचा लेते हैं। इससे देह वलि, पलि और जरासे रहित एवं दीर्घकाल तक स्थिर रहता है। लेकिन—

गुरूपदेशतो ज्ञेयं न च शास्त्रार्थकोटिभिः ॥

अर्थात् यह सारा काम गुरुके उपदेशसे ही हो सकता है। विपरीतकरणमुद्राके सिवा खेचरी मुद्राके द्वारा भी आसानीसे यह टपकता हुआ अमृत बचाया जा सकता है। खेचरी मुद्राका नियम ऐसा है। यथा—

रसना तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत्।

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।

भ्रुवोर्म्मध्ये गता दृष्टिम्मुद्रा भवति खेचरी ॥

घेरण्ड संहिता ।

जीभको धीरे धीरे तालुके भीतर प्रवेश कराना चाहिये। पीछे जीभ ऊपरको उलट कपाल कुहरेमें प्रवेश करा कर दोनों भौंहोंके बीचके स्थानमें दृष्टि स्थिर रखना चाहिये। इसीसे खेचरी-मुद्रा हो जाती है।

कोई-कोई तालुकी जड़में जीभकी नोक छुवाकर ही उस्ताद हो जाते हैं। लेकिन वहाँ तक !—असलमें कुछ भी नहीं होता। उस तरह जीभको रखकर क्या करना पड़ेगा, यह कोई भी नहीं जानता। खेचरी-मुद्रा द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे टपकती हुई सोमधाराको पीनेसे अभूतपूर्व (अनोखा) नशा चढ़ता है, शिरमें चक्कर आता है, आँख आपसे आप शिवनेत्र बनकर स्थिर रहती है ; भूख-प्यास दूर हो जाती है। इसी तरह खेचरी-मुद्रा सिद्ध होती है। खेचरी-मुद्रा साधनके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रसे जो सुधा टपकती है, वह साधकका सारा शरीर सींच देती है। उससे साधकका शरीर दृढ़ होता वलि, पलि और जरासे रहित होकर कन्दर्पकी भाँति कान्तिविशिष्ट होता एवं विशेष बलवान् हो जाता है। प्रकृत खेचरी-मुद्रा साधन कर सकने पर साधक छः महीनेके अन्दर ही सब बीमारियोंसे छुटकारा पा जाता है।

खेचरी-मुद्रामें सिद्धि होनेसे नाना प्रकारके रसास्वादका अनुभव होने लगता है। एक एक प्रकारके स्वादसे एक एक प्रकारका फल

होता है। क्षीरका (घनीभूत दूधका) अनुभव होनेसे बीमारी मिटती है और घीका स्वाद आनेसे अमरत्व मिलता है।

और भी नाना प्रकारके उपायोंसे शरीर वलि, पलि और जरासे मुक्त करके यौवन चिरस्थायी किया जा सकता है। विस्तारभयसे वे सब उपाय यहाँ नहीं लिखे गये हैं।

दीर्घ-जीवन लाभका उपाय।

संसारमें कौन दीर्घकाल तक जीना नहीं चाहता? कहीं कोई बीमारी, शोक या दूसरी दारुण यन्त्रणासे मौतको अच्छा समझता है, किन्तु योगिगण तो जीवन और मृत्यु इन दोनोंसे उदासीन रहते हैं। इन लोगोंके सिवाय और सभी व्यक्ति बहुत दिन जीनेकी आशा रखते हैं। किन्तु कितने लोग बहुत दिन जीते- देख पड़ते हैं? अकालमृत्यु कितने ही लोगोंको रोज यमराजके घरका अतिथि बना रही है, और जीवनमें पूर्ण आयु कितना है, यह किसीको मालूम भी नहीं पड़ने देती। अकालमृत्यु क्यों होती है, एवं उसे दूर करनेका उपाय क्या है? आर्यऋषिगणने मौतका कारण निर्देश करते हुए दिखाया है, कि मानव आप ही अपनी मौतका कारण बनता है। अदृष्ट या दृष्ट यानी तकदीर और तदबीर, इन दोनों कारणोंकी जड़ मानव स्वयं ही है। वे कहते हैं, कि कर्म्मफल पानेके लिये देह उसके कामके उपयोगी बनता है। सङ्कल्प-विकल्प ही जीवकी जन्ममृत्युका

कारण है। सुतरां जबतक कर्म्मफल है, देह भी तबतक रहती है; जब कर्म्मफल नहीं रहता, तब देहकी क्या आवश्यकता? इसीलिये देखा जाता है, कि देह कभी चिरस्थायी नहीं रह सकती, वह दो प्रकारसे छूटती है; एक तो जब कर्म पूरा हो जाने पर जीव पूर्ण-ज्ञानके साथ आसानीसे पञ्च इन्द्रियोंसे युक्त देहको छोड़ता है, जिसे कि मोक्ष कहते हैं; दूसरे जब जीवके सञ्चित कर्म्म, देहको उसके भोगके अनुपयुक्त समझने पर जीवको विवश और अज्ञानवृत करते हुए बलपूर्वक स्थूल देहसे छुड़ाते हैं; तब वह मृत्यु कहाती है। ऐसी मृत्युको ज्ञान या योगानुष्ठानादि द्वारा दूर कर सकते हैं। चित्तको सर्व प्रकारकी वासना, दुराशा (बुरी आशा) प्रभृतिसे निवृत्त रखना दीर्घ-जीवन लामका उपाय है। काम, क्रोध, लोभ आदि प्रबल रिपुगण जिससे किसी प्रकार भी चित्तको दुखा न सकें, ऐसा ही काम करना चाहिए। ईश्वरमें भक्ति और भरोसा रख सन्तोपका अमृत पीनेमे लग जानेसे दीर्घ-जीवन लाभ करना विशेप कठिन काम नहीं है। दर्शन, विज्ञान प्रभृति शास्त्र निर्म्मात्ताओंने विशेप गम्भीरता-पूर्ण युक्तियों द्वारा जीवके जन्म-मृत्युका कारण एवं दीर्घ-जीवन लामका उपाय स्थिर किया है; सुतरां उस विपयका आन्दोलन आलोचना करना यहाँ पर हम निष्प्रयोजन समझते हैं। अतः स्वर शास्त्रके अनुसार हम दीर्घ जीवन कैसे प्राप्त कर सकते हैं, यहाँ केवल उसकी ही आलोचना की जाती है।

मानव-शरीरमें दिन रात जो श्वास-प्रश्वास चलता है, उसका नाम प्राण है। श्वास निकलकर फिर देहमें न आनेसे ही जीवकी

मृत्यु होती है। निःश्वासका एक स्वाभाविक नियम यह है, कि—

प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो निर्गमे द्वादशांगुलम् ॥

स्वरोदय।

मानवके साँस लेते समय यानी नथनेसे साधारण साँस खींचते समय दश अंगुल परिमाण साँस अन्दर घुसती है। साँस छोड़ते समय बारह अंगुल साँसकी वायु बाहर निकलती है। नथनेसे एक लकड़ी पर बारह अंगुल मापकर उसी जगह जरा-सी रुई रखकर आजमाइये ; यदि उसे पारकर वायु चली जाय तो रुई हटाकर देखना चाहिये कि उसकी गति कहाँ तक पहुँची है ; स्वाभाविक अवस्थामें बारह अंगुलसे ज्यादा गति होनेसे समझ लेना चाहिये कि जीवन-क्षयके पथमें जा रहा है। ऐसा मालूम होने पर प्राणायामके द्वारा आसानीसे वह दूर हो सकती है।

मनुष्यके साँस छोड़ते समय बारह अंगुल दूरीतक साँसकी वायु निकलती है ; लेकिन भोजन, गमन, रमण, गान आदि विशेष-विशेष कामोंमें स्वाभाविक नियमकी अपेक्षा भी ज्यादा परिमाणसे साँस बाहर निकलती है। यथा—

देहाद्विनिर्गतो वायुःस्वभावाद्वादशांगुलिः।
गायने षोड़शांगुल्यो भोजने विंशतिस्तथा ॥
चतुर्विंशांगुलिः पान्थे निद्रायां त्रिदशांगुलिः।
मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामेच ततोऽधिकम् ॥
स्वभावेऽस्य ततौमूले परमायुः प्रवर्द्धते।
आयुक्षंयोऽधिके प्रोक्तो मारुते चान्तरोद्गते ॥

गान करते समय सोलह अंगुल, भोजन करते समय बीस अंगुल, चलनेके समय चौबीस अंगुल, सोनेके समय तीस अंगुल, एवं स्त्री-संसर्गके समय छत्तीस अंगुल साँसकी गति होती है। थकावट पैदा करनेवाले परिश्रममें इससे भी अधिक साँस बढ़ जाती है।

किसी भी कामके समय बारह अंगुलसे अधिक साँसकी गति होनेपर जीवन-शक्तिका या प्राणका क्षय समझना चाहिये। प्राणायामादि द्वारा इस अस्वाभाविक गतिसे स्वाभाविक गतिमें वायुको स्थिर रखना ही दीर्घ-जीवन लाभका प्रधानतम उपाय है। मैथुनसे जो जीवनको हानि पहुँचती है, साँसकी चालकी तेजी ही उसका प्रधान कारण है। फिर जिसकी जीवनी-शक्तिका ह्रास हुआ अर्थात् जिन्दगीका जोर घटा, साफ शब्दोंमें कहें तो जिनको धातुदौर्बल्यकी बीमारी पैदा हुई, उनकी साँस बहुत दीर्घ और जल्दी जल्दी एवं अस्सी अंगुल तक लम्बी निकलती है—इसीसे वह उसको और भी जल्दी मौतकी राहमें खींच ले जाती है।

योगकी अङ्गीभूत क्रियाके अनुष्ठानसे ऐसी साँसको स्वाभाविक अवस्थामें रखना ही जीवनी शक्तिकी रक्षाका एकमात्र उपाय है। फिर जो व्यक्ति योगकी शक्तिसे साँसकी स्वाभाविक गतिको एक-एक अंगुलके क्रमसे ह्रास कर सकते हैं, सर्वसिद्धि और अमानुषी क्षमता उनके बायें हाथका खेल बन जाती है। * इस प्रकार योगकी

एकांगुलकृतेन्यूने प्राणे निष्कामतिर्मता।
आनन्दस्तु द्वितीये स्यात कविशक्तिस्तृतीयके॥

(शेष २८८ पृष्ठ पर)

ऊँची अवस्थामें पहुचनेसे एक ही बारमें वायुको रोककर बहुत दिन व्यतीत किये जा सकते हैं। पुराने योगियोंकी बात अलग रही ; वर्त्तमान कालमें भी भूकैलासके साधुकी बात कौन नहीं जानता ? श्रीश्री काशीधामके त्रैलङ्ग स्वामीकी नाना प्रकारकी अनोखी शक्ति-लीलाएँ किसने नहीं सुनी हैं ? त्रैलङ्ग स्वामी दो-चार घण्टे जलमें डूबे हुए पड़े रहते और इससे उनकी मृत्यु नहीं होती थी। महाराज रणजीतसिंहके समय मेकग्रेगर प्रभृति युरोपियनोंके सामने हरिदास साधुको चालिस दिन तक सन्दूकमें बैठाकर ताला लगानेके बाद पृथ्वीमें गाड़कर रखा गया था ; किन्तु चालीस दिन पीछे देख पड़ा कि वह मरे नहीं थे !

प्राणवायुकी बाहरकी गति असली परिमाणमें रख सकनेसे परमायु बढ़ती है। लेकिन साँस बँधे हुए नियमसे ज्यादा जानेपर उम्र घटना निश्चित है। निद्रा, गाना, मैथुन प्रभृति जिस जिस काममें प्राणवायु अधिक परिमाणसे बाहर निकलती है, वह काम

वाचः सिद्धिश्चतुर्थेतु दूरदृष्टिस्तु पञ्चमे ।
षष्टेत्वाकाशगमनं चण्डवेगश्च सप्तमे ॥
अष्टमे सिद्धयश्चाष्ठौ नवमे निधयो नवः ।
दशमे दशमूर्त्तिश्च छायानाशो दशेकके ॥
द्वादशे हंसचारश्च गंगामृतरसं पिवेत् ।
आनखाग्रे प्राणपूर्णे कस्य भक्ष्य च भोजनम् ॥

पवन-विजय स्वरोदय ।

जितना कम किया जायेगा, उतना ही दीर्घ-जीवन लाभ कर सकोगे एवं शरीर स्वस्थ होगा—इसमें सन्देह नहीं। नियमित रूपसे प्राणायाम करने पर दीर्घ-जीवन लाभ होता है। प्राण शब्दका अर्थ वायु और आयाम शब्दका अर्थ रोकना होता है; प्राणायामके समय कुम्भक करने पर प्राणवायु रुकता है—साँस नहीं चलती, इसीलिये जीवन दीर्घ होता है; यानी परमायु बढ़ती है और शरीर रोग-शून्य होता है।

शास्त्रवेत्ता (समझनेवाले) पण्डितगण कहते हैं, कि कार्य्यके गुणसे उम्र बढ़ती एवं कार्य्यके दोषसे उम्र घटती है। वैज्ञानिक, दार्शनिकोंका कहना है कि काम, क्रोध, चिन्ता, दुराशा आदि ही जीवकी मौतके कारण हैं। एक ही बात है,—स्वर शास्त्रकारोंने भी एक ही बातमें उसकी मीमांसा कर दी हैं। साँसकी बड़ाई और छोटाई ही दीर्घायु और अल्पायु पानेका प्रधान कारण है। शास्त्र-वेत्ताओंकी युक्तिके साथ स्वर जानने वालेका पूरा मतैक्य देख पड़ता है। क्योंकि उन्होंने जिन जिन कामोंको मौतका कारण स्थिर किया है, उन्हीं कामोंमें साँसकी गति बढ़ती है। अतएव जिनकी प्राणवायु जितनी कम खर्च होगी यानी जितनी कम निकलेगी, उनकी उम्र उतनी ही बढ़ेगी और बीमारी आदि कम पड़ेगी। इससे उल्टा करने पर नाना प्रकारकी बीमारीसे आयु नष्ट होगी, इसमें सन्देह नहीं। विज्ञ पाठकोंके लिये साँसकी गतिको समझकर साधन करनेसे दीर्घ-जीवन लाभ करना विशेष कठिन काम नहीं है। श्वासवायुकी बाहरी गति बिलकुल रोक कर, उसे अन्तःकरणके भीतर

दौड़ा सकनेसे मनुष्य योगेश्वर हंस-स्वरूप वन कर गंगाका अमृत पीता हुआ अमरत्व लाभ कर सकता है। उसकी चोटीसे लेकर नख तक प्राणवायुमें अमृत भरा रहता है ; अतः उसको खाने पीनेकी आवश्यकता नहीं होती। वह वाह्य-ज्ञान-शून्य होकर जीवात्माको परमात्माके साथ मिलाता हुआ अन्तःकरणमें परमानन्दका भोग करता है। जिस उपायसे दीर्घ-जीवन लाभ होता है, उसीसे मानवको मुक्ति भी मिलती है।

पहले ही मृत्यु जान लेनेका उपाय।

प्रातःकालमें सूर्य्योदय होने पर जैसे सूर्य्यास्त अवश्य होता है, दिनका आलोक छिपने पर जैसे यामिनी (रात) का अँधेरा निश्चित है, वैसे ही जन्म लेने पर मृत्यु भी अवश्य होती है। शङ्करावतार शङ्कराचार्य्यजीने कहा है, कि—

यावज्जननं तावन्मरणं तावज्जननी जठरे शयनम्। मोहमुद्गर।

वास्तवमें इस परिवर्त्तनशील नश्वर जगत्में किसी वातकी स्थिरता और निश्चयता नहीं है ; केवल मृत्यु ही निश्चित है। हमारे (वंगाल) देशके मधु कवि महाशय मधुर स्वरमें सुना गये हैं, कि :—

जन्मिले मरिते हवे,
अमर के कोथा कवे,
चिर स्थिर कवे नीर,
हायरे जीवन नदे ?

यानी

जन्म लेइ मरना अवशि,
अमर भया नहिं कोय।
जीवन-नद बहता रहै,
नीर अचल नहिं होय॥

इस मर्त्य जगत्‌में कोई अमरत्व लाभ नहीं कर सका है। केवल शास्त्रोंसे सुन पड़ता है,—

"अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमाँश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥"

इन्हीं सात व्यक्तियोंने सिर्फ मौतको अंगूठा बताया था; लेकिन ये भी अब लोगोंके लिये प्रत्यक्ष नहीं हैं। मृत्यु अवश्य ही होगी, जन्म ग्रहण करने पर और कुछ हो या न हो, मृत्यु तो अवश्य ही होगी। आज हो, कल हो या दश वर्ष पीछे हो, किन्तु एकदिन सबको ही उस सर्वग्रासी यमराजके घर अवश्य पहुंचना होगा।

एकदिन मृत्यु जब नित्य प्रत्यक्ष सत्य है, तब कितने दिन बाद अपनी प्राणसे प्यारी स्त्री और प्राणाधार पुत्र-कन्या एवं धन-जन-पूर्ण सुखका संसार छोड़कर जाना पड़ेगा, इसको कौन नहीं जानना चाहता? विशेषतः मौतके पहिले जान सकने पर सांसारिक और वैषयिक कामोंमें विशेष सुभीता भी हो जाता है एवं नाबालिग पुत्र-कन्याकी तत्वावधारणा (देखभाल) और रक्षणावेक्षण (हिफाजत) का प्रबन्ध एवं विषय-विभवकी हम सुव्यवस्था भी कर सकते हैं। दूसरा सुभीता यह भी है कि मौतके परदेपर नजर पड़नेसे परकाल की राह भी साफ कर सकते हैं। संसारके चक्करमें पड़े रहकर एवं

माया मरीचिकाके जालमें फँसकर, तथा नाना प्रकारकी विलास-वासनामें लिप्त होकर जो व्यक्ति इस मर्त्य जगत्‌में अपनेको अमर समझ कर सदा स्वार्थ-साधनामें नियुक्त हैं,—धर्म्मकी प्रवृत्ति जिनके मनमें स्थान नहीं पाती ; अगर वे भी जान सकें कि, मौत अपना भयंकर मुंह फैलाये सामने थिरक-थिरक कर नाच रही है, और छः महीने, एक महीने या दश दिनके बाद प्राणारामदायिनी सहधर्म्मिणी और आत्मैकांश—पुत्र-कन्या एवं बहुत आदरके धन-भवन (दौलत, मकान), विलास-व्यसनके सारे उपकरण आदि सब छोड़ कर खाली हाथ निःसम्बल (निराधार) अवस्थामें अकेला चल देना पड़ेगा, तो अवश्य ही वे तत्त्व-पथके पथिक होकर धर्म्म-कर्म्मके द्वारा परलोकका इष्ट साधन कर सकते हैं। तन्त्र, पुराण, आयुर्वेद ज्योतिष और स्वरोदय प्रभृति शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके मृत्युके लक्षण लिखे हैं। उनके पाठसे मृत्यु-लक्षण स्थिर करना साधारण व्यक्तिके लिये एकदम दुःसाध्य बात है। मैंने योगी और साधु-संन्यासियोंके मुखसे अनेक मृत्यु-लक्षण सुने, और बहुत बार अनेक लोगोंके द्वारा परीक्षामें प्रत्यक्ष सत्य-फल लाभ भी किया है, उनमेंसे अनेक बार परीक्षा किये हुए कईएक लक्षण मूल संस्कृतमें देकर समय नष्ट करनेके बदले सर्व-साधारणके सुभीतेके लिये हिन्दीमें ही लिखता हूँ।

वर्ष, महीना या प्रतिपदाके दिन एक दिनरात जिसके दोनों नथनेसे बराबर वेगसे वायु निकलता है, उसी दिनसे तीन सालके बाद उसकी मृत्यु होगी।

वर्ष, महीना या प्रतिपदाके दिनसे दो रात-दिन जिसके दाहने नथनेसे साँस निकलता है,—उसी दिनसे दो वर्ष बाद उसकी मृत्यु होगी।

वर्ष, महीना या प्रतिपदाके दिनसे तीन दिन-रात जिसका दाहने नथनेसे साँस चलता है, उसी दिनसे एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु होगी।

वर्ष. महीना या प्रतिपदाके दिनसे लगातार जिसकी रातको बायें इडा और दिनको दाहने (पिङ्गलानाड़ी) नथनेसे साँस चलती है, वह छः महीनेके अन्दर मर जाता है।

वर्ष. महीना या प्रतिपदाके दिनसे सोलह दिनतक जिसकी साँस दाहने नथनेसे बहती है, उसी दिनसे एक महीनेके आखिरी दिनमें उसकी मृत्यु होगी।

वर्ष, महीना या प्रतिपदाके दिन पल भर भी बायें नथनेसे साँस न निकल कर. जिसकी साँस लगातार दाहिने नथनेसे चलती है, पन्द्रह दिनमें वह मर जाता है।

वर्ष, महीना या प्रतिपदाके दिन जिसके मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु एक ही साथ निकलते हैं, दश दिनमें वह अवश्य ही मर जायगा।

जो व्यक्ति अपनी भौंहोंके बीचकी जगह नहीं देख पाता है, उसी दिनसे सातवें या नवें रोज वह मर जायगा। जो व्यक्ति अपनी नाक नहीं देख सकता वह तीन दिनमें; और जीभ नहीं देख सकता उसकी एक ही दिनमें मृत्यु होगी,—इसमें कुछ भी सन्देह

नहीं। जल्दी मर जानेवाला व्यक्ति आकाशमें अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु-पद और मातृकामण्डल नामक नक्षत्र भी नहीं देख पाता है।

जिसके दोनों नथनोंमें विलकुल साँस वन्द रहता है एवं मुंहसे साँस निकलता है, उसकी मौत जल्दीसे जल्दी समीप आ पहुंचती है।

जिसकी नाक टेढ़ी पड़ जाती, दोनों कान ऊँचे उठ जाते एवं आँखसे वरावर आँसू निकलते हैं, वह व्यक्ति शीघ्र ही मौतका शिकार वनता है।

घृत, तेल या जलमें अपना प्रतिविम्व या शरीर देखते समय जो व्यक्ति अपना शिर नहीं देख पाता, वह एक महीनेसे ज्यादा नहीं जी सकता।

रतिक्रियाके समय पहले, वीचमें और अन्तमें जिस व्यक्तिको हिचकी आती है, वह व्यक्ति पाँच महीनेसे ज्यादा नहीं जीता।

नहानेके वाद शीघ्र ही जिसका हृदय, पैर और मत्था सूख जाता है, तीन ही महीनेमें वह मौतके मुंहमें चला जाता है।

जो व्यक्ति स्वप्नमें अपनेको गधेपर चढ़ा, तेल मले हुए और वस्त्राभूपित (कपड़ादि पहने हुए) देखता है, वह शीघ्र ही यमराजका अतिथि वनता है।

जो व्यक्ति स्वप्नमें लोहेका दण्ड धारण किये, काले कपड़े पहने, काले वर्णवाले पुरुषका सामने दर्शन करता है, वह व्यक्ति तीन महीनेके वीचमें ही यमालयका अतिथि हो जाता है।

जिसके कण्ठ, होंठ, जीभ और तालु हमेशा सूखते रहते हैं छः महीनेके बीचमें उसकी मौत अवश्य होती है।

बिना किसी कारणके एकाएक मोटा व्यक्ति अगर दुवला हो जाय या दुवला व्यक्ति मोटा हो जाय, तो एक महीनेमें मृत्यु निश्चित है।

हाथसे कानका छेद वन्द करने पर कानके भीतर एक तरह अस्पष्ट शब्द सुनाई पड़ता है, यही स्वाभाविक नियम है। जो व्यक्ति इस प्रकारका शब्द नहीं सुनता, वह एक महीनेके अन्दर मौतके मुंहमें समा जाता है।

हिन्दुस्थानियोंका हमेशा जलनेका दीपक जो सरसोंके तेलसे बातीके सहारे जलता है, उसके बुझनेकी खूशबू नाकमें न पहुँचे तो छः महीनेमें अवश्य ही मृत्यु होगी।

जिसके दाँत और अण्डकोशको दबानेसे दर्द नहीं मालूम पड़ता, वह तीन महीनेके अन्दर मर जाता है।

सिवा इनके दूसरे और भी वहुत तरहके मौतके संकेत मौजूद हैं; लेकिन उन सबके बतानेके लिए अधिक समयकी आवश्यकता है, इसमें सन्देह नहीं। दूसरी बात यह भी है कि ये सब लक्षण किसीके शरीरमें नहीं भी प्रकट होते हैं। विशेषतः निःश्वासकी गति और साँसके नियमका ज्ञान न रहनेसे पहले लक्षण समझमें— नहीं आ सकते; सिद्ध महापुरुषने कहा है कि—कई एक लक्षण प्रत्येक व्यक्तिके शरीरमें दिखाई देंगे,—यह पक्की बात है। मैंने परीक्षा करके इस बातकी सत्यता पाई है। पाठकगणके जाननेके लिये एक लक्षण लिखा जाता है।

दाहने हाथकी मुट्ठी बांधकर नाकके सामने ठीक सीधमें मत्थे पर रख कर किम्वा भौंहोंके ऊपर कपालके सामने रख नाकके सामने हाथकी कुहनीके नीचे सीधमें नजर डालनेसे हाथ बहुत पतला देख पड़ता है—यह ही स्वाभाविक नियम है। लेकिन जिस दिन हाथसे मुट्ठीका मेल न रहे, हाथसे मुट्ठी अलग मालूम हो, उसी दिनसे छः महीना सिर्फ आयु बाकी समझना चाहिये।

यह लक्षण प्रकट होनेके बाद रोज प्रातःकालमें आँख मूंदकर अंगुलीकी नोकसे आँखका कोई कोना जरासा दबाने पर उसकी उल्टी ओर आँखके भीतर चमकते हुए तारेकी भाँति कोई बिन्दु या ज्योतिः देख पड़ता है या नहीं, इसकी परीक्षा करे। जिस दिनसे यह ज्योतिः न देख पड़े, उसी दिनसे दश दिनमें उसकी अवश्य ही मृत्यु होगी।

मैं कितने ही लोगोंपर इसकी परीक्षा करके अपना भ्रम मिटा चुका हूँ। मरनेसे पहले ये दोनों लक्षण सब लोगोंके शरीरमें प्रकट होते हैं। इन लक्षणोंको पहचाननेके लिये किसीके पास विद्या-बुद्धिका कर्ज नहीं करना पड़ेगा। इन दोनों लक्षणोंकी सभी लोग अपने शरीरमें परीक्षा करके, मौतका पूर्वलक्षण समझ सकते हैं।

योगी, अयोगी प्रभृति सभीके शरीरमें मौतके पहले ये लक्षण प्रकट होते हैं एवं नाना प्रकारके शारीरिक और मानसिक विकार यानी जिस्मानी और रूहानी होते हैं। मौतके पहिले इन सब लक्षणोंको समझ सकने पर, मौतके लिए तैयार होना परम आवश्यक है। धन-सम्पत, विषय-वैभव, स्त्री-पुत्रादिकी चिन्ता करके :असार

माया-मोहमें फँसकर असली बातको न भूलना चाहिये। क्योंकि कुछ भी साथ नहीं जायेगा। केवल—

एक एव सुहृद्धर्म्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।

धर्म ही साथ जायगा। अतएव परजन्ममें जिससे हम परमागति प्राप्त कर सर्वप्रकारके सुख-सम्पद् भोग सकें, उसके लिये तैयार होना आवश्यक कर्त्तव्य है। मरते समय सांसारिक किसी विषयमें चित्त आसक्त रहनेसे फिर दुबारा जन्म लेकर दुःख-यन्त्रणा भोगना होगा। भगवानने कहा है—

यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

गीता ८।६

मरते समय जो जिस भावसे देहको छोड़ता है, वह उसी भावको प्राप्त होकर जन्म लेता है। परमयोगी राजा भरत मरते समय हरिणके शिशुकी चिन्ता करते करते मरे थे; इसीसे पर जन्ममें उन्होंने हरिण ही की देहको पाया था। तुलसीदासजीने भी कहा है,—

कोटि-कोटि मुनि यतन कराहीं।
अन्त राम कहि आवत नाहीं॥

बंगालमें एक कहावत है, कि "तप जप वृथा कर, मरिते जानिले हय" यानी तपस्या-जप जो कुछ करते हो, सभी वृथा है, यदि मृत्युको न पहचान सके। इन सब कारणोंसे स्पष्ट जान पड़ता है, कि जैसा ध्यान करते करते मनुष्य प्राण छोड़ता है, वह उसी चिन्तानुरूप

शरीरको प्राप्त करता है। इसीलिये मृत्युके समय विषय-वैभवादि भूल कर भगवान्के श्रीचरणकमलोंमें सबको ही मन-प्राण समर्पण करना चाहिये। भगवान्ने बताया है,—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥ गीता ८।५

जो व्यक्ति मरते समय भगवान्की चिन्ता करता हुआ देहको छोड़ता है, वह व्यक्ति भगवान्का स्वरूप प्राप्त करता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। इसलिये सबको ही मौतका पूर्व-लक्षण जानकर सावधान हो जाना चाहिये। जो योगी होते हैं वह मौतको नजदीक जानकर योगके सहारे देहको छोड़नेकी कोशिश करने पर ज्योतिःकी राहमें आगे बढ़ उत्तमागति लाभ कर सकते हैं। कमसे कम मृत्युके समय अगर योग-स्मृति विलुप्त न हो तो वह व्यक्ति जन्मान्तरमें सिद्धि पानेमें समर्थ होता है। फिर जो योगी नहीं हैं, वे मरणका लक्षण देखकर न घबरावें एवं जिससे भगवान्के श्रीचरण कमलोंमें सर्वदाके लिये मनको समर्पित कर रह सकें, उसके लिये लगातार कोशिश करते रहें। भगवान्का ध्यान और उनका नाम स्मरण करते करते मौतका सामना करनेसे फिर कोई दुःख उठाना नहीं पड़ता। अन्तमें—

उपसंहार

के समय ग्रन्थकारका वक्तव्य यह है, कि इस पुस्तकका प्रतिपाद्य विषय मेरा प्रत्यक्ष सत्य है—विशेषतः स्वरकल्पके "विना औषधके

आरोग्यता प्राप्ति" शीर्षकसे लेकर अन्ततक जो कुछ लिखा है, उसकी बहुतसे शिक्षित व्यक्ति, परीक्षा करके प्रत्यक्ष फल देखने पर आश्चर्य्य-मुग्ध हो गये हैं। अतएव पाठकगण! आप ज्ञान-गरिष्ठ ऋषि-श्रेष्ठके प्रचार किये हुए साधनमें अविश्वास न दिखाइयेगा। क्योंकि उन्होंने साधन-समुद्र मन्थन कर यह अमृत निकाला है, इस अमृतको पीनेसे मर्त्यजगत्का मानव अमरत्व लाभ करेगा और आत्म-ज्ञानकी अपूर्ण आकांक्षा पूर्ण हो जायगी। पाश्चात्य देशवासियोंका बाह्य-विज्ञान देखकर भूलसे आर्यशास्त्रोंका अनादर करने पर अपने घरका घी-भात छोड़ दूसरेके घरसे मुट्ठीभर चना मांगनेकी तरह विड़म्बना भोगनी पड़ेगी। हिन्दू जितना जानते हैं, आज भी उसकी सीमा पर पहुँचनेमें दूसरे धर्म्मावलम्बियोंको बहुत देर है। आज भी जिस ज्ञानकी हिन्दुगण हृदयमें रक्षा कर रहे हैं, उसे समझनेकी शक्ति दूसरोंमें देख नहीं पड़ती। देखिये, हिन्दुस्तानी अंग्रेजी भाषा सीख करके होमर, व्हर्जिल, डाण्टे, शेक्सपियर प्रभृति बड़े बड़े अंगरेज कवियोंकी पुस्तकावली उलट-पलट कर जिधर चाहते हैं उधर ही बेवारिस मेंढेकी भाँति उसे काममें ला रहे हैं; लेकिन कितने अङ्गरेज शङ्कराचार्यके एक संस्कृत ग्रन्थके मर्म्मको हृदयङ्गम कर सके हैं? कौन अङ्गरेज पातञ्जल योग-सूत्रके एक सूत्रकी प्रकृत व्याख्या कर सकता है? फिर भी हिन्दुगण बहुत दिनोंसे अधीनताकी जञ्जीर पहन कर जड़ बन गये हैं, इसीसे हिन्दुओंको जड़ोपासक प्रभृति जो इच्छा हो, कह सकते हैं—नहीं तो जिन जड़वादियोंके धर्म्मकी अस्थि-मज्जामें जड़त्व भरा है, जिनका धर्म्म आज भी

दुध-मुंहे बच्चेकी तरह आगे बढ़नेको दूसरेका मुंह देख रहा है; आश्चर्य्यकी बात है, कि वही हिन्दूधर्म्मकी निन्दा करते हैं। इसीसे कहते हैं, पाठक! दूसरेकी हाँमे हाँ मिलाना कम समझ व्यक्तिका काम है। हिन्दूधर्म्मको समझनेकी कोशिश कीजिये; उस समय आप देखेंगे कि हिन्दू जो काम करते हैं, उसमें एक बिन्दु भी कुसंस्कार या झूठ नहीं है। हिन्दूधर्म्म गम्भीर आध्यात्मिक विज्ञान-सम्मत एवं दार्शनिकतासे परिपूर्ण है। पाश्चात्य शिक्षित व्यक्तिगण सोचा करते हैं, कि जिसकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं रहती, उसका कोई मूल्य भी नहीं होता;—इसीसे वे सभी काममें वैज्ञानिक युक्ति ढूंढते फिरते हैं। विज्ञान ज्ञानका एकमात्र उपाय होने पर भी सब विषयोंमें उपयोगी नहीं है या सब लोगोंकी बुद्धि भी सब समयके लिये उपयोगी नहीं होती। सभी अवस्थामें यदि वैज्ञानिक युक्तिके सहारे काम करना पडे तो मानवके दुःखकी हद न रहेगी। 'हरेक काममें वैज्ञानिक-सत्य समझकर ही उसका अनुष्ठान करेंगे, यह समझना भूल है। निर्जीव रजःकणसे ऐसा देवोपम मनुष्य सन्तान किस प्रकार जन्म लेता है? रातको ही जीव क्यों निद्रामें अचेत हो जाता है? फिर रातके अन्तमें ही कौन उसे जगा देता है? बारी-बारीसे आने वाला बुखार एक या दो दिन बाद घड़ीकी तरह ठीक बँधे हुए समय पर ही चुपकेसे पहुँच, कैसे बीमारको पकड़ लेता है? इन सब विषयोंके मर्मको क्या किसीने ढूंढ निकाला है?—फिर किसी बातको असम्भव और अयौक्तिक बता कर क्यों चीख मारने लगते हो? पन्द्रह बीस रुपये तनख्वाहका तार बाबू "टरटक"

या खट-खटाना सीखकर खबर न देते हुए यह कहने लगे, कि "किस शक्तिके बलसे तारके सहारे यह काम सम्पन्न होता है, उसे न समझे-बूझे मैं खाली खबर देनेका काम नहीं करूँगा"—तो वह अपनी जिन्दगीमें नौकरीके मधुर स्वादका उपभोग नहीं कर सकेगा। क्योंकि उसकी स्थूल-बुद्धिमें उस विशाल-तत्वकी धारणा एकदम आ सकना नामुमकिन है। अपने विचारों पर निर्भर कर स्वाधीन-भावसे काम करते हैं, इसीसे शिक्षित व्यक्तिका मान नहीं बढ़ता। केवल पशु ही स्वाधीन भावसे काम करते हैं। शिक्षित व्यक्तिने जान लिया, कि कैसे काम करके लोगोंने कैसा फल पाया है। उसीका स्मरण करके वे ठीक-ठीक काम कर सकते हैं, इसीलिये उनका इतना मान है। मूर्ख या बेवकूफ कुछ भी नहीं समझता, अपनी प्रकृतिके अनुसार काम करता है, इसीसे उसको कदम-कदम पर दोष दिखाई देता है। वर्तमान युगमें हीनबुद्धि और अल्पायु बन कर हम धर्म्मका भी युक्ति-विज्ञान ढूंढते फिरते हैं; लेकिन हरेक काममें वैज्ञानिक युक्ति नहीं है, यह कौन कह सकता है? फिर भी बहुत कालकी बहु-पुरुष-परम्परासे प्रकाशित ज्ञान-गरिमा घूंटसे पी डालना एकदम असम्भव बात है। भगवान्‌के विशाल विचित्र भाण्डारमें अनन्त-शक्ति-सम्पत्ति सञ्चित है; ऊपर, नीचे, पीछे, सामने, स्थूल में, सूक्ष्ममें, इह-परकालके कितने अगणित अज्ञात अप्रकाशित तत्त्व स्तर-स्तरमें सजे हैं, कौन इसे समझ सकता है? अनन्तका अनन्त शक्ति-तत्त्व निरूपण करना व्यक्तिगत क्षमताके बाहर है। इसीसे कह रहा हूँ, कि ज्ञान गरिष्ठ ऋषिश्रेष्ठोंकी बातपर विश्वास रख अधिकारके अनुसार धर्म्म-कार्य्य करना सर्वतोभावसे कर्त्तव्य है।

हमारे स्वभावका यह कितना वड़ा दोष है, कि कोई अपनी बुद्धिकी कमजोरीको स्वीकार नहीं करना चाहता। जिसे सब लोग गधा कहते हैं, वह भी इसका विश्वास नहीं करता। एक दिन मैं अपने गांवके खातीकी दुकान पर वैठ किसी भाईके साथ न्यूटनके चलाये माध्याकर्षणकी (Gravitation) वात कर रहा था। पास ही एक खाती गाड़ीका पहिया वना रहा था, मैंने पूछा "वृक्षसे फल शून्यमें या ऊपर किम्वा इधर उधर न गिर कर नीचे ही क्यों गिरा ?" यह वात सुन वह हँसते हँसते लोट पोट हो गया। उसने फलके नीचे गिरनेकी वात अपनी लकड़ी काटनेकी वुद्धिकी युक्ति दिखाकर हमें, यहाँ तक कि न्यूटनको भी ग+अ–घ+आ (गधा) वना दिया। तभी देखिये, हम खुद उन आर्य्यऋषियोंकी ज्ञान-गरिमा हृदयङ्गम नहीं कर सकते, क्षुद्र मस्तिष्कमें उस विशाल-तत्त्वकी धारणा नहीं कर सकते,—यह वात न स्वीकार कर शास्त्रवाक्यको विकृत-मस्तिष्कका प्रलाप-वाक्य वता वातोंमें उड़ा देते हैं। पाठक ! मैं भी किसी दिन इसी जमातका प्रधान रहा था। मेरा जिस गांवमें जन्म हुआ है, वहां भले-सज्जनोंका वास नहीं है, जो दो-दश ब्राह्मण परिवार हैं, उन्होंने भी प्रकृत ज्ञानका आलोक नहीं देखा है। अथच वे पाश्चात्य शिक्षित नहीं हैं—वे अन्ध विश्वासी हैं। केवल विराट तर्कजाल, जातिका भी झगड़ा-झञ्झट, गांवमें भी न जाकर घर ही में वैठे जगह-जगहकी खवर देने प्रभृति गांवकी समझदारीकी वड़ाई लेकर समय व्यतीत करते हैं। सन्ध्या, आह्निक, तप-जप, पूजादिका प्रकृत मर्म वे नहीं समझते और न उपयुक्त रूपसे ये अनुष्ठित ही होते हैं। सिर्फ वह गांव ही नहीं, प्रायः कोई पौने सोलह आने गांवोंमें

आजकल ऐसा ही हाल हो रहा है। इसीसे धीरे-धीरे लोगोंको धर्म्म-कर्म्ममें अश्रद्धा पैदा होती जाती है। मैंने भी वैसी ही जगहमें जन्म लेकर उनके संसर्गमें परवरिश पा वैसी ही शिक्षा पायी थी। पीछे उम्र बढ़नेके साथ ही साथ नाना स्थानों एवं नाना सम्प्रदायोंमें सम्मिलित होने पर मनकी अवस्था क्यासे क्या हो गई; उस समय मैं देवता-तत्त्व और आराधनाको कुसंस्कारकी बात समझता था। मेरे पूर्वपुरुषोंने अध्यात्मिक ध्यान-ज्ञानमें जीवन बिताया था; किन्तु मैंने उसी महान् वंशमें जन्म लेकर सन्ध्या, उपासना आदि नित्यकर्म्म तकको प्रत्यन्यय (झंझट) समझ लिया था। ज्ञानके अभावसे यह भी न समझा था, कि सृष्टि-राज्यकी सीमा कहाँ है? नई फैशनके विवेक-वादियोंकी विवेक-बुद्धिसे सम्मत प्रमाण देकर नव्य अभिज्ञ बन, अनभिज्ञकी भाँति विज्ञ-वृद्धकी बात अवज्ञा कर, मैं उन्हें चुटकियों पर उड़ा देता था। लेकिन सब दिन समान नहीं बीतते; अदृष्ट चक्रके आवर्त्तनसे—मति गतिके परिवर्त्तनसे—गुरुदेवकी कृपासे, शास्त्र-महात्म्यसे एवं कार्य्यकारणके प्रत्यक्ष फलसे पहलेका अपूर्व संस्कार मिट गया; सुतरां अब स्वकपोल-कल्पित धर्म्ममतकी असार भित्तिके सहारे जातीय-शास्त्र मैं अग्राह्य नहीं कर सकता। इसीलिये कहता हूं, कि आर्य्यशास्त्रका जटिल रहस्य उद्भेद (समझ) न सकनेसे अपनी क्षुद्र बुद्धिकी त्रुटिमें पड़, तत्त्वज्ञानी ऋषियोंका महावाक्य अग्राह्य नहीं करना चाहिए।

इस ग्रन्थके पीछे राजयोग, हठयोग प्रभृति योगके उच्चाङ्ग और साधन-कौशल, ब्रह्मचर्य्य-साधनोपाय, बिन्दु-साधन, शृङ्गार-साधन, कुमारी-साधन, पञ्चमकारसे काली-साधन प्रभृति तन्त्रोक्त गुह्य साधन एवं रसतत्त्व और साध्य-साधन प्रभृति आर्य्यशास्त्रोंका जटिल रहस्य मैंने "ज्ञानीगुरु", "तान्त्रिकगुरु" और "प्रेमिकगुरु"

ग्रन्थमें प्रकट किया है। ज्ञान, धर्म्म और साधन-पिपासु सुकृतिवान् साधकगण यदि शास्त्रोक्त साधनका सम्यक् तत्त्व भली प्रकार समझनेकी इच्छासे इस दीनके आश्रममें अनुग्रह-पूर्वक आवेंगे तो गुरुदेवकी कृपासे मुझे जो कुछ मालूम है एवं आलोचना आन्दोलनसे जो क्षुद्र ज्ञान लाभ किया है, उसके अनुसार आदर और यत्नके साथ समझाने-बुझानेमें त्रुटि नहीं करूँगा।

अब पाठकोंसे सनिर्बन्ध यही अनुरोध है, कि ज्ञानका उत्कृष्ट साधन करके, अज्ञानकी सु-स्थूल जवनिकाके अन्तराल पर दृष्टि डालना सीखिये, और देखिए कि इस वैचित्र्यमय सृष्टि राज्यकी सीमा कहाँ है—उस समय आप समझ सकेंगे कि आर्य्य-ऋषियोंके युगयुगान्तरके आविष्कृत और तप प्रभावसे उपलब्ध एवं लोक हितार्थ प्रचारित क्या ही अमूल्य रत्न शास्त्रोंमें संग्रहीत हैं। अन्ध-विश्वास अच्छा नहीं होता. अनुसन्धान कर—साधन करके शास्त्र-वाक्यकी सत्यताकी उपलब्धि कीजिये। पितामह, प्रपितामहके अवलम्बित सनातन हिन्दूधर्म्ममें विश्वास स्थापन कर.उसके अनुसार साधन-भजन करके मानव-जन्मको सार्थक बनाइये एवं परमानन्दका उपभोग किजिये। हिन्दूधर्म्मके विजय-दुन्दुभिवाद्यसे दिग्-दिगन्तर प्रतिध्वनित कीजिये। हिन्दूधर्म्मकी विमल-स्निग्ध-किरणें विकीर्ण कर समग्र देशकी समग्र जातियों को उद्भासित करके आनन्द-दान दीजिये। मैं भी अब जन्म-मरण-भय निवारण सत्यसनातन सच्चिदानन्द पुरुषके पदारविन्दकी वन्दना करता हुआ भावुक-भक्तवृन्दसे विदा लेता हूँ।

हंसाः शुक्लीकृता येन शुकाश्च हरितीकृताः।
मयूराश्चित्रिता येन स देवो मां प्रसीदतु॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु